वार्षिकांक 16

वर्ष 2023-24

कृषि किरण

ISO : 9001-2015

भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल-132 001 (हरियाणा)

RFS
(50 GR)

कृषि किरण

भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल-132 001 (हरियाणा)

संपादक मंडल

अध्यक्ष राजेन्द्र कुमार यादव (निदेशक)

संपादक रामेश्वर लाल मीणा (प्रधान वैज्ञानिक)
कैलाश प्रजापत (वरिष्ठ वैज्ञानिक)

सदस्य युद्धवीर सिंह अहलावत

आवश्यक नोट

इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

प्रकाशक :

निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल–132 001

दूरभाषः 91–184229501, ई–मेलः director.cssri@icar.gov.in

मुद्रक :

एरोन मीडिया

यू.जी. 17, सुपर मॉल, सैक्टर–12, करनाल, हरियाणा, भारत

फोन. 0184–4043026, 98964–33225

ईमेल : aaronmedia1@gmail.com

प्राक्कथन

देश की बढती जनसंख्या और पशुधन आबादी की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भूमि, जल, वनस्पति और जलवायु प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण प्रबंधन व उपयोग आवश्यक है। पिछले लगभग चार दशकों के दौरान इन बहुमूल्य संसाधनों के अत्यधिक दोहन से मिट्टी, पानी, जलवायु और जैव विविधता संसाधनों में गिरावट की प्रक्रिया शुरू हो गई है। मिट्टी के संसाधनों के अवैज्ञानिक और अत्यधिक उपयोग के कारण भौतिक, रासायनिक और जैविक क्षरण हुआ जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में अपरिवर्तनीय क्षति हुई। साथ ही अत्यधिक दोहन और अविवेकपूर्ण उपयोग के कारण भूजल के स्तर व गुणवत्ता में सार्थक गिरावट आई है। विभिन्न कृषि–पारिस्थितिक स्थितियों के अंतर्गत फसल उत्पादन में भूमि क्षरण और बढ़ते अजैविक तनाव को ध्यान में रखते हुए, समस्याग्रस्त मृदाओं के प्रबंधन के लिए उन्नत तकनीकी समाधान, खराब गुणवत्ता वाले जल संसाधनों का सतत उपयोग, जलभराव का प्रबंधन, अजैविक तनाव सहनशील फसल किस्मों का विकास, खराब गुणवत्ता युक्त जल का मछली और झींगा उत्पादन के लिए वैकल्पिक उपयोग आदि समय की मांग है।

जलवायु परिवर्तन परिदृश्य और मानव स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान फसल चक्रों में बदलाव करने की जरूरत है, फसल विविधीकरण के लिए प्राचीन मोटे व छोटे अनाज (मिलेट) वाली फसलों जैसे ज्वार, बाजरा, रागी, कंगनी, सावंक, छोटी कंगनी, कुटकी आदि एक किफायती और पौष्टिक विकल्प प्रदान कर सकती हैं, जिससे खाद्य सुरक्षा की गारंटी प्राप्त हो सकती है। मिलेट सबसे पुराने खाद्य पदार्थों में से एक है, ये छोटे बीज वाली कठोर फसलें हैं जो मिट्टी की उर्वरता और नमी की सीमांत स्थितियों के तहत शुष्क क्षेत्रों या वर्षा आधारित क्षेत्रों में अच्छी तरह से विकसित हो सकती हैं। मिलेट स्वदेशी लोगों की संस्कृति और परंपराओं में भी गहराई से निहित हैं।

फसल विविधीकरण, मूल्य संवर्धन और संरक्षित या ग्रीनहाउस कृषि बदलते जलवायु परिवेश में किसानों की आय बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण रणनीतियाँ हैं। फसलों में विविधता लाने से जलवायु जोखिम कम होता है, मिट्टी की सेहत में सुधार होता है, जबकि प्रसंस्करण और ब्रांडिंग के माध्यम से मूल्य संवर्धन लाभप्रदता और बाजार पहुँच को बढ़ाता है। ग्रीनहाउस खेती, मल्चिंग और सूक्ष्म सिंचाई सहित सुरक्षात्मक कृषि, फसलों को विपरीत मौसम परिस्थितियों से बचाती है और साल भर उत्पादन सुनिश्चित करती है। इन तरीकों को एकीकृत करके, किसान उत्पादकता को बनाए रखकर, नुकसान को कम कर सकते हैं और अप्रत्याशित जलवायु में टिकाऊ उपज प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि की उपरोक्त परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुये भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, विभिन्न क्षेत्रों के किसानों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए कृषि किरण पत्रिका का वार्षिक अंक 16 वर्ष 2023–24 प्रकाशित कर रहा है जिसमें देश के भिन्न–भिन्न संस्थानों में कार्यरत विषय विशेषज्ञों द्वारा उपरोक्त विषयों से संबंधित विभिन्न तकनीकी आलेख व अन्य किसानोपयोगी जानकारी प्रदान की गई है। मैं सभी संस्थानों, वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का आभारी हूँ जिनके अनुसंधान कार्यों एवं अनुभवों को कृषि किरण पत्रिका के इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है।

मैं आशा करता हूँ कि यह पत्रिका सफल कृषि उत्पादन हेतु संबंधित वैज्ञानिकों द्वारा विकसित महत्त्वपूर्ण तकनीकी जानकारी को हमारी मातृभाषा हिन्दी के माध्यम से कृषि से जुड़े लोगों तक पहुँचा कर देश के खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करेगी। कृषि किरण के संपादक मण्डल को राष्ट्रभाषा में किये गए इस प्रकाशन के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और कृषि किरण के 16वें अंक के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

राजेन्द्र कुमार
(राजेन्द्र कुमार यादव)
निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल

संपादकीय

प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन, जलवायु परिवर्तन, मिट्टी के क्षरण और घटती जैव विविधता के कारण भारतीय कृषि गंभीर स्थिरता चुनौतियों का सामना कर रही है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी के स्वास्थ्य और जल गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पडा है, जबकि सिंचाई के लिए भूजल पर अत्यधिक निर्भरता चिंताजनक स्तर में कमी का कारण बन रही है। एकल फसल, विशेष रूप से अधिक पानी की खपत वाली फसलों ने पारिस्थितिकी तंत्र को और अधिक प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त, अनिश्चित मौसम पैटर्न, जिसमें अनियमित वर्षा और बढ़ता तापमान शामिल है, खेती को तेजी से अनिश्चित बना रहे हैं। दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए, जलवायु–स्मार्ट कृषि को अपनाने, जैविक और प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने, फसल विविधीकरण को प्रोत्साहित करने और कुशल जल प्रबंधन प्रथाओं को लागू करने की तत्काल आवश्यकता है।

कृषि अनुसंधान एवं विकास और प्रौद्योगिकी विकास का मुख्य उद्देश्य उपरोक्त चुनौतियों का समाधान तैयार करना है जो खेती में उत्पादकता, स्थिरता और लचीलापन बढ़ाएँ और साथ ही यह सुनिश्चित करें कि ये किसानों तक प्रभावी रूप से पहुँचे। उच्च उपज वाले बीजों, सटीक खेती, जलवायु–लचीली फसलों और टिकाऊ सिंचाई विधियों में वैज्ञानिक नवाचार कृषि उत्पादन और किसानों की आजीविका में उल्लेखनीय सुधार कर सकते हैं। हालाँकि, उनका वास्तविक प्रभाव तभी महसूस किया जाता है जब वे किसानों, विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के लिए सुलभ और किफायती हों। अनुसंधान संस्थानों और कृषक समुदाय के बीच की दूरी को कम करने के लिए विस्तार सेवाओं, डिजिटल प्लेटफॉर्म और किसान प्रशिक्षण कार्यक्रमों को मजबूत करना महत्वपूर्ण है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि तकनीकी प्रगति वास्तविक दुनिया के लाभों में तब्दील हो।

एक प्रगतिशील समाज के लिए उसकी भाषा में उपलब्ध संदर्भ ही अभिव्यक्ति व ज्ञान ग्रहण करने का सशक्त माध्यम है, जिससे श्रेष्ठ विचारों का आदान–प्रदान होने से व्यक्तिगत विकास के साथ समाज व देश की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। भारत में कृषि क्षेत्र की स्थिरता और उत्पादकता बढ़ाने के लिए किसानों तक नवीनतम कृषि तकनीकी ज्ञान पहुँचाना अत्यंत आवश्यक है। विशेष रूप से हिंदी भाषा में कृषि तकनीक से संबंधित जानकारी देने वाली पत्रिकाएँ इस दिशा में अहम भूमिका निभा सकती हैं।

हम संस्थान की राजभाषा पत्रिका कृषि किरण के माध्यम से इन्हीं दायित्वों को पूरा करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। कृषि किरण का 16वां अंक वर्ष 2023–24 प्रकाशित करते हुये हमें अति प्रसन्नता हो रही है। हम सभी संस्थानों, विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों और लेखकों के आभारी हैं जिनके सहयोग से वैज्ञानिक एवं कृषि संबंधी किसानोपयोगी तकनीकी जानकारी इस अंक में प्रकाशित की गई है। हम संस्थान के निदेशक डा॰ राजेन्द्र कुमार यादव का सहर्ष आभार प्रकट करते हैं जिनके कुशल मार्गदर्शन में कृषि किरण पत्रिका का 16वां अंक सफलतापूर्वक प्रकाशित किया जा रहा है।

हम आशा करतें हैं कि यह अंक किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं और हिन्दी से लगाव रखने वाले सभी पाठकगणों के लिए ज्ञान की बढोत्तरी के साथ कृषि आय वृद्धि में सहायक सिद्ध होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	आलेख	पृष्ठ संख्या
1	**भारत में लवण प्रभावित मिट्टी की उत्पत्ति, वर्गीकरण एवं वितरण** अरुप कुमार मंडल एवं प्रबोध चन्द्र शर्मा	01
2	**काली वर्टिसोल मृदाओं में लवणों की उत्पत्ति एवं विशेषताएं तथा टिकाऊ प्रबंधन के लिए विभिन्न तकनीकी हस्तक्षेप** अनिल आर॰ चिंचमलातपुरे, मोनिका शुक्ला एवं डेविड केमस	05
3	**प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों के लिए सरसों की लवण सहिष्णु एवं जलवायु प्रतिरोधी उन्नत किस्म सीएस 64** जोगेंद्र सिंह, विजयता सिंह, जीतेन्द्र सिंह एवं रवि किरन के॰टी॰	13
4	**जलभराव का फसलों पर प्रभाव : परिणाम, प्रतिक्रियाएँ एवं अनुकूलन** अश्वनी कुमार, आरजू शर्मा, पूजा, सुखम मदान एवं अनिता मान	16
5	**भूमि जलभराव के प्रबंधन के लिए उचित सिफारिशें** अंकित, भास्कर नरजरी, रचना, योगेश, प्रदीप फोगाट एवं सुमंत्रा आर्य	21
6	**लवणीय एवं क्षारीय भूमियों में वर्षभर हरा चारा उत्पादन तकनीकें** हरदेव राम, राजेश कुमार मीना एंव अनुराग सक्सेना	27
7	**जलकुंड–भारत के पूर्वोत्तर पहाड़ी क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन हेतु संरचना** केथावथ अजय कुमार, नसीब सिंह एवं अभिषेक पटेल	31
8	**समुद्री शैवाल का अर्कः लवणीय मिट्टी में फसल उत्पादन बढ़ाने का दीर्घकालिक समाधान** तलाविया हर्षांग कुमार, कोराट हितेश्वरी, कैलाशपति त्रिपाठी, प्रभु पी॰ एवं अभिलाष	34
9	**हरियाणा के खारे पानी में झींगा उत्पादनः सतत् जलकृषि की ओर एक कदम** प्रिया सिंह, आर॰ के॰ गुप्ता, राहुल कुमार, शिवम पांडे, निक्की एवं मुस्कान वेदी	37
10	**मिलेट्सः विशेषताएं और उपयोग** अश्वनी कुमार, आरजू शर्मा, पूजा, सुखम मदान एवं अनिता मान	41
11	**कुट्टूः एक बहुउद्देशीय फसल** अर्चना उदय सिंह, गौरव ठाकरान एवं ओम प्रकाश	45
12	**अधिक उत्पादन एवं आय के लिए संरक्षित खेती** योगेश, कैलाश प्रजापत, सुमंत्रा आर्य, अंकित, प्रदीप फोगाट एवं रामेश्वर लाल मीणा	48
13	**फसल अवशेष प्रबंधनः मृदा उर्वरता एवं टिकाऊ उत्पादकता में सहायक** प्रदीप फोगाट, अंकित सिंह, सुमंत्रा आर्य, योगेश एवं अंकित	52
14	**वर्मीकम्पोस्टिंगः अपशिष्ट प्रबंधन के लिए पर्यावरण अनुकूल समाधान** रेनू यादव, राहुल कुमार, किरण, निक्की एवं मुस्कान वेदी	57
15	**शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ फसलोत्पादन के लिए शून्य लागत तकनीकियाँ** नंद किशोर जाट, विपिन चौधरी, राम लाल चौधरी, छीतर मल ओला एवं महेश कुमार गौड	61
16	**जैविक खेतीः एक टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल कृषि पद्धति** राम लाल चौधरी, दिनेश कुमार, नंद किशोर जाट, विजय पुनिया, हरवीर सिंह एवं रामस्वरूप जाट	67
17	**सूक्ष्म सिंचाईः वर्तमान कृषि की आवश्यकता** मनीष राज, पवन कुमार, सुशांत, संजय कुमार, मैनाक घोष एवं राजेश कुमार	72

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
18	**इमली की उन्नत बागवानीः किसानों की आय बढ़ाने के लिए आवश्यक** दीपा सामंत, कुंदन किशोर, गोबिंद चंद्र आचार्य, सत्य प्रिय सिंह, कनुप्रिया चतुर्वेदी एवं प्रीति सिंह	75
19	**गुलाब के मूल्यवर्धित उत्पाद तथा फूलों से तेल निकालनाः एक मार्गदर्शिका** रवीना, अरविंद मलिक, दिव्या, नेहा एवं अनेजा नायर एम॰	80
20	**मशरूम–एक संपूर्ण आहार एवं आय का उत्तम साधन** बृज लाल अत्री	83
21	**हरड़ का मानव पोषण में उपयोग** प्रीति चौधरी, अंजू कपूर एवं अभिषेक ठाकुर	87
22	**मनुष्य में परजीवी संक्रमण के इलाज के लिए औषधीय पौधों का उपयोग** मृणालिनी प्रेरना	90
23	**आधुनिक कृषि और पर्यावरण पर इसका प्रभाव** ईशानी शौनक, चारु लता, निताक्षी शर्मा, अजीत सिंह, रजनीश शर्मा, प्रमोद प्रसाद एवं ओम प्रकाश गंगवार	93
24	**जलवायु परिवर्तनः भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा** तनुजा पूनिया, कैलाश प्रजापत, शिवानी खोखर एवं मधु चौधरी	98
25	**भौगोलिक संकेतों (जीआई) के माध्यम से किसानों को सशक्त बनानाः एक व्यापक दृष्टिकोण** अनेजा नायर एम॰, अरविंद मलिक, अमन शर्मा एवं रवीना	102
26	**हरी खाद–भूमी की उपजाऊ शक्ति के लिए वरदान** अराधना बाली, संदीप रावल, नरेन्द्र कुमार गोयल एवं अजित सिंह	104
27	**संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य कार्यकलापों में राजभाषा हिन्दी** कैलाश प्रजापत, राम किशोर फगोड़िया, अवनी एवं रामेश्वर लाल मीणा	107

1

अरुप कुमार मंडल[1] एवं प्रबोध चन्द्र शर्मा[2]
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
E-mail: AK.Mandal@icar.gov.in

भारत में लवण प्रभावित मिट्टी की उत्पत्ति, वर्गीकरण एवं वितरण

भारत बढ़ती जनसंख्या और पशुधन आबादी की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भूमि, जल, वनस्पति और जलवायु प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न हैं। पिछले लगभग चार दशकों के दौरान इन बहुमूल्य संसाधनों के अत्यधिक दोहन से मिट्टी, पानी, जलवायु और जैव विविधता संसाधनों में गिरावट की प्रक्रिया शुरू हो गई है। मिट्टी के संसाधनों के अवैज्ञानिक और अत्यधिक उपयोग के कारण भौतिक, रासायनिक और जैविक क्षरण हुआ जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में अपरिवर्तनीय क्षति हुई। हरित क्रांति के दौरान शुरू हुई गहन कृषि अब मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट के कारण टिकाऊ कृषि के लिए गंभीर खतरा बनती जा रही है। विश्व वर्तमान में संभावित खेती योग्य भूमि का लगभग दो तिहाई भाग निम्नीकृत क्षेत्रों में बताया गया है, जबकि कृषि योग्य भूमि का वार्षिक क्षरण 5–7 मिलियन हैक्टर पाया गया है। क्षरण के कारण मिट्टी के नुकसान की मात्रा कई मामलों में खेती के तहत लाए गए अतिरिक्त क्षेत्र की तुलना में बहुत अधिक है। जनसंख्या में भारी वृद्धि, बेरोजगारी और गरीबी से जूझ रहे विकासशील देशों में यह समस्या चिंताजनक है।

लवण प्रभावित मिट्टी सभी महाद्वीपों को मिलाकर लगभग 120 देशों में 953 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में फैली हुई है, जिससे दुनिया की भूमि सतह की उत्पादक क्षमता 7–8 प्रतिशत कम हो जाती है। आस्ट्रेलिया में सबसे बड़े क्षेत्र के साथ 50 प्रतिशत से अधिक लवण प्रभावित मिट्टी क्षारीय है। इसी प्रकार शुष्क भूमि में लवण रिसाव और सिंचित क्षेत्र में द्वितीयक लवणता के रूप में बड़ा क्षेत्र है। वैज्ञानिकों के अनुसार कुल सिंचित भूमि का पांचवां हिस्सा वैश्विक स्तर पर जलभराव और मिट्टी के लवणीकरण से प्रभावित था, जबकि वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट (1990) ने एशिया और प्रशांत क्षेत्र में 39.9 मिलियन हैक्टर क्षेत्र की सूचना दी थी। भारत में, भौगोलिक क्षेत्र के लगभग 4 प्रतिशत हिस्से में लवण प्रभावित भूमि फैली हुई है, जो मुख्य रूप से मध्य भारत में सिंधु–गंगा के मैदान, शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्र और खारे समुद्री पानी के प्रवेश के कारण प्रभावित आर्द्र तटीय क्षेत्र में स्थित है। किसी भी देशव्यापी व्यवस्थित सर्वेक्षण की अनुपस्थिति में नियोजित विभिन्न मानदंडों, पद्धतियों और जानकारी के स्रोत के कारण अलग–अलग लेखकों द्वारा नमक प्रभावित मिट्टी की विभिन्न सीमा 7.0 से 26.1 मिलियन हैक्टर तक बताई गई है।

लवण प्रभावित मिट्टी का पहला सर्वेक्षण लेदर (1914) द्वारा उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थित गंगा के जलोढ़ में मिट्टी की क्षारीयता और लवणता की समस्याओं की पहचान करके शुरू किया गया था। अग्रवाल एवं साथियों (1957) ने बाद में उत्तर प्रदेश के निचले गंगा नहर क्षेत्रों में लवण प्रभावित मिट्टी को टुकडों के रूप में पाया, जहाँ मिट्टी के लवणीकरण और क्षारीयकरण को नियंत्रित करने वाले प्राथमिक कारक के रूप में जल निकासी की अनुपस्थिति थी। जोशी और अग्निहोत्री (1984) ने देश के विभिन्न सिंचाई कमांड क्षेत्रों में दोहरी समस्याओं के कारण जलभराव और मिट्टी की लवणता के तहत क्षेत्रों की सीमा और अनुमानित उत्पादकता हानि का संकलन किया। मिन्हास और बाजवा (2001) ने अनुमान लगाया कि निम्न (लवणीय/क्षारीय) गुणवत्ता वाले भूजल ने उत्तर–पश्चिमी भारत में 41–84 प्रतिशत क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है, जो शुष्क और अर्ध–शुष्क जलवायु स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।

लवण प्रभावित मिट्टी की श्रेणियाँ

वैश्विक स्तर पर, नमक की प्रकृति और संरचना के आधार पर लवण प्रभावित मिट्टी की पांच श्रेणियों की पहचान की गई है:

- लवणीय मिट्टी में प्राकृतिक लवणों की प्रधानता होती है
- क्षारीय जल अपघटन में सक्षम लवणों से प्रभावित क्षारीय मिट्टी

[1]एमेरिटस वैज्ञानिक, [2]पूर्व निदेशक

- जिप्सिफेरस लवण प्रभावित मिट्टी
- अम्लीय सल्फेट मिट्टी जिसमें फेरिक और एल्युमीनियम सल्फेट का प्रभुत्व होता है
- अन्य लवण प्रभावित मिट्टी – अत्यधिक निम्नीकृत, उपमृदा लवणीकरण और संभावित लवणीकरण

पूर्वी यूरोप के कुछ देशों में इस प्रकार की मिट्टी को सोलोनचक, सोलोनेट्ज़ और सोलोडी के नाम से जाना जाता था। सिंह (1989) ने बताया कि भारत में सिंधु–गंगा के मैदान की क्षारीय मिट्टी सतह के क्षितिज में 60–100 सेंमी. की गहराई तक खराब हो गई है। मिट्टी में घुलनशील लवणों का निर्माण विनिमेय धनायनों के अनुपात, मिट्टी की प्रतिक्रिया, भौतिक गुणों और फसल उत्पादन के लिए परासरणीय और विशिष्ट आयन विषाक्तता के प्रभावों में परिवर्तन के माध्यम से इसके व्यवहार को प्रभावित करता है। मिट्टी प्रबंधन और मिट्टी के गुणों और पौधों की वृद्धि पर लवणों के प्रभाव को सुविधाजनक रूप से समझने के लिए मिट्टी की दो व्यापक श्रेणियां, लवणीय व क्षारीय बनाई गई है।

लवण संचय का स्रोत और कारण

लवण जमा होने के मुख्य कारणों में शामिल हैं:

- केशिका प्रभाव द्वारा उपमृदा नमक से या उथले खारे भूजल से
- भिन्न–भिन्न गुणों वाले सिंचाई जल के अंधाधुंध उपयोग से
- चट्टानों के अपक्षय और नदियों द्वारा ऊपर की ओर से मैदानी इलाकों में लाए गए लवणों और उसके बाद जलोढ़ सामग्री के साथ जमाव से
- समुद्र तट के किनारे समुद्री जल के प्रवेश से
- समुद्री हवाओं द्वारा उड़ा कर लाई गई नमक युक्त रेत से
- शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में स्थलाकृतिक स्थिति के कारण प्राकृतिक निक्षालन के अभाव से
- ख़राब गुणवत्ता वाले भूमिगत जल के प्रयोग से

नैदानिक मानदंड

रिचर्ड्स (1954) द्वारा संकलित संयुक्त राज्य मृदा लवणता प्रयोगशाला (यूएसएसएल) के अग्रणी कार्य ने मिट्टी के संतृप्त लेई में विनिमेय सोडियम प्रतिशत (ईएसपी) और प्रतिक्रिया (पीएच) तथा मिट्टी के संतृप्त निचोड की वैद्युत चालकता (ईसीई) की महत्वपूर्ण सीमाओं के आधार पर लवणीय, क्षारीय और लवणीय–क्षारीय मिट्टी को अलग करने के लिए मानदंड प्रस्तावित किए गए। इसके बाद मृदा विज्ञान सोसायटी ऑफ अमेरिका ने 1987 में ईसीई और सोडियम अधिशोषण अनुपात (एसएआर) पर विचार किया। वर्गीकरण मानदंड तालिका 1 में दिए गए हैं।

अग्रवाल एवं यादव (1956) ने सिंधु गंगा के मैदानी क्षेत्रों की जलोढ़ क्षारीय मिट्टी की विशेषता के लिए पीएच 8.5 की तुलना में पीएच 8.2 को अधिक उपयुक्त सीमा के रूप में पाया। इसी प्रकार, स्मेक्टाइट खनिज युक्त काली मिट्टी (वर्टिसोल) क्षेत्रों के

तालिका 1. लवण प्रभावित मृदा की श्रेणियाँ

वर्ग / श्रेणियाँ	यूएसएसएल द्वारा सुझाई गई कक्षा श्रेणियां			अमेरिकी मृदा विज्ञान सोसायटी द्वारा प्रस्तावित	
	पीएच	ईसीई (डेसीसाईमन / मी.)	(प्रतिशत)	ईएसपी (डेसीसाईमन / मी.)	ईसीईएसएआर (प्रतिशत)
सामान्य मृदा	<8.5	< 4.0	<15	<2.0	<13
लवणीय मृदा	<8.5	>4.0	<15	>2.0	<13
क्षारीय मृदा	>8.5	<4.0	>15	परिवर्तनीय	>13
लवणीय–क्षारीय मृदा	>8.5	>4.0	>15	>2.0	>13

लिए 2 डेसीसाईमन / मी. ईसीई और 5 ईएसपी मान को क्रमशः लवणीय एवं क्षारीय सीमा के रूप में पाया गया।

भारत में लवण प्रभावित मृदा का विस्तार एवं वितरण

सिन्धु–गंगा के जलोढ़ मैदान

भारत में सिंधु–गंगा के जलोढ़ मैदानों में लवण प्रभावित मिट्टी प्रमुखता से पाई जाती है। इन क्षेत्रों में इसका क्षेत्रफल 5.2 मिलियन हैक्टर (37 प्रतिशत) है, जिसमें 4204814 हैक्टर (80 प्रतिशत) क्षारीय तथा 1008708 हैक्टर (19 प्रतिशत) लवणीय है। लवण प्रभावित मृदाएं मुख्यतः पांच राज्यों हरियाणा (315617 हैक्टर, 6 प्रतिशत), पंजाब (151717 हैक्टर, 3.0 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (3793123 हैक्टर, 73 प्रतिशत), बिहार (153153 हैक्टर, 6.5 प्रतिशत) और पश्चिम बंगाल (799912 हैक्टर, 15 प्रतिशत) में वितरित हैं। बिहार (0.9 प्रतिशत) और पश्चिम बंगाल (15 प्रतिशत) में मिट्टी लवणीय थी, लेकिन उत्तर प्रदेश (10 प्रतिशत), पंजाब (3.0 प्रतिशत) और हरियाणा (3.2 प्रतिशत) में परिवर्तनशील और जटिल लवणीय–क्षारीय पाई गयी। पश्चिम बंगाल में तटीय क्षेत्रों के डेल्टाई मैदान में मिट्टी हल्की और मध्यम रूप से लवणीय (47 प्रतिशत) थी, जबकि समतल / मैंग्रोव दलदल में मिट्टी प्रकृति में मध्यम और अत्यधिक लवणीय (53 प्रतिशत) थी। बिहार में मिट्टी की विशेषताओं में हल्की लवणता (65 प्रतिशत) और क्षारीयता (35 प्रतिशत) दिखाई देती है जो स्पष्ट रूप से हाल ही में उत्पन्न हुई है। उत्तर प्रदेश में मिट्टी की विशेषताएँ प्रबल (259481 हैक्टर, 50 प्रतिशत) और मध्यम (611661 हैक्टर, 12 प्रतिशत) क्षारीय थी। पंजाब की मिट्टी में अलग–अलग स्तर (मामूली 1.2 प्रतिशत, मध्यम 1.3 प्रतिशत तथा अधिक 0.4 प्रतिशत) की क्षारीयता थी। हरियाणा में 2.8 प्रतिशत मिट्टी लवणीय व 3.2 प्रतिशत क्षारीय थी।

पश्चिमी और मध्य शुष्क क्षेत्र

इस क्षेत्र में चार राज्य, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र शामिल हैं। इनमें लवण प्रभावित मृदा का कुल क्षेत्रफल 7735591 हैक्टर (5.5 प्रतिशत) में पाया गया था। मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में 733608 हैक्टर (5.2 प्रतिशत) और पश्चिमी क्षेत्र (राजस्थान व गुजरात) में 6989112 हैक्टर (50 प्रतिशत) वितरण पाया गया। मध्य क्षेत्र में 184089 हैक्टर (1.3 प्रतिशत) और 462390 हैक्टर (3.3 प्रतिशत) तथा पश्चिमी क्षेत्र में 4785365 हैक्टर (34 प्रतिशत) और 2203747 हैक्टर (15.8 प्रतिशत) में क्रमशः लवणीय और क्षारीय मृदा पाई गई। संपूर्ण पश्चिमी और मध्य भारत में लवणीय और क्षारीय मृदा का कुल क्षेत्रफल 4969454 हैक्टर (35 प्रतिशत) और 2766137 हैक्टर (19.7 प्रतिशत) था।

प्रायद्वीपीय क्षेत्र

इसमें पांच राज्य, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, केरल और ओड़िशा शामिल है। प्रायद्वीपीय भारत में लवण प्रभावित मृदा का कुल क्षेत्रफल 959389 हैक्टर (6.8 प्रतिशत) था जो जलोढ़, प्रायद्वीपीय, तटीय, डेल्टाई मैदानों और समतल / मैंग्रोव दलदलों में वितरित था। राज्यवार वितरण से पता चला कि तमिलनाडु में 368015 हैक्टर (2.6 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश में 274207 हैक्टर (2 प्रतिशत), कर्नाटक में 150029 हैक्टर (1 प्रतिशत), ओड़िशा में 147138 हैक्टर (1 प्रतिशत) तथा केरल में 20000 हैक्टर (0.14 प्रतिशत) क्षेत्र था। पूरे क्षेत्र में 329087 हैक्टर (2.3 प्रतिशत) तथा 630302 हैक्टर (66 प्रतिशत) में क्रमशः लवणीय और क्षारीय मृदा है।

तटीय एवं डेल्टाई क्षेत्र

यह क्षेत्र ग्यारह राज्यों, आंध्र प्रदेश, गोवा, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, पांडिचेरी, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह से मिलकर बना है। लवण प्रभावित मृदा के तहत कुल क्षेत्रफल 9057230 हैक्टर (64 प्रतिशत) था। इसे तीन भौगोलिक इकाइयों, तटीय मैदान, डेल्टाई मैदान और मिट्टी के समतल / मैंग्रोव दलदल में वितरित किया गया। लवण प्रभावित मृदा के तहत महत्वपूर्ण क्षेत्र पश्चिम बंगाल (799912 हैक्टर, 5.7 प्रतिशत), तथा गुजरात (6614170 हैक्टर) में पाया गया, जो कुल लवण प्रभावित मृदा का 47 प्रतिशत था। अन्य राज्यों में, उड़ीसा (0.9 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (2 प्रतिशत) और अंडमान और निकोबार (0.55 प्रतिशत) में तटीय लवणीय मिट्टी के अंतर्गत महत्वपूर्ण क्षेत्र दिखाया गया है।

तालिका 2: भारत में लवण प्रभावित मृदा का विस्तार व वितरण (हैक्टर)

राज्य	लवणीय	क्षारीय	कुल
आंध्र प्रदेश	77598	196609	274207
अंडमान एवं निकोबार	77000	0	77000
बिहार	47301	105852	153153
राज्य	**लवणीय**	**क्षारीय**	**कुल**
गुजरात	4589794*	2024376*	6614170*
हरियाणा	145054*	170563*	315617*
कर्नाटक	1893	148136	150029
केरल	20000	0	20000
मध्य प्रदेश	0	139720	139720
महाराष्ट्र	184089	422670	606759
ओडिशा	147138	0	147138
पंजाब	0	151717	151717
राजस्थान	195571	179371	374942
तमिलनाडु	13231	354784	368015
उत्तर प्रदेश	16441*	3776682*	3793123*
पश्चिम बंगाल	799912*	0	799912*
कुल	**6315022***	**7670480***	**13985502**

'2018–2020 की आईआरएस लिस III इमेजरी पर आधारित अद्यतन आंकड़े।

संकलन से पता चला कि इन 15 राज्यों में लवण प्रभावित मृदाएं 13.98 मिलियन हैक्टर (4.1 प्रतिशत) पर फैली हुई थी। लवणीय और क्षारीय मृदा क्रमशः 6315022 हैक्टर (45 प्रतिशत), और 7670480 हैक्टर (55 प्रतिशत) में फैली हुई है। इन्हें पाँच भौतिक इकाइयों में वितरित किया गया था। जलोढ़ (ए), प्रायद्वीपीय (एफ), शुष्क (बी) और अन्य (एच) क्षेत्रों में अधिकांश मिट्टी क्षारीय प्रकृति की थी, जबकि तटीय (डी), डेल्टा (सी) और मिट्टी के फ्लैट/मैंग्रोव दलदल (जी) में स्थित मिट्टी की प्रकृति लवणीय थी।

समाप्त

2

अनिल आर॰ चिंचमलातपुरे, मोनिका शुक्ला एवं डेविड केमस
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान,
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरूच (गुजरात)
E-mail: anil.rc@icar.gov.in

काली वर्टिसोल मृदाओं में लवणों की उत्पत्ति एवं विशेषताएं तथा टिकाऊ प्रबंधन के लिए विभिन्न तकनीकी हस्तक्षेप

देश की मृदाओं में लवणता का विकास सिंचाई के विकास के समानांतर ही हुआ है। सिंचाई परियोजनाओं के नियोजन चरण में पर्याप्त ध्यान नहीं दिये जाने से नहरी कमांड क्षेत्रों में जल जमाव और लवणता की समस्याएं चिंताजनक दर से बढ़ी हैं, और लवण प्रभावित मृदाओं की उत्पादकता में क्षति हुई है। लवणीकरण के लिए जिम्मेदार सभी कारकों में से 'पानी' एक प्रमुख कारक है, और इसलिए इन लवण प्रभावित मृदाओं की उत्पादकता को बहाल करने के लिए जल प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। काली मृदाएँ, वर्गीकरण की दृष्टि से वर्टिसोल के रूप में वर्गीकृत, मॉन्टमोरिलोनाइट–खनिज युक्त मृदाएँ हैं, जो लगभग 76.0 मिलियन हैक्टर भूमि क्षेत्र में फैली हुई हैं, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 22 प्रतिशत है। वर्टिसोल मृदाएँ ज्यादातर भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र में 8°45`N से 26°0` उत्तरी अक्षांश और 68°0` से 83°45` पूर्वी देशांतर तक पायी जाती है। ये मृदाएँ महाराष्ट्र (24.2 मिलियन हैक्टर), मध्य प्रदेश (21.2 मिलियन हैक्टर), आंध्र प्रदेश (9.4 मिलियन हैक्टर), कर्नाटक (5. 8 मिलियन हैक्टर), गुजरात (4.9 मिलियन हैक्टर), तमिलनाडु के कुछ हिस्सों (2.6 मिलियन हैक्टर), राजस्थान (1.1 मिलियन हैक्टर), बिहार और ओड़िशा में पायी जाती हैं। ये मृदाएँ संभावित रूप से उपजाऊ मृदाएँ होती हैं जिसमें चिकनी मृदा की मात्रा, धनायन विनिमय क्षमता और पोटैशियम का अच्छा भंडार होता है। इनकी जल धारण क्षमता अधिक होने से वर्षा आधारित कृषि के लिए उपयुक्त हैं। इनके कुछ आंतरिक गुणों जैसे खराब जल निकासी और कम पारगम्यता के कारण फसल उत्पादन में बाधा उत्पन्न होती है। वर्टिसोल में लवणता और क्षारीयता का विकास आमतौर पर खराब जल निकासी और जल जमाव से जुड़ा होता है। नई सिंचाई परियोजनाओं एवं कमांड क्षेत्र में सिंचाई जल का अवैज्ञानिक उपयोग इन काली मृदाओं के द्वितीयक लवणीकरण के लिए जिम्मेदार है। देश में लवणता/क्षारीयता की अलग–अलग लवणों से प्रभावित वर्टिसोल और संबंधित मिट्टी का क्षेत्रफल लगभग 1.1 मिलियन हैक्टर है। मृदा निम्नीकरण की तटस्थता प्राप्त करने के लिए, लवण प्रभावित वर्टिसोल और संबंधित मिट्टी की उत्पादकता की बहाली तथा भविष्य में निम्नीकरण की रोकथाम, समय की मांग है। वर्तमान लेख कुछ मामलों के अध्ययन से संबंधित है, जहाँ काली मृदाओं का निम्नीकरण ज्यादातर सिंचाई जल के उपयोग के कारण हुआ और टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए इन मृदाओं की उत्पादकता को बहाल करने के लिए प्रबंधन के हस्तक्षेप के साथ–साथ समस्या की पृष्ठभूमि पर भी चर्चा की गयी है।

भारत की लवण प्रभावित मृदाएँ

भारत में लवण प्रभावित मिट्टी का विस्तार लगभग 67.4 लाख हैक्टर है। गुजरात में 22.2 लाख हैक्टर, उत्तर प्रदेश में 13.7 लाख हैक्टर, महाराष्ट्र में 6.1 लाख हैक्टर, पश्चिम बंगाल में 4.4 लाख हैक्टर, मध्य प्रदेश में 1.4 लाख हैक्टर और कर्नाटक में 1.5 लाख हैक्टर क्षेत्र में मिट्टी की उत्पादकता में कमी, लवणता और क्षारीयता की समस्याओं के कारण आई है। देश में लवणता/क्षारीयता की विभिन्न मात्रा वाली लवण से प्रभावित वर्टिसोल और संबंधित मिट्टी का विस्तार लगभग 11 लाख हैक्टर, जो बड़े पैमाने पर महाराष्ट्र (5.4 लाख हैक्टर), गुजरात (1.2 लाख हैक्टर), कर्नाटक (2.9 लाख हैक्टर) और मध्य प्रदेश (0.34 लाख हैक्टर) में विस्तृत है। भविष्य में नई सिंचाई परियोजनाओं के आगमन और सिंचाई जल के अवैज्ञानिक उपयोग से क्षेत्र में समस्या और बढ़ने वाली है। काली मृदाएँ (वर्टिसोल और संबंधित मिट्टी) अपने अंतर्निहित गुणों जैसे खराब जल चालकता, कम अंतःस्राव दर, क्ले की अधिक मात्रा और संकीर्ण सापेक्षिक आर्द्रता सीमा के कारण कृषि योग्य खेती के लिए गंभीर समस्याएं पैदा करती हैं। देश के साथ–साथ दुनिया के कई सिंचित क्षेत्र मृदा के लवणीकरण और जलभराव की दोहरी समस्याओं का सामना कर रहे हैं और वर्तमान में कुल वैश्विक सिंचित क्षेत्र का 20 प्रतिशत से अधिक इन समस्याओं से नकारात्मक रूप से प्रभावित है।

गुजरात में लवण प्रभावित वर्टिसोल तथा संबंधित मृदाएँ

गुजरात के सरदार सरोवर नहरी कमांड क्षेत्र में बारा क्षेत्र की काली मृदाओं की उप–सतह में घुलनशील लवणों की अधिक मात्रा होती है, हालांकि सतही परत में लवण की मात्रा कम होती है। जब लवणीय काली मृदाओं में खारे भूजल का उपयोग सिंचाई के लिए किया गया तो सतही परत में भी लवण का संचय देखा गया। सिंचाई हेतु खारे भूजल के उपयोग के साथ–साथ जलवायु का प्रभाव अर्थात् उच्च तापमान और वाष्पीकरण, लवण का ऊपर की ओर प्रवाह और भूदृश्य विशेषताओं (रिज और फ़रो) और मानवजनित गतिविधियों जैसे सिंचाई जल की मात्रा, उर्वरक अनुप्रयोगों आदि के कारण इन काली मृदाओं में लवण जमा होने की संभावना है (तालिका 1)। यह लवणीकरण खारे भूजल से सिंचित मृदाओं में देखा गया था, लेकिन नहरी पानी से सिंचित मृदाओं में लवणता में कमी देखी गई। यद्यपि नहरी जल से अच्छी गुणवत्ता वाले पानी की उपलब्धता के कारण अध्ययन क्षेत्र में उगाई जाने वाली फसलों की उपज में सुधार देखा गया है, लेकिन सिंचाई के लिए नहरी पानी के अत्यधिक और गैर–विवेकपूर्ण उपयोग से मृदा के विनिमय सोडियम प्रतिशत (ईएसपी) में वृद्धि होती है और उप–सतह में क्षारीयता का निर्माण होता है। इसलिए बारा क्षेत्र के किसानों को नहरी पानी का विवेकपूर्ण उपयोग करने की सलाह दी जाती है।

इन लवणीय काली मृदाओं पर कम लवण सांद्रता वाले नहरी जल सिंचाई से उत्पन्न क्षारीयता से बचाव के लिए, जल और फसल प्रबंधन तकनीकियों जैसेकि नहरी पानी के साथ लवणीय पानी का संयुक्त उपयोग, कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों की खेती, ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली को अपनाना होगा। यदि कम लवण सांद्रता वाले सिंचाई जल का अधिक उपयोग किया जाता है, तो इन लवणीय काली मृदाओं के क्षारीय मृदाओं में परिवर्तित होने की संभावना होती है।

ग्राम बिदाज, जिला खेड़ा (गुजरात) में, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (एनडीडीबी), आणंद द्वारा प्रबंधित साबरमती आश्रम गौशाला ट्रस्ट के पास कृषि भूमि (लगभग 205 एकड़) है, जिसका उपयोग पशुओं की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चारा उत्पादन एवं बीज उत्पादन के लिए किया जा रहा था। सिंचाई के स्रोत के रूप में ट्यूबवेल है, और भूजल में लवण की मात्रा अधिक है। यहाँ की मृदाएँ काली हैं। खेत के विभिन्न ब्लॉकों से मृदा के नमूने लिए गए और विभिन्न गुणों के लिए उनका विश्लेषण किया गया (तालिका 2)। परीक्षण से यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, कि मृदाओं में लवणता खारे पानी की सिंचाई के कारण है। इन मृदाओं को अत्यधिक लवणीय क्षारीय मिट्टी के रूप में वर्गीकृत किया गया है, और इन मृदाओं की उत्पादकता बहुत कम हो गई है। इन मृदाओं की उत्पादकता की बहाली और मृदा निम्नीकरण में तटस्थता प्राप्त करने के लिए, मौजूदा प्रौद्योगिकियों एवं नए तकनीकी हस्तक्षेपों का उपयोग करके इन मृदाओं के सुधार की आवश्यकता है। इनकी उत्पादकता को बहाल करने के लिए विभिन्न प्रौद्योगिकियों का एकीकरण सबसे अच्छा विकल्प है। इन लवणीय क्षारीय मृदाओं के पुनरुद्धार के लिए रासायनिक, इंजीनियरिंग और जैविक हस्तक्षेपों को शामिल करके इष्टतम उत्पादकता में वापस लाया जा सकता है। इन मृदाओं के सुधार के लिए इंजीनियरिंग उपायों के रूप में मोल जल निकासी और कट सॉइलर आधारित प्रौद्योगिकी के संयोजन में उपसतही जलनिकासी को अपनाया जाना चाहिए। निक्षालन से पौधे के जड़ क्षेत्र से घुलनशील लवणों को हटाने में मदद मिलेगी। चूंकि मिट्टी को लवणीय–क्षारीय के रूप में वर्गीकृत किया गया है, इसलिए इसके रासायनिक सुधार के लिए जिप्सम का उपयोग अत्यधिक आवश्यक है। जैविक हस्तक्षेप अर्थात लवण सहिष्णु चारा प्रजातियों और अन्य हेलोफाइटिक पौधों की खेती की जानी चाहिये।

पादरा गांव, जिला आणंद (गुजरात) में, भूमि का एक बड़ा हिस्सा जो पिछले 30–35 वर्षों से नहरी पानी का उपयोग करके धान की खेती में उपयोग हो रहा था, अब लवणता–क्षारीयता और जल भराव की स्थिति के कारण अनुत्पादक हो गया है। ये मृदा मध्यम काली (वर्टिसोल) हैं, जिनमें क्ले की मात्रा 45 से 55 प्रतिशत, वैद्युत चालकता 16.34 से 46.54 डेसी./मी. और पीएच 7.3 से 7.7 तक है। इस मृदा को जलमग्न लवणीय–क्षारीय वर्टिसोल और संबंधित मृदा के रूप में वर्गीकृत किया गया है। आंकड़ों (तालिका 3) से ज्ञात हुआ कि इन मृदाओं में लवणता और क्षारीयता का प्रमुख कारण भूमिगत खारे पानी एवं नहरी पानी की सिंचाई का अत्यधिक उपयोग है। घुलनशील धनायनों में मैग्नीशियम की प्रधानता देखी गई। इन मृदाओं को

तालिका 1: बारा क्षेत्र में वर्षा आधारित खेती, ट्यूबवेल तथा नहरी जल से सिंचित मिट्टी के गुणों में भिन्नता

मृदा गुणधर्म		ट्यूबवेल सिंचित	वर्षा आधारित	नहर सिंचित
क्ले की मात्रा (प्रतिशत)	सीमा	55.0–72.0	54.0–72.0	52.0–73.0
	औसत	58.0	59.0	56.0
	मानक विचलन	0.56	0.45	0.59
सीईसी (सेन्टीमोल (+)/कि.ग्रा.)	सीमा	36.4–64.9	33.0.56.8	37.3–51.2
	औसत	45.2	42.0	46.0
	मानक विचलन	0.40	0.52	0.58
जैविक कार्बन (प्रतिशत)	सीमा	0.24–0.48	0.12–0.51	0.24–0.43
	औसत	0.28	0.26	0.28
	मानक विचलन	0.10	0.12	0.07
पीएच2	सीमा	8.0–9.2	7.9–9.0	7.9–9.2
	औसत	8.2	8.4	8.6
	मानक विचलन	0.42	0.39	0.40
ईसीई(डेसी./मी.)	सीमा	0.6–3.3	0.52–1.76	0.26–1.72
	औसत	1.98	0.86	0.80
	मानक विचलन	1.02	0.45	0.35
ईएसपी	सीमा	1.5–10.3	2.2–13.9	2.27–18.50
	औसत	4.62	4.56	5.12
	मानक विचलन	4.01	3.88	4.21
मृदा घनत्व (मिलीग्राम/मी3)	सीमा	1.3–1.5	1.34–1.45	1.4–1.8
	औसत	1.40	1.40	1.60
	मानक विचलन	0.04	0.04	0.06

तालिका 2: एनडीडीबी द्वारा प्रबंधित साबरमती आश्रम गौशाला फार्म की मृदा के गुणधर्म

गहराई	ईसीई (डेसी./मी.)	पीएचएस	ईएसपी
	लोकेशन 1		
0–15	6.4	7.88	25.95
15–30	4.7	8.10	28.69
	लोकेशन 2		
सतह	27.0	7.75	113.35
0–15	8.5	7.81	65.37
15–30	5.6	7.96	31.08
	लोकेशन 3		
सतह	55.0	7.20	68.53
0–15	25.0	7.65	72.05
15–30	13.1	7.62	34.75

अत्यधिक लवणीय–क्षारीय के रूप में वर्गीकृत किया गया है। लवण की अधिकता के कारण इस भूमि पर खेती नहीं होती। इन मृदाओं की उत्पादकता की बहाली और मृदा निम्नीकरण में तटस्थता प्राप्त करने के लिए, मौजूदा प्रौद्योगिकियों और नए कृषि हस्तक्षेपों का उपयोग करके इन मृदाओं के सुधार की आवश्यकता है।

गुजरात के पाटन जिले के संकेश्वर गाँव की भूमि में गंभीर मृदा निम्नीकरण देखा गया, जहाँ मिट्टी की वैद्युत चालकता 2.2 से 17.6 डेसी./मी. और ईएसपी 11.01 से 35.83 प्रतिशत थी (तालिका 4)। घुलनशील धनायनों में मुख्यतः सोडियम, मैग्नीशियम और ऋणायनों में क्लोराइड के साथ–साथ कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट की मात्रा भी अधिक पायी गयी। यह मृदा अत्यधिक लवणीय– क्षारीय पायी गयी और इसमें बहुत कम हाइड्रोलिक चालकता है। इस कारण बरसात के मौसम में पानी

तालिका 3: ग्राम पादरा, जिला आनंद, गुजरात में मृदा के गुणधर्म

गहराई (सेमी.)	ईसीई,(डेसी. / मी.)	पीएच	घुलनशील धनायन) (मिलीतुल्य / ली.				घुलनशील ऋणायन (मिलीतुल्य / ली.)			एसएआर	ईएसपी
			Ca^{++}	Mg^{++}	Na^{+}	K^{+}	CO_3^{--}	Cl^{-}	SO_4^{2-}		
0—23	46.5	7.3	27.0	74.0	364.3	0.3	0.5	435.0	32.1	45.5	27.3
23—47	18.4	7.7	6.5	15.5	190.8	0.1	0.5	175.0	13.2	50.5	41.1
47—67	17.4	7.7	7.5	14.0	169.8	0.1	0.5	160.0	16.5	44.6	43.3
67—100	16.3	7.7	6.5	11.0	142.8	0.1	0.5	150.0	17.9	41.2	49.9

का ठहराव होता है। मृदा की सतह पर इस तरह के लवण की उपस्थिति को स्थानीय भाषा में 'तेलिया खार' कहा जाता है। इस प्रकार का मृदा निम्नीकरण सरदार सरोवर परियोजना की बोलेरा एवं राजपुरा नहर शाखा के अंतिम छोर के क्षेत्र में हुआ है, जोकि कम ऊंचाई पर स्थित समतल सतह है, और इसमें जल जमाव एवं जलभराव होता है, जो कैल्शियम कार्बोनेट की अभेद्य उपसतही परत के कारण हो सकता है। शुष्क क्षेत्रों में वर्षा सीमित होने के कारण फसल की पानी आवश्यकता को पूरा करने के लिए सिंचाई प्रणाली शुरू की गयी है जिससे लवणीकरण होने का खतरा पैदा होता है। सोडियम, बाइकार्बोनेट और क्लोराइड की उच्च सांद्रता होने के कारण ये मिट्टी चिपचिपी और लवणीय होती है। क्लोराइड की उपस्थिति मिट्टी को कठोर बनाती है और बाइकार्बोनेट की उपस्थिति मिट्टी को चिपचिपी और मुलायम बनाती है। इस प्रकार की मिट्टी की उत्पादकता के सुधार और बहाली के लिए भौतिक, रासायनिक, इंजीनियरिंग और जैविक हस्तक्षेपों से युक्त एक एकीकृत दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए ताकि मृदा निम्नीकरण में तटस्थता प्राप्त की जा सके।

गुजरात के उकाई काकरापार कमांड क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले गांव मुलद, जिला सूरत की काली मृदा, वर्षा आधारित खेती के तहत बहुत उपजाऊ थी। नहर के पानी की उपलब्धता के बाद किसानों ने गन्ना और चावल जैसी फसलों की ओर रुख किया। पिछले एक दशक से, अध्ययन क्षेत्र की मृदा कई कारकों की परस्पर क्रिया के कारण जल—जमाव और लवणता की दोहरी समस्याओं से प्रभावित थी, जैसे उच्च पानी की मांग वाली फसल (गन्ना), एकल—फसल की खेती और पर्याप्त जल निकासी प्रावधान के बिना सिंचाई के पानी का अविवेकपूर्ण उपयोग। इन लवण प्रभावित जलयुक्त काली मृदा के सुधार के विभिन्न तकनीकी हस्तक्षेप जैसे उप—सतही जलनिकास, हरी खाद, आदि का उपयोग किया गया। काली मिट्टी में जलभराव और लवणता की दोहरी समस्याओं के कारण गन्ने की उपज में भारी कमी की समस्या का समाधान करने के लिए वर्ष 2012 में मुलाद गांव में उप—सतही जलनिकास प्रणाली (एसएसडी) स्थापित की गई। जिसमें पाया गया कि उपसतही जलनिकास प्रणाली मृदा में लवण की मात्रा कम करने में सहायक हुई तथा मृदा की वैद्युत चालकता में कमी पायी गई। इसके अलावा, सतही और उप—सतही दोनों में जलभराव की स्थिति में कमी आई, क्योंकि जल स्तर फसल जड़ क्षेत्र से नीचे चला गया और मानसून के दिनों में सतह पर पानी जमा होने की अवधि पहले के 25—30 दिनों से कम होकर 6—8 दिन हो गई। एसएसडी प्रणाली का समग्र प्रदर्शन संतोषजनक था क्योंकि अध्ययन क्षेत्र में गन्ने की औसत उपज 39.29 से बढ़कर 97.29 टन / हैक्टर हो गई। आर्थिक विश्लेषण से संकेत मिलता है कि एसएसडी स्थापना के बाद लाभ:लागत अनुपात में 114 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो सुझाव देता है कि गुजरात राज्य में जलभराव वाली लवणीय काली मृदाओं के सुधार के लिए एसएसडी प्रणाली बड़े पैमाने पर लगायी जा सकती है, जो इन मृदाओं के सुधार में आर्थिक रूप से किफायती और सफल है।

महाराष्ट्र में लवण प्रभावित काली मिट्टी

महाराष्ट्र में लवणता और क्षारीयता से प्रभावित क्षेत्र मुख्य रूप से सोलापुर, अहमदनगर, पुणे, धुले, जलगांव, नासिक, सतारा और सांगली जिलों के नहर कमांड क्षेत्रों में है। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र की पूर्णा नदी प्रणाली द्वारा प्रवाहित पूर्णा घाटी (अमरावती, अकोला और बुलढाणा जिलों) में पाई जाने वाली काली मृदा, जिसका क्षेत्रफल 2.7 लाख हैक्टर है, लवणता से प्रभावित है। पूर्णा नदी की दोनों किनारों की मृदा लवण से प्रभावित है। इन काली मृदाओं की उपसतही परतों में क्षारीयता की शुरुआत लवण संचय के परिणामस्वरूप होती है, और शुष्क अवधि के दौरान उपसतही परतों में संचयित लवण सतह के ऊपर

आ जाते हैं। क्षारीयता का विकास अर्धशुष्क जलवायु परिस्थितियों से भी जुड़ा हुआ है, जिससे कैल्शियम कार्बोनेट की पेडोजेनिक प्रक्रिया प्रेरित होती है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा की गहराई के साथ एसएआर और ईएसपी दोनों में वृद्धि हुई है। पूर्णा घाटी में उगाये जाने वाली कपास, ज्वार और हरे चने की फसल उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ क्षारीय मिट्टी के गुणों में सुधार के लिए फसल की बुआई से पहले जिप्सम को पाउडर के रूप में 2.5 टन / हैक्टर (50 प्रतिशत जीआर) के रूप में प्रयोग करने और सतह की मिट्टी में मिलाने की सिफारिश की जाती है।

महाराष्ट्र राज्य के नहर कमांड क्षेत्रों में काली मृदा में सिंचाई जल के अवैज्ञानिक उपयोग के साथ–साथ गन्ने जैसी अधिक पानी की आवश्यकता वाली फसल की खेती करने, बढ़ती शुष्कता की समस्या और प्रतिबंधित जल निकासी के कारण लवणता की गंभीर समस्याएँ पैदा हो रही हैं। अहमदनगर जिले में मुला नहर कमांड क्षेत्र की मिट्टी नहर आने से पहले उपजाऊ थी, और अब ये मिट्टी लवणग्रस्त होने से उत्पादकता में गिरावट आ रही है। अवैज्ञानिक सिंचाई के कारण मुला कमांड क्षेत्र और गोदावरी कमांड क्षेत्र की मिट्टी की गुणवत्ता में गंभीर गिरावट आ रही है। इस काली मिट्टी के सुधार के लिये पारंपरिक और नवीन तरीकों जैसे उपसतही जलनिकासी, फसल अवशेषों को शामिल करना (5 टन / हैक्टर की दर से गन्ना अवशेष), ढैंचा के साथ हरी खाद का उपयोग करके प्रबंधन की आवश्यकता है। जिप्सम (25 प्रतिशत जीआर) के साथ चीनी उद्योगों से प्राप्त स्पेंट वॉश, प्रेस मड कम्पोस्ट (10 टन / हैक्टर) का उपयोग पीएच, ईसी$_{ई}$, ईएसपी, मृदा घनत्व को कम करने और हाइड्रोलिक चालकता जैसे अन्य गुणों में सुधार करने में बहुत प्रभावी पाया गया है। जिप्सम के साथ खाद का संयुक्त उपयोग हाइड्रोलिक चालकता को बढ़ाता है, जो कैल्साइट के विघटन में मदद करता है।

महाराष्ट्र के सांगली और कोल्हापुर जिलों के लिफ्ट–सिंचित गैर–कमांड क्षेत्रों में पायी गयी मृदा, जलभराव और लवणता की दोहरी समस्या के कारण खराब हो गई है। इस क्षेत्र में पायी गयी मृदा काली एवं गहरी है, और एक समय बहुत उपजाऊ थी। इन क्षेत्रों में सिंचाई की उपलब्धता के कारण किसानों ने फसल नियमन को बदल दिया है, और प्रबंधन विकल्पों पर विचार किए बिना, शुष्क भूमि खेती से सिंचाई खेती की ओर रुख कर लिया है। सिंचाई योजना के आगमन के साथ सिंचाई के तहत क्षेत्र में वृद्धि हुई है, और शुरू में लाभदायक फसल उत्पादन भी हुआ है, लेकिन आज यह भूमि मृदा निम्नीकरण से ग्रसित हैं। मृदा इतनी अधिक लवणीय है, कि इन भूमियों में उत्पादन आधा या शून्य हो गया है। भूमि किसानों द्वारा बंजर छोड़ दी गई है। इससे भूमि के मूल्य में कमी आई और किसान भी नौकरी की तलाश में पलायन करने लगे हैं। इस मृदा का नमूना लेने और उसके गुणों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि मृदा की वैद्युत चालकता 37.8 डेसी. / मी. तक है और पीएच 7.4 से 7.9 तक है। इन लवण प्रभावित और जलभराव वाली काली मृदाओं की उत्पादकता को बहाल करने के लिए, अतिरिक्त हस्तक्षेप के साथ उपसतही जलनिकास तकनीक को मृदा की उर्वरता बढ़ाने, मृदा के जैविक कार्बन में वृद्धि और मृदा के भौतिक गुणों में सुधार के साथ–साथ उपज में सुधार के मामले में फायदेमंद पाया गया है। कुछ क्षेत्रों में एसएसडी स्थापना के बाद भी, मृदा लवण प्रभावित रहती है, और किसान वांछित उपज नहीं ले पाते हैं। ऐसी स्थिति का कारण पीएच, ईसी$_{ई}$, ईएसपी जैसे मृदा के मापदंडों के लिए एसएसडी की स्थापना से पहले मृदा का विश्लेषण करके पहचाना जाना चाहिए और क्षारीयता के प्रति मृदा के व्यवहार का आंकलन करने के लिए प्रयोगशाला में लीचिंग अध्ययन भी किया जाना चाहिए। यदि लीचिंग के बाद मिट्टी क्षारीय व्यवहार दिखाती है, तो ऐसी स्थिति में इन मृदाओं में क्षारीयता नियंत्रित करने के लिए जिप्सम, प्रेस मड आदि संशोधनों के साथ उपचारित किया जाना चाहिए।

कर्नाटक में लवण प्रभावित वर्टिसोल एवं संबंधित मिट्टी

काली मृदा डेक्कन ट्रैप, चूना पत्थर क्षेत्रों में, गुलबर्ग, बीजापुर और बेलगाम जिलों के कुछ हिस्सों में और कर्नाटक राज्य के रायचूर, बेल्लारी, धारवाड़, चित्रदुर्ग और मैसूर जिलों के कुछ हिस्सों में काफी क्षेत्रों में पाई जाती है। ये बहुत गहरी (90 सेंमी. से अधिक), गहरी भूरे, गहरी भूरे भूरे से लेकर बहुत गहरी भूरे या काले रंग की होती हैं। पूरे प्रोफ़ाइल में बनावट आमतौर पर चिकनी होती है। ये कम क्षारीय से अत्यधिक क्षारीय, अत्यधिक दरार वाली मॉन्टमोरिलोनाईट खनिज वाली मृदाएँ हैं। ये अत्यधिक नमी धारण करने वाली होती हैं, और कम से बहुत कम पारगम्यता के साथ मध्यम रूप से अच्छी तरह से जल

निकासी से लेकर अपूर्ण जल निकासी वाली होती हैं। उत्तरी कर्नाटक में, जहाँ काली कपास मृदाओं की प्रधानता है, तुंगभद्रा, ऊपरी कृष्णा, घटप्रभा और मलप्रभा परियोजनाओं द्वारा लाई गई सिंचाई प्रणालियों ने गहन कृषि के एक नए युग की शुरुआत की है। लेकिन, मुख्य रूप से नहर के पानी से सिंचाई के कारण, जल निकासी की पर्याप्त सुविधाओं के बिना, लवण प्रभावित मृदाओं के निर्माण के कारण उपज का स्तर या तो गिर गया है या स्थिर हो गया है। धारवाड़ जिले में वर्टिसोल की सामान्य और लवण प्रभावित मिट्टी दोनों के लिए, लवण प्रभावित मृदाओं में क्ले की मात्रा, सामान्य मृदाओं की तुलना में अधिक है। लवणता के कारण मृदा की उत्पादकता में गिरावट उत्तरी कर्नाटक के कृषक समुदाय के लिए चिंता का विषय बनी हुई है, जहाँ अनुमानित 2.2 लाख हैक्टर क्षेत्र, मृदा की लवणता के विभिन्न स्तरों से प्रभावित है। ऊपरी कृष्णा परियोजना (यू.के.पी.) कमांड में, जहाँ काली मृदा (77 प्रतिशत) का प्रभुत्व है, 27 हजार हैक्टर क्षेत्र लवण प्रभावित है, इस प्रकार इन संभावित उत्पादक मृदाओं पर फसल उत्पादन गंभीर रूप से बाधित हो रहा है।

मलप्रभा परियोजना में लगभग 17,153 हैक्टर भूमि और घटप्रभा परियोजना में 45,527 हैक्टर भूमि जलभराव/मिट्टी के लवणीकरण से प्रभावित है, जिसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादकता का आंशिक/कुल नुकसान हुआ है। मलप्रभा नहर कमांड में समस्या मौसमी जलभराव और कम लवणता तक सीमित है, जबकि घटप्रभा नहर कमांड में भूमि के बड़े हिस्से में तीव्र जलभराव और गंभीर मृदा लवणता देखी गई है, जिसके फलस्वरूप यह भूमि बंजर हो गई है। नहर कमांड क्षेत्र के अलावा, कृष्णा नदी से सीधे लिफ्ट सिंचाई द्वारा सिंचित गैर–कमांड क्षेत्र में गन्ने की फसल वाला एक बड़ा क्षेत्र जलभराव/मिट्टी के लवणीकरण से गंभीर रूप से प्रभावित है (कृषि विभाग के अनुसार, गैर–कमांड क्षेत्र में 38,469 हैक्टर भूमि अकेले बेलगाम जिले में हैं)। सतही सिंचाई से होने वाली रिसाव हानि, कम पारगम्य काली मिट्टी, निकटवर्ती चीनी कारखानों द्वारा सुनिश्चित विपणन के कारण गन्ने की फसल के लिए अधिक पानी की आवश्यकता की व्यापकता, फसल की खेती के लिए अवरुद्ध और अतिक्रमित सतही नालियां और नहर कमांड/लिफ्ट सिंचित गैर में दोषपूर्ण/अत्यधिक सिंचाई, कमांड क्षेत्र की मृदाओं के लवणीकरण और जलभराव का प्रमुख कारण है।

लवण प्रभावित वर्टिसोल और संबंधित मिट्टी के पुनर्ग्रहण व प्रबंधन के लिए तकनीकी हस्तक्षेप

1. **अत्यधिक लवणीय भूमि पर साल्वाडोरा पर्सिका की खेती:** यह प्रजाति 55 डेसी./मी. तक की लवणता वाली लवणीय काली मृदा पर अच्छी तरह से विकसित होती है, और अच्छी उपज देती है। किए गए अध्ययनों के आधार पर, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड), मुंबई ने स्टेशन के सहयोग से नाबार्ड द्वारा प्रायोजित परियोजना के माध्यम से लवण प्रभावित काली मृदाओं पर साल्वाडोरा पर्सिका की खेती के लिए एक बैंक योग्य मॉडल योजना विकसित की है। अत्यधिक खारी काली मृदा, जिसे कृषि योग्य खेती के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता, को फिर से हरा–भरा करना, चौथे वर्ष के बाद से लवणता में कमी जिससे कम सहिष्णु फसलों/चारे के साथ अंतःफसल करना संभव हो जाता है। साल्वाडोरा पर्सिका के रोपण से लगभग रुपये 7000 प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा, यह पक्षियों के लिए आवास स्थान प्रदान करने के साथ पर्यावरणीय हरियाली को बढ़ाती है।

2. **सुवा (एनेथम ग्रेवोलेंस) की खेती:** सुवा जैसी गैर–पारंपरिक फसल को अवशिष्ट नमी का उपयोग करके उगाया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप 2.6 कुंटल/हैक्टर बीज की उपज होती है। यह फसल सामान्य रूप से राज्य और विशेष रूप से उस क्षेत्र के लिए एक आदर्श विकल्प है, जो आमतौर पर पानी की कमी की समस्याओं का सामना करता है। खारे पानी की सिंचाई के तहत खेती की लागत रुपये 6000/हैक्टर के साथ, फसल 16500/हैक्टर रुपये का शुद्ध लाभ देगी जिसका लाभःलागत अनुपात 2.75 बैठता है। इस प्रकार यह फसल क्षेत्र के किसानों को रबी मौसम में उन जमीनों पर दूसरी फसल लेने में मदद करेगी, जो अब तक पानी की कमी और लवणता के कारण परती रहती थी। इस प्रकार सुवा की फसल बची हुई नमी और/या खारे भूजल के साथ ली जा सकती है। हरे रंग की पत्तियों का उपयोग पत्तेदार सब्जी के रूप में किया जा सकता है, जो आय का एक अतिरिक्त स्रोत है।

3. **लवण प्रभावित काली मृदाओं के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली मॉडलः** कृषि प्रणाली मॉडल में वर्षा जल संचयन संरचना, पपीता जैसी फल प्रजातियां और मेड़ों पर सब्जियाँ, केला, जामुन, आंवला जैसी अन्य फल फसलें, बीज मसाले, इमारती लकडी प्रजातियां शामिल हैं। किसानों को साल भर नियमित आय दिलाने के उद्देश्य से सफेदे एवं अमलताश और एक खाद का गड्ढा विकसित किया जा सकता है। केला, पपीता, सुवा, धनिया, बैंगन, लौकी और टमाटर की जल उत्पादकता की गणना लाभःलागत अनुपात के साथ की गई है। विभिन्न फलों की प्रजातियों में पपीता के बाद केला, मसालों में सुवा के बाद अजवाइन और धनिया और सब्जियों में लौकी के बाद टमाटर और बैंगन में उच्च लाभःलागत अनुपात देखा गया। सब्जियों और मसालों का लाभःलागत अनुपात फल प्रजातियों की तुलना में अधिक था। फल, सब्जियाँ और मसाले जैसे उत्पादक घटक लगभग रुपये 52258 प्रति हैक्टर की शुद्ध आय प्रदान कर सकते हैं। कम पानी की आवश्यकता को देखते हुए, मसाले, सब्जियाँ और पपीता पानी की कमी वाले क्षेत्रों जैसे गुजरात के बारा क्षेत्र, जहाँ लवणीय काली मृदाएँ है, के लिए बेहतर अनुकूल हैं।

4. **लवणीय काली मृदाओं पर चारा घास की खेतीः** गुजरात राज्य देश के सबसे बड़े डेयरी उद्योगों में से एक है। चूंकि कृषि योग्य भूमि और घास के मैदानों पर उत्पादित चारा, मवेशियों की आबादी की मांगों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है, इसलिए रिज–फरो रोपण प्रणाली में दो के मध्य बिंदुओं के बीच 1 मीटर की दूरी पर 50 सेंमी. ऊंची मेड़ और 8–10 डेसी./मी. तक की लवणता वाली लवणीय काली मृदा में, चारा घास, डाइकेंथियम एनुलैटम और लेप्टोक्लोआ फ्यूस्का की खेती की जा सकती है। लवणीय काली मृदा पर चारा उत्पादन को अधिकतम करने के लिए, मेड़ों पर डाइकेंथियम और खांचों में लेप्टोक्लोआ आदर्श प्रस्ताव है। मध्यम लवणीय मृदा पर डाइकैंथियम एनुलैटम और लेप्टोक्लोआ फूस्का जैसी लवण सहनशील घासों की खेती से क्रमशः 1.9 टन/हैक्टर और 3.2 टन/हैक्टर उत्पादन होता है। चारा घास की अन्य दो प्रजातियाँ, इकाइनोक्लोआ क्रूसगली और पेनिसेटम परप्यूरियम को लवण सहिष्णु घास के रूप में पहचाना गया है और क्रमशः सिंचाई जल की वैद्युत चालकता 16 और 8 डेसी./मी. के साथ खारी वर्टिसोल पर बेहतर बढ़ती है। इन प्रजातियों ने खारे पानी के साथ भी शर्करा, क्लोरोफिल, प्रोलीन एवं प्रोटीन सामग्री जैसे बेहतर जैव रासायनिक गुण दिखाए। अतः दोनों घास खारे पानी की सिंचाई के तहत लवणीय वर्टिसोल में खेती के लिए उपयुक्त है।

5. **लवणीय वर्टिसोल पर देसी कपास और गेहूँ की खेतीः** केन्द्र द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है कि देसी कपास (जी कॉट 23) लवण सहिष्णु है और 11.2 डेसी./मी. लवणता पर भी उच्च उपज देती है और इसे लवण सहिष्णु देसी कपास किस्म के रूप में पहचाना जाता है। भाल क्षेत्र (राजपारा गांव, धोलेरा तालुका, अहमदाबाद जिला) और बारा क्षेत्र (जंबूसर तालुका, भरूच जिले के बोजादरा और कलक गांव) में किसानों के खेतों पर ऑन–फार्म परीक्षण किए गए, जहाँ जी कॉट 23 ने 1.8 से 1.9 टन/हैक्टर की उपज दर्ज की। अहमदाबाद जिले के धांधुका तालुका के चार गांवों राजपुर, मिंगलपुर, शेला और कामतलाव में लवणीय वर्टिसोल पर जी कॉट 23 के साथ किसानों के खेतों पर परीक्षण भी किए गए, जिसमें 1.7–1.8 टन/हैक्टर कपास के बीज की पैदावार का संकेत मिला जहाँ मृदा लवणता 9.4 से 10.2 डेसी./मी. के बीच थी। दो हर्बेसियम कपास जीनोटाइप (सीएससी 025 और सीएससी 057) को लवण सहिष्णु (ईसीई 9.0 डेसी./मी.) के रूप में पहचाना गया है, और आईसीएआर–एनबीपीजीआर, नई दिल्ली के साथ पंजीकृत कराया गया है। गेहूँ के मामले में गुजरात के लवण प्रभावित वर्टिसोल के लिए तीन बेहतर, अधिक उपज देने वाले और लवण सहिष्णु ब्रेड गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम) जीनोटाइप, केआरएल 210, केआरएल 351 और केआरएल 345 की अनाज की उपज, परीक्षण वजन और तने में आयनों की सांद्रता के आधार पर की पहचान की गई है।

6. **लवणीय वर्टिसोल मृदा में औषधीय पौधों की खेतीः** इन मृदाओं का उपयोग, जैविक और अकार्बनिक उर्वरक के अकेले या संयोजित उपयोग करके लवणीय वर्टिसोल पर जैविक कंसोर्टियम के संयोजन का उपयोग करके आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण औषधीय पौधे (सेना, कैसिया अंगुस्टिफोलिया वाहल) की खेती के लिए किया जा सकता है। गुजरात के लवणीय वर्टीसोल मृदाओं पर जैविक और अकार्बनिक उर्वरक के जैविक और संयोजित अनुप्रयोग से उपज

में सुधार के साथ–साथ पत्ती और फली में सेनोसाइड की मात्रा में भी काफी सुधार हुआ। जैविक और रासायनिक उर्वरक का संयोजित अनुप्रयोग जैविक कार्बन को बहाल करने, उपलब्ध पोषक तत्वों (एनपीके) की मात्रा बढ़ाने और लवणीय वर्टिसोल की जैविक गतिविधि को बढ़ाने में प्रभावी पाया गया।

7. **लवण प्रभावित वर्टिसोल पर अमरूद की खेती:** नौ साल पुराने अमरूद की फसल में उपज विशेषताओं और फल की गुणवत्ता पर छंटाई, सिंचाई और उर्वरक के परस्पर प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए प्रयोग किए गए। मिट्टी के गुणों को प्रभावित किए बिना 25 प्रतिशत छंटाई और उर्वरक अनुप्रयोग (750 ग्रामः 250 ग्रामः 250 ग्राम एनपीके/पेड़/वर्ष + 50 कि.ग्रा. गोबर खाद/पेड़/वर्ष) के साथ 4 डेसी./मी. लवणता के खारे पानी का उपयोग करके गुजरात के लवण प्रभावित वर्टिसोल पर इलाहाबाद सफेदा की अच्छी उपज प्राप्त की गयी।

निष्कर्ष

भारत की काली मृदायें (वर्टिसोल और संबंधित मिट्टी) वर्षा आधारित कृषि प्रणाली के तहत उपजाऊ और बहुत उत्पादक हैं। भारत की काली मृदाओं वाले क्षेत्रों में नहर/भूजल के माध्यम से सिंचाई की उपलब्धता, खेती के शुरुआती वर्षों में फसलों की उपज में वृद्धि के मामले में फायदेमंद पाई गई है, लेकिन बाद में इन मृदाओं में विभिन्न प्रकार की गिरावट देखी गई, जैसे शुरू में लवणीकरण, जलभराव आदि। यदि समय पर उचित प्रबंधन और सुधार के उपाय नहीं किए गए तो जल स्तर बढ़ना, मृदाओं का क्षारीयकरण होने से इनकी उत्पादकता कम हो जाती है। देश की बढ़ती आबादी, बदलती जलवायु और घटती भूमि और जल संसाधनों के लिए भोजन की बढ़ती मांग के तहत साधनहीन किसानों के लिए खाद्य सुरक्षा और आजीविका में सुधार के लिए इन निम्नीकृत मृदाओं की उत्पादकता बढ़ाना सबसे बड़ी चुनौती है। मृदा निम्नीकरण तटस्थता (एलडीएन) प्राप्त करने के लिए, भारत के काली मृदाओं वाले क्षेत्रों में मृदा निम्नीकरण को भूमि सुधार के साथ संतुलित करना होगा, जो उत्पादकता को बहाल करने के लिए इन निम्नीकृत भूमि के सुधार और प्रबंधन के लिए विभिन्न तकनीकी हस्तक्षेपों, उपलब्ध प्रौद्योगिकियों और नए दृष्टिकोणों को लागू करके प्राप्त किया जाता है। जब मृदा ख़राब होती है, तो उसके भीतर होने वाली प्रक्रियाएँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं, जिससे मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता और भूमि की उत्पादकता में गिरावट आती है। मृदा निम्नीकरण तटस्थता प्राप्त करने के लिए तीन समवर्ती कार्रवाइयों की आवश्यकता हैः वर्तमान मृदा स्वास्थ्य बनाए रखना, स्थायी भूमि प्रबंधन तकनीकों को अपनाकर वर्तमान निम्नीकरण को कम करना, जो जैव विविधता, मिट्टी के स्वास्थ्य और खाद्य उत्पादन को बढ़ाते हुए निम्नीकरण को धीमा कर सकता है, बंजर भूमि को प्राकृतिक या अधिक उत्पादक स्थिति में वापस लाने और बहाल करने के प्रयासों में तेजी लाना है।

समाप्त

3

जोगेंद्र सिंह, विजयता सिंह*, जीतेन्द्र सिंह एवं रवि किरन के.टी.
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
*E-mail: vijayata.singh@icar.gov.in

प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों के लिए सरसों की लवण सहिष्णु एवं जलवायु प्रतिरोधी उन्नत किस्म सीएस 64

सरसों रबी की प्रमुख तिलहनी फसल है। तिलहनी फसलों में सरसों का हिस्सा 28.6 प्रतिशत है। सरसों के बीज और इसका तेल मुख्य तौर पर रसोई घर में काम आता है। सरसों की खल भी बनती है जो कि दुधारू पशुओं को खिलाने के काम आती है। भारत में लवण प्रभावित भूमि का क्षेत्रफल लगभग 6.73 मिलियन हैक्टर है, जिसका सबसे अधिक भाग गुजरात (2.23 मिलियन हैक्टर), उत्तर प्रदेश (1.37 मिलियन हैक्टर), महाराष्ट्र (0.61 मिलियन हैक्टर), पश्चिम बंगाल (0.44 मिलियन हैक्टर) एवं राजस्थान (0.38 मिलियन हैक्टर) में स्थित है। अधिकतर लवण प्रभावित क्षेत्रों में, पानी की गुणवत्ता अधिक खराब (लवणीय/क्षारीय) है। लवणग्रस्त भूमि में सरसों की सामान्य किस्में या तो अंकुरित नहीं हो पाती हैं या फिर उनका उत्पादन बहुत कम होता है, जिसके कारण किसानों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

एक ओर जहाँ देश में लवणग्रस्त भूमि का क्षेत्रफल बढ़ता जा रहा है और दूसरी तरफ धीरे–धीरे जलवायु परिवर्तन हो रहा है, जिसके कारण मौसम में प्रकृति के विपरीत बदलाव हो रहे हैं, जैसे बेमौसम वर्षा, ओलावृष्टि, आंधी और तूफान, जिससे सरसों की फसल को नुकसान होता है, सर्दियों में विशेषकर जनवरी माह में तापमान का निम्न होना और मार्च में उच्च वृद्धि होना, आदि सरसों की फसल की लिए नुकसानदायक हैं। सीएस 64 सरसों की प्रजाति निम्न तापमान, उच्च तापमान और उच्च लवणग्रस्त भूमि (ईसीई 9–13 डेसीसाईमन/मी.) में भी अधिक पैदावार देती है तथा फरवरी, मार्च में वर्षा होने पर भी यह प्रजाति गिरती नहीं है और ओलावृष्टि से भी नुकसान बहुत कम ही होता है, इसलिए किसानों को अधिक आय प्राप्त करने के लिए सरसों की इस प्रजाति की बुवाई करनी चाहिए।

जलवायु तथा मृदा

भारत में सरसों की फसल की बिजाई करते समय तापमान 20 से 22 डिग्री सेल्सियस, कटाई के समय 28 से 30 डिग्री सेल्सियस तथा 250–400 मिमी वर्षा की आवश्यकता होती है, परन्तु जलवायु परिवर्तन के कारण हाल के वर्षों में अक्टूबर माह में भी अधिक तापमान रहता है। अगर किसान अक्टूबर माह की शुरुआत में बुआई करता है, तो अधिक तापमान के कारण सरसों में कटा रोग लग जाता है, और अंकुरण भी कम होता है। यदि किसान अक्टूबर माह के अंत में बुआई करता है, तो सरसों में चेंपा चित्रत बग जैसे कीट लग जाते हैं, जिसके कारण सरसों की पैदावार कम हो जाती है तथा किसानों, को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। सरसों की खेती रेतीली से लेकर भारी मटियार मृदाओं में की जा सकती है। लेकिन बलुई दोमट मृदा सर्वाधिक उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी

लवणग्रस्त भूमि की जाँच प्रयोगशाला में करवा लें। यदि भूमि की लवणता ईसीई 9 से 13 डेसी साईमन/मी. के बीच है तो इस प्रजाति की बुआई अवश्य करें। सरसों की खेती के लिए खेत की तैयारी हेतु सबसे पहले मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई

करनी चाहिए, इसके पश्चात दो से तीन जुताई कल्टीवेटर से करने के पश्चात सुहागा लगाकर खेत को समतल करना अति आवश्यक है। सरसों के लिए मिट्टी जितनी भुरभुरी होगी, अंकुरण और बढवार उतनी ही अच्छी होगी।

तालिका 1: सरसों की लवण सहिष्णु उन्नत किस्म सीएस 64 का विवरण

विमोचन वर्ष	पकने की अवधि (दिन)	उत्पादन क्षमता (कुंटल/हैक्टर)		विशेष विवरण
		लवणग्रस्त भूमि	सामान्य भूमि	
2023	130 से 138	20 से 23	27 से 29	हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, जम्मू और कश्मीर के मैदानी भाग एवं हिमाचल प्रदेश हेतु अनुमोदित। लगभग 41 प्रतिशत तेल की मात्रा। लवणीय भूमि (ईसी 13 डेसी./मी. तक), लवणीय जल (ईसी 16 डेसी./मी. तक) और क्षारीयता (पीएच 9.4 तक)। अल्टरनेरिया ब्लाइट, सफेद रतुआ, पाउडरी और डाउनी मिल्ड्यू (फफूंदी) एवं स्क्लेरोटिनिया तना गलन के लिए प्रतिरोधी तथा चेंपा (एफिड) का कम प्रकोप होता है।

बुवाई का समय तथा बीज की मात्रा

लवणग्रस्त भूमि में अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए सरसों की बुवाई 10 से 20 अक्टूबर के बीच करनी चाहिए। लवणग्रस्त भूमि के लिए सरसों की बुवाई के लिए 5 से 6 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर के दर से प्रयोग करना चाहिए।

बीजोपचार

- जड़ एवं तना गलन रोग से बचाव के लिए बीज को बुआई पूर्व फफूंदनाशक वीटावैक्स, कैप्टान, थिरम, प्रोवेक्स में से कोई एक 2–3 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए।
- कीटों से बचाव हेतु इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्लू.पी. 10 ग्रम प्रति किलोग्राम बीज दर से उपचारित करना चाहिए।
- कीटनाशक उपचार के बाद एजेटोबैक्टर तथा फॉस्फोरस घोलक जीवाणु खाद दोनों की 5 ग्राम मात्रा से प्रति कि.ग्रा. बीजों को उपचारित कर बुआई करनी चाहिए।

बुआई की विधि

सरसों की बुआई के लिए मशीन का प्रयोग करना चाहिए। सरसों की बुआई कतारों में करना अच्छा रहता है, इसके लिए कतार से कतार की दूरी 45 सेंमी. पौधे से पौधे की दूरी 15 सेंमी. रखें तथा बीज की गहराई 4 से 5 सेंमी. होनी चाहिए।

खाद व उर्वरक

उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। सिंचित क्षेत्र में नाइट्रोजन 80 कि.ग्रा., फॉस्फेट 40 कि.ग्रा. एवं पोटाश 40 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। फॉस्फोरस का प्रयोग सिंगल सुपर फॉस्फेट के रूप में अधिक लाभदायक होता है, क्योंकि इससे सल्फर की उपलब्धता भी हो जाती है। यदि सिंगल सुपर फॉस्फेट का प्रयोग न किया जाए तो गंधक की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए 40 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से गंधक का प्रयोग करना चाहिये। साथ में अंतिम जुताई के समय 15 से 20 टन गोबर खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग लाभकारी रहता है।

असिंचित क्षेत्रों में उपयुक्त उर्वरकों की आधी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग की जानी चाहिए। यदि डी.ए.पी. का प्रयोग किया जाता है, तो इसके साथ बुआई के समय 200 कि.ग्रा. जिप्सम/हैक्टर की दर से प्रयोग करना फसल के लिये लाभदायक होता है तथा अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 80 कुंटल/हैक्टर की दर से सड़ी हुई गोबर खाद का प्रयोग बुवाई से पहले करना चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा व फॉस्फेट एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूंड़ों में बीज के 2 से 3 सेंमी. नीचे चोगों से दी जानी चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा पहली सिंचाई (बुवाई के 25 से 30 दिन) के बाद छिड़काव द्वारा द्वारा देनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

सरसों की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 2 सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली बुवाई के 20 से 25 दिन बाद (फूल आने से पूर्व) तथा दूसरी 60 से 70 दिन के बाद (फली बनते समय) करनी चाहिए। यदि पानी की कमी हो तो 1 सिंचाई 40 से 50 दिन के बाद करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

सरसों के साथ अनेक प्रकार के खरपतवार उग आते हैं। इनके नियंत्रण के लिए निराई–गुड़ाई बुवाई के तीसरे सप्ताह के बाद से नियमित अन्तराल पर 2 से 3 निराई करनी आवश्यक होती है। रसायनिक नियंत्रण के लिए अंकुरण पूर्व पेंडीमेथालीन 30 ई.सी. खरपतवारनाशी रसायन की 3.3 लीटर मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से 800 से 1000 लीटर पानी में भूमि में बुवाई के 48 घंटो के अंदर छिड़काव करना चाहिए। खरपतवारनाशक की कार्य कुशलता बढ़ाने हेतु छिड़काव करते समय फ्लैट फैन या फ्लड जैट नोजल और साफ पानी का प्रयोग करना चाहिए।

फसल की कटाई

सरसों की लवण सहिष्णु किस्म सीएस 64 पकने के लिए 130–138 दिनों का समय लेती है। फसल अधिक पकने पर फलियों के चटकने की आशंका बढ़ जाती है। अतः पौधों के पीले पड़ने एवं फलियां भूरी होने पर फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। फसल को सुखाकर थ्रेसर से निकालना चाहिए।

उपज

सरसों की सीएस 64 लवण सहिष्णु उन्नत किस्म का उपयोग करने पर लवणग्रस्त भूमि में 20 से 23 कुंटल/हैक्टर तथा सामान्य भूमि में 27 से 29 कुंटल/हैक्टर उपज प्राप्त कर सकते हैं। सरसों की फसल का न्यूनतम समर्थन मूल्य 5650 रुपये/कुंटल है। इस हिसाब से किसान लवणग्रस्त भूमि में प्रति हैक्टर लगभग 113000 से 129950 रुपये की आय प्राप्त कर सकते हैं तथा सामान्य भूमि में किसान प्रति हैक्टर लगभग 152550 से 163850 रुपये की आय प्राप्त कर सकते हैं।

समाप्त

4

अश्वनी कुमार[1], आरजू शर्मा[1], पूजा[2], सुखम मदान[3] एवं अनिता मान[1]
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[2]भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल (हरियाणा)
[3]क्षेत्रिय अनुसंधान केन्द्र चौ.च.सि.ह.कृ.वि., कौल
E-mail: Ashwani.Kumar1@icar.gov.in

जलभराव का फसलों पर प्रभाव : परिणाम, प्रतिक्रियाएँ एवं अनुकूलन

क्षारीय मिट्टी में फसल उत्पादन के लिए जलभराव एक व्यापक समस्या है, जिसके कारण जड़ क्षेत्र में अतिरिक्त पानी के जमाव से अवायुवीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतिरिक्त पानी वायुमंडल के साथ गैसीय आदान–प्रदान को रोकता है, और जैविक गतिविधि मिट्टी की हवा और पानी में उपलब्ध ऑक्सीजन का उपयोग करती है – जिसे अवायुवीय, अनाक्सीय या ऑक्सीजन की कमी भी कहा जाता है। भारतीय सिंधु–गंगा के मैदानी क्षेत्रों में क्षारीय और लवणीय–क्षारीय मिट्टी में गेहूँ उत्पादन में जलभराव एक प्रमुख समस्या है। व्यापक रूप से परिचालित सिंचाई नहरी नेटवर्क के तहत रिसाव वाले क्षेत्र से सटे 29.6 लाख हैक्टर क्षेत्र के साथ लगभग 37.7 लाख हैक्टर क्षारीय मृदाओं में रबी मौसम के दौरान अवांछनीय जलभराव से गेहूँ फसल उत्पादन गंभीर रूप से प्रभावित होता है। जलभराव शुष्क भूमि की लवणता जैसी प्रक्रियाओं के कारण होता है। अंतर सिर्फ यह है कि जलभराव की स्थिति में लवण मिट्टी की सतह पर जमा नहीं होता है, क्योंकि भूजल बहुत कम लवणता (6 डेसी./मीटर से कम) का होता है या फिर मिट्टी की सतह से लवण को बाहर बहा देता है। जलभराव की समस्याएँ अल्पकालिक भी हो सकती हैं, जैसे कि जब नम मौसम में अभेद्य उपमृदा पर एक स्थिर जल स्तर विकसित हो जाता है। लवण संचय और उसके प्रभावों के संदर्भ को छोड़कर, इस लेख में दी गई अधिकांश जानकारी सीधे तौर पर जलभराव के प्रबंधन से संबंधित है।

कृषि में, विभिन्न फसलों को मिट्टी में अधिक या कम गहराई तक वायु (ऑक्सीजन) की आवश्यकता होती है। मिट्टी के जलभराव से वायु का आवागमन बाधित हो जाता है। जमीन को जलभराव के रूप में वर्गीकृत करने के लिए जल स्तर सतह के कितना करीब होना चाहिए, यह उद्देश्य के अनुसार भिन्न होता है। जलभराव से मुक्ति के लिए फसल की मांग वर्ष के विभिन्न मौसमों में भिन्न हो सकती है, जैसे कि धान की खेती के साथ। सिंचित कृषि भूमि में, जलभराव अक्सर मिट्टी की लवणता के साथ होता है क्योंकि जलभराव वाली मिट्टी सिंचाई के पानी द्वारा आयातित लवणों के निक्षालन को रोकती है। बागवानी के दृष्टिकोण से, जलभराव वह प्रक्रिया है जिसके तहत मिट्टी सभी पानी को रोक लेती है और इतनी कठोर होती है कि हवा और ऑक्सीजन को अंदर जाने से रोकती है। जलभराव मिट्टी का अस्थायी या स्थायी रूप से पानी से संतृप्त होना है। जब किसी क्षेत्र में बहुत अधिक पानी होता है, तो मिट्टी पानी को अवशोषित करने में असमर्थ होती है जैसा कि उसे आमतौर पर करना चाहिए। यह तब भी हो सकता है जब फसल के जड़ क्षेत्र में मिट्टी के छिद्रों को संतृप्त करने के लिए जल स्तर बढ़ जाता है। जब ऐसा होता है, तो इसका परिणाम मिट्टी में हवा की सामान्य आपूर्ति में बाधा, ऑक्सीजन के स्तर में गिरावट और कार्बन डाइऑक्साइड और एथिलीन के स्तर में वृद्धि होती है।

जलभराव के कारण

1. भौगोलिक स्थिति: किसी स्थान की स्थलाकृति, ढलान, आकार और जल निकासी पैटर्न जलभराव का कारण बन सकते हैं। दूसरे शब्दों में, भोगोलिक स्थिति सतही अपवाह की गति और मिट्टी द्वारा सतही जल के निकास में लगने वाले समय को निर्धारित करती है। उदाहरण के लिए, घाटियों, अवसादों और समतल तराई क्षेत्रों जैसे निचले इलाकों में प्राकृतिक रूप से अधिक जलभराव का अनुभव होता है क्योंकि सतही प्रवाह तराई क्षेत्रों पर केंद्रित होता है, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक दलदल और अन्य जलभराव वाली भूमि बन जाती है। ऐसे क्षेत्रों में, पानी गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में आसानी से आगे नहीं बढ़ पाता है, जिससे समय के साथ यह जमा हो जाता है।

2. वायुमंडलीय स्थितियाँ: मौसम जलभराव का एक और प्राकृतिक कारण है, जिसका अर्थ है कि लगातार या लंबे समय तक वर्षा का सामना करने वाले क्षेत्र अस्थायी या स्थायी रूप से जलग्रस्त हो जाएंगे। भारी और लगातार बारिश से जल स्तर बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप जलभराव होता है।

3. मिट्टी का प्रकार: भारी मिट्टी जैसे काली कपास मिट्टी और सतह सीलन की संभावना वाली मिट्टी, लंबे समय तक नमी बनाए रखती है, जिसका अर्थ है कि वे आसानी से जलमग्न हो जाती है। यह रेत और दोमट जैसी बेहतर जलनिकासी वाली अन्य मिट्टी से भिन्न है।

4. भूविज्ञान: ऊपरी मिट्टी के नीचे एक अभेद्य परत वर्षा के अंतःस्राव को रोकती है, जिससे रुका हुआ जल स्तर बनता है। उथली मिट्टी वाले क्षेत्र, सतह के करीब एक कठोर क्षेत्र, और उच्च जल स्तर वाले क्षेत्रों में भी जलमग्न होने की संभावना है, खासकर यदि वे भारी वर्षा के अधीन हैं।

5. रिसाव: झीलों, उथले जलभृतों, नहरों और नदियों जैसे आस–पास के जल निकायों से अंतर्प्रवाह और रिसाव के कारण जलभराव हो सकता है। इसके अलावा, ऊपरी क्षेत्रों से निचले क्षेत्रों की ओर उपमृदा प्रवाह के कारण भी जलभराव हो सकता है।

6. अत्यधिक सिंचाई व खराब जलनिकास व्यवस्था: यह जलभराव का एक मानव निर्मित कारण है, और यदि सिंचाई की योजना अच्छी तरह से नहीं बनाई गई है, तो जलनिकास की समस्या स्थिति को और भी खराब कर सकती है। सिंचाई से मिट्टी में प्राकृतिक रूप से होने वाली वर्षा के अलावा अतिरिक्त पानी जुड़ जाता है। यदि अत्यधिक सिंचाई, अपर्याप्त जलनिकासी, खराब सिंचाई प्रबंधन, प्राकृतिक जलनिकासी में बाधा और नहरों से रिसाव, हो तो सिंचाई के परिणामस्वरूप जलभराव हो सकता है।

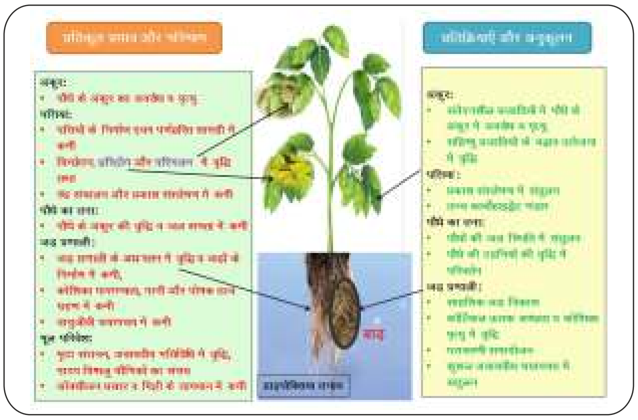

चित्र 1. जलभराव के प्रभाव, परिणाम, प्रतिक्रियाएँ और अनुकूलन

जलभराव की स्थिति में पौधों की वृद्धि और विकास के लिए ऑक्सीजन एक सीमित कारक है। पौधों को ऑक्सीजन सांद्रता की एक अलग श्रृंखला के अधीन किया जाता है, जैसे नॉर्मोक्सिया, हाइपोक्सिया और एनोक्सिया जो समय और स्थान के साथ भिन्न हो सकते हैं। पादप कार्यकी अध्ययनों में, हाइपोक्सिया ऑक्सीजन की अपर्याप्त उपलब्धता के कारण उत्पन्न होता है, और इसे पौधों द्वारा महसूस किया जाता है, जो तदनुसार अपने विकास और चयापचय को अनुकूलित करते हैं। अत्यधिक बारिश और मिट्टी में जलभराव के परिणामस्वरूप पौधों में हाइपोक्सिया हो सकता है, जिससे पौधों की वृद्धि बाधित हो सकती है। जबकि एनोक्सिया ऊतकों या अंगों के भीतर पूर्ण ऑक्सीजन की कमी की स्थिति है। यह हाइपोक्सिया का एक चरम रूप है – ऑक्सीजन की अपर्याप्त उपलब्धता की विशेषता वाली स्थिति। ऑक्सीजन आपूर्ति की आंशिक या पूर्ण कमी के कारण होने वाली क्षति को हाइपोक्सिक/एनोक्सिक चोट के रूप में जाना जाता है।

जलभराव का हाइपोक्सिया व एनोक्सिया पर प्रभाव

मृदा के सबसे महत्वपूर्ण गुणों में से एक मृदा में वायु संचरण है जो वायुमंडल के साथ गैसों के आदान–प्रदान की मृदा की क्षमता से संबंधित है। यह आदान–प्रदान आमतौर पर मुख्य रूप से छिद्र स्थानों के माध्यम से मृदा में गैसों के प्रसार का माध्यम होता है। अच्छी तरह से सूखी मृदा में हवा से भरे छिद्र स्थान, कुल मृदा की मात्रा का 10 से 40 प्रतिशत होते हैं। जलभराव से ये गैस छिद्र समाप्त हो जाते हैं और जड़ों तक ऑक्सीजन की आपूर्ति कम कर देते हैं। जलयुक्त मिट्टी में, मिट्टी के कणों या एकत्रीकरण के बीच गैस प्रसार के लिए सूक्ष्म छिद्र पानी से बंद हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी में गैसों का प्रसार अच्छी तरह से सूखी मिट्टी की तुलना में 104 गुना कम हो जाता है। परिवेशी वायु और जलयुक्त मिट्टी के बीच कम

गैस प्रसार के परिणामस्वरूप कम ऑक्सीजन सांद्रता (हाइपोक्सिया) और उच्च जहरीली गैस सांद्रता, जैसे कार्बन डाइऑक्साइड और कम सांद्रता वाली गैसें होती हैं। इसके अलावा, मिट्टी में बनने वाली गैसें, जिनमें कार्बन डाइऑक्साइड भी शामिल है, जड़ क्षेत्रों के पास जमा होने लगती है। जैसे ही जलभराव होता है, मिट्टी और वायुमंडल के बीच गैस का आदान–प्रदान लगभग बंद हो जाता है। मिट्टी के सूक्ष्मजीव और पौधों की जड़ें मिट्टी में जमा ऑक्सीजन का उपयोग कर लेती हैं और इसलिए, जड़ें ऑक्सीजन की कमी (एनोक्सिया) के संपर्क में आ सकती हैं। हालाँकि, प्राकृतिक परिस्थितियों में, ऑक्सीजन की सांद्रता धीरे–धीरे कम हो जाती है, इसलिए जलभराव वाले वातावरण में एनोक्सिया हमेशा हाइपोक्सिया से पहले होता है।

जलभराव के प्रभाव

1. मृदा में ख़राब वायु संचारणः जलभराव के कारण मिट्टी के भीतर की हवा वायुमंडल में चली जाती है, जिससे उसकी जगह अधिक पानी भर जाता है। ऑक्सीजन की अपर्याप्त आपूर्ति पौधे के विकास को धीमा या बंद कर देती है क्योंकि जमा होने वाला कार्बन डाइऑक्साइड पौधे की जड़ों के विकास में बाधा डालता है। खराब संचारण विषाक्त पदार्थों और अन्य हानिकारक पदार्थों के विकास को भी बढ़ावा देता है। ऐसी संतृप्त मिट्टी सूक्ष्मजीव गतिविधियों को भी कम कर देती है, जो पौधों के भोजन के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है।

2. मृदा पीएच मान में बदलावः बाढ़ वाली मिट्टी में पीएच मान बदल जाता है, और अधिक अम्लीय हो जाता है, क्षारीयता कम हो जाती है और पौधों की वृद्धि अधिक कठिन हो जाती है। मिट्टी की बढ़ती अम्लता पौधों के जीवनचक्र का समर्थन नहीं करती है।

3. मिट्टी के तापमान में बदलावः जलभराव से मिट्टी का तापमान कम हो जाता है। नम मिट्टी का कम तापमान सूक्ष्मजीवों और उनकी गतिविधियों को प्रभावित करता है, जिससे नाइट्रोजन–स्थिरीकरण की दर कम हो जाती है।

4. मृदा पोषक तत्वों को प्रभावित करनाः नाइट्रोजन मिट्टी के लिए महत्वपूर्ण है, और जलभराव वाली मिट्टी नाइट्रोजन की कमी से ग्रस्त हो जाती है। नाइट्रोजन विनाइट्रीकरण (एक प्रक्रिया जिसके द्वारा मिट्टी में नाइट्रोजन, नाइट्रोजन के गैसीय ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाती है) के माध्यम से नष्ट हो जाती है। लेकिन नाइट्रोजन ही एकमात्र प्रभावित तत्व नहीं हैः जल–संतृप्त मिट्टी अन्य आवश्यक खनिजों, जैसे सल्फर, जस्ता, लोहा, मैंगनीज, फॉस्फोरस और पोटैशियम को भी प्रभावित करती है। कुछ खनिज अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं, जिससे पौधों में विषाक्तता का स्तर बढ़ जाता है, जबकि अन्य में खनिज जीवित नहीं रह पाते हैं, परिणामस्वरूप, पौधे जीवित नहीं रह पाते हैं।

5. खेती में रूकावटः जलभराव वाली मिट्टी में खेती करने में कठिनाई होती है। अंतर्निहित स्थितियों के कारण सभी फसलें जीवित रहने में विफल हो जाती हैं, इसलिए फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे वातावरण में केवल धान ही जीवित रह सकता है।

6. हानिकारक लवणों का संचयः जलभराव से ऐसा वातावरण बनता है जिससे फसल के जड़ क्षेत्र में अधिक लवण जमा होने लगते हैं। जमा होने वाले लवण मिट्टी को अधिक लवणीय/क्षारीय बना देते हैं और फसलों के विकास में बाधा डालते हैं।

7. जल–प्रेमी जंगली पौधों की वृद्धिः जलभराव के कारण जंगली पौधे उगते हैं जो जलभराव वाले वातावरण में पनपते हैं। ये खरपतवार प्रभावी रूप से उपयोगी फसलों को नष्ट कर देते हैं और अत्यधिक जलभराव की स्थिति में इनसे छुटकारा पाना एक अतिरिक्त खर्च है।

8. नकदी फसलों का नुकसानः अधिकांश नकदी फसलें जल जमाव वाली मिट्टी में जीवित नहीं रह सकती या उनकी खेती नहीं की जा सकती। इसलिए, किसान भूखे मर जाते हैं और अपनी फसल बेचने से मिलने वाली नकदी से वंचित रह जाते हैं। कुछ लोग चावल की खेती करने के लिए भी मजबूर हैं, यह मानते हुए कि यह ऐसे क्षेत्रों में उग सकता है।

9. मानव स्वास्थ्य पर प्रभावः जलभराव का पर्यावरण पर इस तथ्य से प्रभाव पड़ता है कि यह मच्छरों, स्लग और घोंघे जैसे रोग वाहकों को आश्रय देता है। बदले में, वे मलेरिया, टाइफाइड और अन्य बीमारियाँ लाते हैं, जो मानव आबादी, जानवरों, पौधों और पर्यावरण को प्रभावित करते हैं।

फसलों में जलभराव को सहन करने की क्रियाविधि

1. रूपात्मक अनुकूलन

(अ) जड़ वृद्धिः जलभराव की स्थिति में सामान्य अनुकूलन के लिए पौधे सेमिनल जड़ों को जीवित रखते हैं तथा बाह्य जड़ों में एरेन्काइमा का विकास करते हैं। जलभराव फसलों की असहिष्णु किस्मों में जड़ वृद्धि जलभराव तनाव से काफी हद तक कम हो जाती है। हालाँकि, सहिष्णु किस्मों में कुछ हद तक तनाव के तहत अपनी जड़ वृद्धि जारी रखने की क्षमता होती है। उपरोक्त हाइपोक्सिक तनाव में सहिष्णु जीनोटाइप के लिए सेमिनल जड़ों के विकास पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पडता। हालाँकि, किसी पौधे की जलभराव सहनशीलता न केवल रूपात्मक अनुकूलन से गुजरने की उसकी क्षमता से निर्धारित होती है, बल्कि जड़ प्रणाली के क्षणिक जलभराव या हाइपोक्सिया से उबरने की क्षमता से भी निर्धारित होती है।

(ब) एरेनकाइमा का गठन व जड़ सरंध्रता में वृद्धिः एरेनकाइमा एक विशेष ऊतक है जिसमें निरंतर गैस से भरे चैनल या बहुत बढ़े हुए गैस स्थान होते हैं, और जड़ छिद्र कुल ऊतक मात्रा के संबंध में गैस से भरे स्थानों की मात्रा है। एरेनकाइमा अंकुरों से जड़ों तक ऑक्सीजन की गति के लिए एक कम प्रतिरोध वाला आंतरिक मार्ग प्रदान करता है। जड़ों में एरेनकाइमा ऊतक जड़ों को वायुवीय रूप से सांस लेने और हाइपोक्सिक परिस्थितियों में विकास बनाए रखने की अनुमति देता है। इसके अलावा, एरेनकाइमा के माध्यम से पौधे की जड़ों तक पहुँचाई गई ऑक्सीजन का एक हिस्सा आस–पास की मिट्टी में हस्तांतरित हो जाता है और परिणामस्वरूप जड़ों के चारों ओर ऑक्सीजन युक्त मिट्टी का एक छोटा सा क्षेत्र बना देता है जो सूक्ष्मजीवों के लिए एक वायुवीय वातावरण प्रदान करता है जो संभावित रूप से विषाक्त मिट्टी के घटकों जैसे कि लोहा, तांबा और मैंगनीज, नाइट्राइट और सल्फाइड के प्रवाह को रोक सकता है। इसलिए, एरेनकाइमा गठन को हाइपोक्सिक या एनोक्सिक तनाव के प्रति सहनशीलता के लिए सबसे महत्वपूर्ण रूपात्मक अनुकूलन में से एक माना जाता है। ऑक्सीजन की कमी की स्थिति में, एथिलीन का उत्पादन तेज हो जाता है जो बदले में बाह्य जड़ों में एरेनकाइमा गठन को उत्तेजित करता है और जड़ों के विकास को प्रेरित करता है।

हालाँकि, एसिटिलीन को एथिलीन में बदलने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है और रूपांतरण प्रतिक्रिया अवायुवीय जड़ कोशिका में अवरुद्ध हो जाती है, इसलिए, एसिटिलीन को अवायुवीय जड़ कोशिकाओं से जड़ के अधिक वायुवीय भागों या तनों की ओर स्थानांतरित कर देता है। तने के निचले हिस्से में आमतौर पर उच्चतम एसिटिलीन संचय के स्थान होते हैं और ऑक्सीजन की उपस्थिति में एथिलीन निकलता है। कम ऑक्सीजन सांद्रता में उगाए जाने पर गेहूँ की जड़ों में एरेनकाइमा का निर्माण देखा गया है।

(स) रेडियल ऑक्सीजन हानि में बाधाएँः एरेनकाइमेटस जड़ों में श्वसन द्वारा या जड़ से रेडियल प्रसार के माध्यम से राइजोस्फीयर में ऑक्सीजन खपत हो जाती है। जड़ों से राइजोस्फीयर तक ऑक्सीजन के प्रवाह को रेडियल ऑक्सीजन हानि कहा जाता है, जो आमतौर पर जलयुक्त मिट्टी में उगने वाले पौधों के राइजोस्फीयर को ऑक्सीजन देता है। हालाँकि, रेडियल ऑक्सीजन हानि जड़ों के शीर्ष पर ऑक्सीजन आपूर्ति की मात्रा को कम कर देता है जो पूरी तरह से एरेनकाइमेटस ऑक्सीजन पर निर्भर करता है और हाइपोक्सिक या एनोक्सिक वातावरण में जड़ वृद्धि को कम कर देता है। आंतरिक ऑक्सीजन में कमी से बाह्य जड़ों की कम वृद्धि होती है, इसके विपरीत, जल सहनशील धान में न केवल बड़ी मात्रा में एरेनकाइमा होता है, बल्कि इसकी अपस्थानिक जड़ों के आधार क्षेत्रों में रेडियल ऑक्सीजन हानि के लिए एक मजबूत अवरोधक भी होता है और जलभराव वाली मिट्टी में जड़ें अधिक गहराई तक प्रवेश करती हैं। हालाँकि, कुछ गेहूँ किस्मों के जड़ के एपिडर्मिस या एक्सोडर्मिस पर सुबेरिन या लिग्निन बढ़ा सकते हैं जो रेडियल ऑक्सीजन हानि के लिए बाधाओं के रूप में कार्य कर सकता है, परिणामस्वरूप जलभराव के प्रति सहनशीलता बढ़ जाती है।

(द) चयापचय अनुकूलनः जलभराव–सहिष्णु और असहिष्णु पौधों में हाइपोक्सिया या एनोक्सिया के तहत पौधो के ऊतकों में जड़ श्वसन में कमी के कारण ऊर्जा संकट पैदा हो जाता है। सहिष्णु पौधों की प्रजातियाँ ऑक्सीजन की कमी के प्रति चयापचय अनुकूलन के माध्यम से ऊर्जा संकट का सामना करती हैं। ऑक्सीजन की कमी के लिए चयापचय अनुकूलन में शामिल हैः अवायुवीय श्वसन, अवायुवीय श्वसन के लिए कार्बोहाइड्रेट आपूर्ति का रखरखाव, साइटोप्लाज्मिक अम्लीकरण से बचाव और एंटीऑक्सीडेटिव रक्षा प्रणाली का विकास इत्यादि।

(ध) घुलनशील शर्करा की उपलब्धता में वृद्धिः हाइपोक्सिया या एनोक्सिया के तहत ऊर्जा चयापचय को वायुवीय से अवायुवीय स्तिथि में स्थानांतरित करने के कारण ऊतक की ऊर्जा आवश्यकताएं बहुत सीमित हो जाती हैं क्योंकि ग्लूकोज के प्रति बहुत कम एटीपी उत्पन्न होते हैं। हाइपोक्सिक या एनोक्सिक जड़ों में अवायुवीय चयापचय का उच्च स्तर ऊर्जा को पर्याप्त रूप से आपूर्ति करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है जो पौधों के अस्तित्व के लिए जड़ों में चयापचय को बनाए रख सकता है। तुलनात्मक रूप से सहिष्णु जीनोटाइप की जड़ों में अतिसंवेदनशील जीनोटाइप की तुलना में अधिक घुलनशील शर्करा सामग्री होती है।

फसलों में जलभराव को नियंत्रित करने के लिए वैकल्पिक प्रबंधन

1. जल निकासी आमतौर पर जलभराव के प्रबंधन का सबसे अच्छा उपाय है। अन्य प्रबंधन विकल्प जैसे फसल का चयन, बीजारोपण, उर्वरक, खरपतवार और रोग नियंत्रण। आमतौर पर, फसल चक्र और प्रबंधन में बदलाव के साथ, प्रमुख लागतों में बीज और अतिरिक्त उर्वरक खरीदने की लागत, और खरपतवार और कीट नियंत्रण की लागत शामिल होगी। अनाज की कुछ प्रजातियाँ दूसरों की तुलना में अधिक सहनशील होती है।

2. फसल की जल्दी और दीर्घ अवधि वाली किस्मों की बुवाई करने से फसल को जलभराव से होने वाले नुकसान से बचाने में मदद मिलती है। यदि अंकुरण और उगने के बीच पौधों में पानी भर जाए तो फसल की गंभीर क्षति होती है। असमान अंकुरण के प्रति रक्षा और कल्ले निकलने पर जलभराव के प्रति संवेदनशील क्षेत्रों में बुवाई दर बढ़ाएँ। जलभराव से कल्ले निकलने की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। उच्च बुवाई दर से खरपतवारों के प्रति फसलों की प्रतिस्पर्धा भी बढ़ेगी।

3. जलभराव होने से पहले नाइट्रोजन की अच्छी मात्रा होने से फसलें जलभराव को बेहतर ढंग से सहन कर लेती हैं। जलभराव अवधि के अंत में नाइट्रोजन लगाने से लाभ हो सकता है। नाइट्रोजन को बुवाई के समय या तुरंत बाद दिया गया जो निक्षालन या विनाइट्रीकरण के कारण नष्ट हो जाती है। हालाँकि, मिट्टी गीली होने पर आमतौर पर नाइट्रोजन का मिट्टी में अनुप्रयोग नहीं किया जा सकता है, इसलिए छिड़काव पर विचार करें।

यदि जलभराव मध्यम है (मिट्टी की सतह पर 7–30 दिन तक), और फसल सक्रिय रूप से बढ़ रही हो तो जलभराव के बाद नाइट्रोजन प्रयोग की सिफारिश की जाती है, जहाँ मूल नाइट्रोजन मात्रा का प्रयोग 0–50 कि.ग्रा./हैक्टर था। हालाँकि, जलभराव गंभीर (मिट्टी की सतह पर 30 दिनों से अधिक), हो तो जलभराव के बाद नाइट्रोजन अनुप्रयोग के लाभ संदिग्ध हैं।

समाप्त

5

अंकित, भास्कर नरजरी, रचना[1], योगेश, प्रदीप फोगाट एवं सुमंत्रा आर्य
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[1]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
E-mail: ankityadav13419@gmail.com

भूमि जलभराव के प्रबंधन के लिए उचित सिफारिशें

पिछले 50 वर्षों में दुनिया के कृषि क्षेत्रों में सूखे और बाढ़ सहित, पानी की चरम उपलब्धता में वृद्धि हुई है। जलभराव पौधों के जड़ क्षेत्र में अतिरिक्त पानी की उपस्थिति है जिसके परिणामस्वरूप खराब गैस विनिमय और अवायुवीय स्थिति होती है। जलभराव मुख्य अजैविक तनावों में से एक है, जो मिट्टी की गुणवत्ता और फसल की वृद्धि को प्रभावित करता है। जलभराव की स्थिति लंबी अवधि तक, पूरे वर्ष या एक वर्ष के कुछ समय तक बनी रह सकती है। जलवायु परिवर्तन के कारण कुल मौसमी वर्षा में संशोधन के साथ–साथ मौसमी वर्षा की घटनाओं में भी बदलाव आया है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण जलभराव की घटनाएँ अधिक, गंभीर और अप्रत्याशित होती हैं। जलभराव विश्वव्यापी चिंता का विषय है, जो संयुक्त राज्य अमेरिका की 16 प्रतिशत मिट्टी, रूस की 10 प्रतिशत कृषि भूमि और भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और चीन के सिंचित फसल उत्पादन क्षेत्रों को प्रभावित करता है। भारत में लगभग 14.3 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में जलभराव है और 8.6 मिलियन हैक्टर क्षेत्र स्थायी रूप से जलमग्न है। तेजी से विकसित हो रहे राज्य हरियाणा में, 0.45 मिलियन हैक्टर क्षेत्र जलभराव और लवणता की समस्या से ग्रस्त हैं और इस राज्य के आठ जिलों रोहतक, झज्जर, चरखी दादरी, भिवानी, हिसार, जींद, सिरसा और फतेहाबाद में फसल उगाने में प्रमुख बाधाओं में से एक बन गया है। जलभराव से इन जिलों के सिंचाई कमांड क्षेत्रों में फसल प्रणाली और फसल उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक–आर्थिक नुकसान हो रहा है। प्रभावित क्षेत्रों में जल स्तर के लगातार बढ़ने से, किसानों ने कृषि से अपना प्राथमिक आय स्रोत खो दिया है क्योंकि उनकी भूमि जलभराव के कारण अनुत्पादक हो गई है। जैसे, राज्य में स्थलाकृतिक ढलान उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम की ओर है और बाढ़ का पानी इन जिलों की ओर बढ़ता है और निचले इलाकों में जमा हो जाता है। विश्व स्तर पर, प्रतिवर्ष 10 से 15 मिलियन हैक्टर गेहूँ जलभराव से प्रभावित होता है, जिससे उपज में 20 से 50 प्रतिशत तक की हानि होती है। जलभराव से अन्य अनाज फसलों जैसे जौ, कैनोला, मटर, मसूर और चना की उपज में भी नुकसान होता है। उपयुक्त मिट्टी और फसल प्रबंधन सिफारिशों से अतिरिक्त कृषि भूमि की आवश्यकता को कम करके पारिस्थितिकी और आर्थिक लचीलेपन में सुधार के माध्यम से मिट्टी की गुणवत्ता और फसल उत्पादकता में सुधार होता है। बेहतर मृदा प्रबंधन से अंतःसरण बढ़ सकती है, सतही अपवाह कम हो सकता है और पौधों के लिए पानी और पोषक तत्वों की उपलब्धता में भी सुधार हो सकता है और फसल प्रबंधन उच्च पैदावार में योगदान दे सकता है।

जलभराव के मुख्य कारण

जलभराव, पानी के साथ–साथ मिट्टी की संतृप्ति, विभिन्न प्राकृतिक और मानव–प्रेरित कारकों के कारण हो सकता है। यहाँ जलभराव के कुछ कारण दिए गए हैं:

क. भारी वर्षा: तीव्र या लंबे समय तक वर्षा से जल–जमाव हो सकता है, विशेष रूप से खराब जल निकास प्रणाली या

उच्च चिकनी मिट्टी वाले क्षेत्रों में। मिट्टी पानी से जलप्लावित हो सकती है, इसे पर्याप्त रूप से अवशोषित या सूखाने में असमर्थ हो सकती है।

ख. खराब जलनिकास अवसंरचनाः अपर्याप्त या खराब रखरखाव वाली जलनिकास प्रणालियाँ, जिनमें अवरुद्ध खाईयाँ, पुलिया या तूफानी जल नालियाँ शामिल हैं जो मिट्टी से दूर पानी के प्रवाह को बाधित कर सकती है, जिससे जलभराव में योगदान हो सकता है।

ग. उच्च जल स्तरः उच्च जल स्तर तब होता है जब भूजल स्तर मिट्टी की सतह के करीब होता है। ऐसे मामलों में, खासकर बरसात के दौरान, अतिरिक्त पानी नीचे की ओर नहीं जा पाता जिससे जलभराव हो जाता है।

घ. संकुचित मिट्टीः भारी मशीनरी, पशुओं के रौंदने या पैदल यातायात से मिट्टी के संघनन से छिद्रों की जगह कम हो जाती है और पानी के अंतःसरण और जलनिकास में बाधा आती है, जिससे जलभराव की संभावना बढ़ जाती है।

उच्च जल स्तर

ङ. चिकनी मिट्टीः चिकनी मिट्टी में कम पारगम्यता वाले महीन कण होते हैं, जिससे उनमें जलभराव की संभावना होती है। इनमें रेतीली मिट्टी की तुलना में अधिक समय तक पानी जमा रहता है और जलनिकास की क्षमता सीमित होती है।

च. शहरीकरणः शहरी विकास अक्सर पारगम्य सतहों को फुटपाथ और इमारतों जैसे अभेद्य सतहों से बदल देता है, जिससे प्राकृतिक अंतःसरण कम हो जाता है और सतही अपवाह बढ़ जाता है, जो शहरी क्षेत्रों में जलभराव को बढ़ा सकता है।

छ. भूमि श्रेणीकरण व परिवर्तनः खराब श्रेणीकरण समतल भूमि गड्ढों या निचले इलाकों का निर्माण कर सकती है जहाँ पानी जमा हो जाता है, जिससे स्थानीय स्तर पर जलभराव की समस्या पैदा हो जाती है।

ज. बाढ़ः भारी वर्षा या बर्फ पिघलने के दौरान नदियों, झरनों या नहरों के उफान पर आने से आसपास के इलाके जलमग्न हो सकते हैं, जिससे जलभराव हो जाता है। आकस्मिक बाढ़ या मौसमी बाढ़ की घटनाएँ जलभराव की समस्या को बढ़ा सकती है।

झ. प्राकृतिक परिदृश्य विशेषताएंः प्राकृतिक अवसाद, दलदल या आर्द्रभूमि में प्राकृतिक रूप से पानी जमा हो सकता है, जिससे आसपास के क्षेत्रों में जलभराव होता है, खासकर बरसात के मौसम में।

ञ. कृषि पद्धतियाँः अनुचित सिंचाई पद्धतियाँ, जैसे अति–सिंचाई या अनुचित समय–निर्धारण, के परिणामस्वरूप मिट्टी पानी को अवशोषित करने या निकालने की क्षमता से अधिक संतृप्त होकर जल जमाव का कारण बन सकती है।

जलभराव का मिट्टी की गुणवत्ता और फसल उत्पादकता पर प्रभाव

क. ऑक्सीजन की कमीः मिट्टी के जीवों और पौधों की जड़ों के श्वसन के लिए ऑक्सीजन आवश्यक होती है। जलभराव से मिट्टी के छिद्रों में हवा की आवाजाही बाधित हो जाती है, जिससे ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। ऑक्सीजन की कमी जड़ वृद्धि को बाधित कर सकती है, सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को कम करती है, और पोषक तत्व चक्रण प्रक्रियाओं को बाधित करती है, जो अंततः मिट्टी के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है।

ख. पोषक तत्वों का असंतुलनः जलभराव की स्थिति मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता और गतिशीलता को बदलती है। लंबे समय तक जलभराव से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम जैसे पोषक तत्वों का रिसाव हो जाता

है, जिससे मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है। इसके विपरीत, अवायुवीय स्थितियों के परिणामस्वरूप हाइड्रोजन सल्फाइड, मैंगनीज और आयरन जैसे विषाक्त पदार्थों का संचय हो सकता है, जिससे पौधों के पोषक तत्व ग्रहण और विकास में बाधा आती है।

ग. **मिट्टी की संरचना में गिरावटः** जलभराव से मिट्टी का संघनन और एकत्रीकरण टूट जाता है, खासकर चिकनी मिट्टी में। मिट्टी की संरचना के नष्ट होने से छिद्रों की जगह और पारगम्यता कम हो जाती है, जिससे पानी के प्रवेश और जलनिकास में बाधा आती है। संकुचित मिट्टी जड़ों के प्रवेश को प्रतिबंधित करती है और मृदा परिच्छेदिका के भीतर पानी, हवा और पोषक तत्वों की आवाजाही को सीमित करती है, जिससे पौधों की वृद्धि और उत्पादकता में कमी हो जाती है।

घ. **मिट्टी की लवणता में वृद्धिः** लंबे समय तक जलभराव मिट्टी की लवणता की समस्या को बढ़ावा देता है, विशेष रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में। जैसे ही मिट्टी की सतह से पानी वाष्पित होता है, नमक जमा हो जाता है, जिससे लवणता का स्तर बढ़ जाता है। बढ़ी हुई मिट्टी की लवणता पौधों द्वारा पानी ग्रहण करने को बाधित करती है, परासरणीय संतुलन को बाधित करती है और फसल की पैदावार को कम करती है। इसके अतिरिक्त, लवणीय मिट्टी सूक्ष्मजीवों की गतिविधि और पोषक चक्र के लिए कम अनुकूल होती है, जिससे मिट्टी के स्वास्थ्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

जलभराव से भूमि में लवणता की समस्या

ङ. **विषाक्त पदार्थों का संचयः** जलयुक्त मिट्टी में अवायुवीय स्थितियां मिट्टी के खनिजों और कार्बनिक पदार्थों से हाइड्रोजन सल्फाइड, मैंगनीज और लौह जैसे जहरीले पदार्थों के उत्सर्जन को बढ़ावा देती हैं। ये जहरीले यौगिक पौधों के ऊतकों में जमा हो जाती हैं, जिससे शारीरिक क्षति होती है और चयापचय प्रक्रियाएं बाधित हो सकती हैं। विषाक्तता के लक्षणों में पत्ती परिगलन, मुरझाना और समग्र पौधे की गिरावट शामिल होती है।

च. **सूक्ष्मजीवी गतिविधि में कमीः** जलभराव की स्थिति एक अवायुवीय वातावरण बनाती है जो मिट्टी के सूक्ष्मजीवों के लिए प्रतिकूल है। वायुवीय रोगाणु, जो पोषक तत्वों के खनिजकरण और कार्बनिक पदार्थ के अपघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जलभराव की स्थिति में दब जाते हैं। कम सूक्ष्मजीवी गतिविधि पोषक चक्र प्रक्रियाओं, कार्बनिक पदार्थों के अपघटन और मिट्टी की संरचना के रखरखाव को सीमित करती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता और पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यप्रणाली प्रभावित होती है।

छ. **मृदा जैव विविधता का नुकसानः** जल–जमाव मिट्टी के जीवों की संरचना और प्रचुरता में परिवर्तन करके मिट्टी की जैव विविधता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। केंचुए, लाभकारी बैक्टीरिया और कवक सहित कई मिट्टी के जीव अवायुवीय स्थितियों के प्रति संवेदनशील हैं जिससे बहुतायत या विविधता में गिरावट आ सकती है। मिट्टी की जैव विविधता का नुकसान पारिस्थितिकी तंत्र के कामकाज, पोषक चक्र और पर्यावरणीय तनावों के प्रति मिट्टी के लचीलेपन को बाधित करता है।

ज. **प्रकाश संश्लेषक गतिविधि में कमीः** जलभराव से प्रेरित तनाव, कम ऊर्जा उपलब्धता, पोषक तत्वों के असंतुलन और चयापचय संबंधी व्यवधानों के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषक गतिविधि को खराब करता है। प्रकाश संश्लेषण बाधित होने के कारण पौधों में पत्ती क्लोरोसिस, मुरझाने और पत्ती के विस्तार में कमी के लक्षण दिखाई दे सकते हैं। प्रकाश संश्लेषक क्षमता में कमी से पौधे की कार्बोहाइड्रेट पैदा करने और विकास और उपज को समर्थन देने की क्षमता सीमित हो जाती है।

झ. फसल उत्पादकता में कमीः अंततः मिट्टी की गुणवत्ता, पोषक तत्वों की उपलब्धता, मिट्टी की संरचना और सूक्ष्मजीवी गतिविधि पर जलभराव के संयुक्त प्रभाव से फसल उत्पादकता में कमी आती है। जलभराव वाली मिट्टी पौधों द्वारा बेहतर जड़ विकास, पोषक तत्व ग्रहण और कुशल जल उपयोग का समर्थन करने में कम सक्षम होती है। परिणामस्वरूप, फसल की पैदावार में गिरावट आ सकती है, जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान होगा और खाद्य सुरक्षा संबंधी चिंताएँ पैदा होंगी।

जलभराव का फसल एवं जड़ की वृद्धि पर दुश्प्रभाव

जलभराव प्रबंधन के लिए उचित तकनीकियाँ

क. जलनिकास में सुधार

उपसतही जलनिकासः उपसतह जलनिकास प्रणालियाँ, जैसे टाइल नालियाँ, फ्रेंच नालियाँ एवं छिद्रित पाइप, प्रभावी ढंग से जल स्तर को कम करती हैं और खराब प्राकृतिक जलनिकास वाले खेतों में जलभराव को रोकती है।

उपसतही जलनिकास

सतही जलनिकास को बनाए रखें: सुनिश्चित करें कि सतही जलनिकास के बुनियादी ढांचे, जैसे खाई, पुलिया और चैनल खेतों से अतिरिक्त पानी को कुशलतापूर्वक निकालने की सुविधा के लिए उचित रूप से डिजाइन, रखरखाव और अवरोधों से मुक्त हैं।

नियंत्रित जलनिकास लागू करें: नियंत्रित जलनिकास प्रणालियाँ किसानों को जल नियंत्रण संरचनाएँ स्थापित करके खेतों में जल स्तर को विनियमित करने की अनुमति देती हैं। इससे मिट्टी की नमी की स्थिति को अनुकूलित करने और जलभराव की घटनाओं की अवधि को कम करने में मदद मिलती है।

ख. मृदा संरचना में सुधार

मृदा संघनन को कम करें: मृदा संघनन को कम करने वाली सिफारिशों को लागू करें, जैसे गीली मिट्टी पर भारी मशीनरी के संचालन से बचाना, नियंत्रित यातायात प्रणालियों का उपयोग करना और संरक्षण जुताई के तरीकों को अपनाना।

कार्बनिक पदार्थ शामिल करें: मिट्टी की संरचना में सुधार, सरंध्रता, जल अंतःसरण और जलनिकास क्षमता को बढ़ाने के लिए जैविक संशोधन, जैसे कम्पोस्ट, जैविक खाद या कवर फसलें शामिल करें।

ग. गहरी जुताई

गहरी जुताई, नो–टिल प्रणाली की लंबे समय से चली आ रही उत्पादकता को बनाए रखने के लिए डीप रिपर, रोटरी, स्पैडर, मोल्डबोर्ड हल या डिस्क हल के साथ एकल या सामयिक अभ्यास है। सघन मिट्टी की परतों को ढीला करने के लिए गहरी जुताई करने का सुझाव दिया गया है, विशेष रूप से मिट्टी की उप–सतह में जलनिकास सुधार करने के लिए। इस प्रकार से

जल जमाव को कम किया जा सकता है। इस तकनीक में क्षारीयता को कम करने और मिट्टी की संरचना में सुधार करने के लिए जिप्सम उपयोग भी शामिल हो सकती है, जिससे जलभराव भी कम हो जाता है।

सफेदे की सहायता से जैव–जल निकासी

घ. जैव–जलनिकास

जैव–जलनिकास लागत प्रभावी कृषिवानिकी मॉडल में से एक है, जिसमें पेड़ों को फसलों के साथ मेड़ों पर या अंतर–फसल द्वारा उगाया जाता है। वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया द्वारा, पेड़ लगातार सतही मिट्टी के स्तर से पर्याप्त मात्रा में पानी निकालते हैं, जिससे जल स्तर कम हो जाता है। पेड़–पौधे भी वन उत्पाद देकर दीर्घकालिक लाभ पहुंचाते हैं। जैव–जलनिकास की यह अवधारणा हाल ही में हर जगह व्यावहारिक रूप से सबसे प्रभावी और अत्यधिक किफायती उपाय के रूप में उभरी है। जैव–जलनिकास को उनकी जैव ऊर्जा का उपयोग करके गहरी जड़ वाले पौधों के माध्यम से वायुमंडल में अतिरिक्त मिट्टी के पानी को बाहर निकालने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

ङ. जल–जमाव सहनशील किस्मों का चयन करें

फसल की ऐसी किस्मों का चयन करें जो जल–जमाव की स्थिति, गहरी जड़ प्रणाली या बाढ़ के प्रति अनुकूलन प्रदर्शित करती हैं। जलयुक्त मिट्टी के लिए उपयुक्त किस्मों पर सिफारिशों के लिए स्थानीय कृषि विस्तार सेवाओं या प्रजनकों से परामर्श लें।

च. जल प्रबंधन पद्धतियों को लागू करें

सिंचाई की उचित समय–सारणी बनाएं: अधिक सिंचाई से बचने और जलभराव के जोखिम को कम करने के लिए मिट्टी की नमी की निगरानी के आधार पर सटीक सिंचाई पद्धतियों को अपनाएं।

ऊंची क्यारियों या मेड़ों पर रोपण करें: ऊंची क्यारियों या मेड़ों पर रोपण करने से मिट्टी के जलनिकास और वातन में सुधार हो सकता है, जिससे जड़ क्षेत्र में जलभराव की संभावना कम हो जाती है।

छ. मृदा संरक्षण उपाय लागू करें

मल्चिंग: जलभराव वाले क्षेत्रों में सतह के वाष्पीकरण को कम करने, कटाव को नियंत्रित करने और मिट्टी की नमी बनाए रखने के लिए मिट्टी की सतह पर जैविक या सिंथेटिक गीली घास लगाएं।

समोच्च खेती: सतही अपवाह और मिट्टी के कटाव को कम करने, जलभराव वाले क्षेत्रों के निर्माण को रोकने के लिए समोच्च जुताई और रोपण तकनीकों को लागू करें।

ज. मिट्टी की नमी की निगरानी और प्रबंधन करें

मृदा नमी सेंसर का उपयोग करें: मिट्टी की नमी के स्तर को ट्रैक करने और खेत में जलभराव प्रवृत क्षेत्रों की पहचान के लिए मिट्टी की नमी निगरानी प्रणाली स्थापित करें। मिट्टी की इष्टतम नमी की स्थिति बनाए रखने के लिए सिंचाई पद्धतियों को तदनुसार समायोजित करें।

फसल चक्र लागू करें: मिट्टी की नमी के स्तर को प्रबंधित करने और खेत के विशिष्ट क्षेत्रों में जलभराव के जोखिम को कम करने के लिए विभिन्न जल आवश्यकताओं वाली फसलों को चक्रित करें।

झ. पोषक तत्व अनुप्रयोग

पोषक तत्वों की कमी पौधों पर जलभराव के प्रमुख प्रभावों में से एक है, जिसके परिणामस्वरूप प्रकाश संश्लेषण और शुद्ध कार्बन निर्धारण में कमी आती है, जिससे पौंधों के विकास और उपज में कमी आती है। आवश्यक पोषक तत्वों के उपयोग से जलभराव जैसे अजैविक तनाव के नकारात्मक प्रभावों को कम करने में मदद मिलेगी, जिससे उत्पादकता में वृद्धि होगी। बढ़ी हुई दक्षता वाले नाइट्रोजन उर्वरकों जैसे धीमी गति से निकलने वाले या नियंत्रित–रिलीज उर्वरकों का उपयोग जल जमाव की स्थिति में पौधों की वृद्धि और विकास में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विभिन्न फॉस्फोरस स्रोतों जैसे डेयरी, गोबर की खाद और मांस और हड्डी मील का बहिर्जात अनुप्रयोग गीले बढ़ते मौसम के दौरान फॉस्फोरस कमी वाली स्थितियों में इष्टतम उपज पैदा करने के लिए प्रभावी है। पोटैशियम उर्वरक भी गन्ना, सरसों और कपास सहित कई फसलों में जलभराव के हानिकारक प्रभावों को कम करता है।

ञ. पादप वृद्धि नियामक

पादप वृद्धि नियामकों को उचित वृद्धि अवस्था में लागू करके पौधों में जलभराव से होने वाली क्षति को कम किया जा सकता है। ऑक्सिन और साइटोकाइनिन जैसे पीजीआर का प्रयोग करने से जल जमाव की स्थितियों में पौधों की वृद्धि में सुधार होता है। जलयुक्त पौधों की रंध्र संचालन और प्रकाश संश्लेषक क्षमता को बढ़ावा देने के लिए दो हार्मोन मिलकर काम करते हैं।

निष्कर्ष

गंभीर जलभराव के लिए, जलनिकास और फसल प्रबंधन का संयोजन सबसे महत्वपूर्ण कदम होगा। मामूली जलभराव के लिए, सहनशील किस्मों का चयन करना या उचित कृषि पद्धतियों को लागू करना प्रभावी हो सकता है। इन मृदा जलभराव प्रबंधन सिफारिशों के संयोजन को लागू करके, किसान मृदा स्वास्थ्य, फसल उत्पादकता और लाभ प्रदत्ता पर जलभराव के प्रतिकूल प्रभावों को कम कर सकते हैं। इष्टतम परिणाम प्राप्त करने के लिए मिट्टी के प्रकार, स्थलाकृति और जलवायु परिस्थितियों सहित उस स्थान की विशिष्ट विशेषताओं के अनुसार प्रबंधन रणनीतियों को तैयार करना आवश्यक है। मृदा जल भराव के प्रबंधन में दीर्घकालिक सफलता के लिए बदलती परिस्थितियों के आधार पर प्रबंधन प्रथाओं की नियमित निगरानी और अनुकूलन भी महत्वपूर्ण है।

समाप्त

6

हरदेव राम, राजेश कुमार मीना एंव अनुराग सक्सेना
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
E-mail: hardev.ram@icar.gov.in

लवणीय एवं क्षारीय भूमियों में वर्षभर हरा चारा उत्पादन तकनीकें

कृषि एवं पशुपालन भारतीय अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है। जलवायु परिवर्तन व भूमियों का खराब होता स्वास्थ्य, अतिवृष्टि तथा असामयिक वर्षा, सुखा व बाढ चारा उत्पादन को ज्यादा प्रभावित करते जा रहें हैं। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं ने अन्य फसलों के साथ–साथ चारा उत्पादन को तो प्रभावित किया ही है साथ ही मृदा व जल की लवणता/क्षारीयता तथा निरन्तर घटता भूजल स्तर भी एक गंभीर समस्या बनता जा रहा है। समस्याग्रस्त मृदाओं में ऐसे लक्षण होते हैं जिसकी कमी अथवा अधिकता के कारण ये फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं रहती। इन मृदाओं का उपयोग करके ही चारा उत्पादन के लिए अतिरिक्त संसाधनों का विकास संभव है। चारा के लिए अम्लीय, लवणग्रस्त, जलभराव वाली तथा कंकर वाली मृदाओं को संसाधन के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है।

चारे की बढती मांग, घटती धरती तथा बदलते जलवायु परिवेश में चारा उत्पादन पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। वैज्ञानिक इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील हैं कि पशुओं के पर्याप्त आहार के लिए आवश्यक 130 करोड़ टन चारा प्रति वर्ष देश के विभिन्न जलवायु व समस्याग्रस्त क्षेत्रों से नई तकनीकों से प्राप्त कर सकें। आपदा प्रबंधन की एक रिर्पोट के अनुसार देश का 85 प्रतिशत भाग किसी न किसी प्रकार की आपदा के दायरे में आता है जिसमें लगभग 68 मिलियन हैक्टर सुखे से प्रभावित है। हरा चारा पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य और अधिकतम दूध उत्पादन के लिए आवश्यक है। पशु इसे चाव से खाते हैं और आसानी से पचा सकते हैं। हरे चारे में वांछित विटामिन और खनिज अधिक मात्रा में होते हैं जो पशु की प्रजनन शक्ति के लिए महत्वपूर्ण है। हरा चारा खिलाने से न सिर्फ दूध में बढोतरी होती है बल्कि उनके खान–पान का खर्चा भी कम हो जाता है। इसलिए पशुओं को वर्ष भर हरा चारा खिलाने का प्रयास होना चाहिए।

वर्षभर हरा चारा उत्पादन

दुधारू पशुओं को सस्ता पोशक आहार उपलब्ध कराने के लिए हरा स्वादिष्ट चारा खिलाना आवश्यक है। राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में हुए परीक्षणों से सिद्ध हो चुका है कि हरा चारा पूरे वर्ष भर भी प्राप्त किया जा सकता है।

- अधिक चारा उत्पादन के लिए चारा फसलों की उन्नत प्रजातियों को उगाना चाहिए ।
- उत्तम गुणवता वाले चारे के बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- सिंचित क्षेत्रों में जब दो फसलों के बीच खेत खाली हो, कम समय में तैयार होने वाली चारा फसलों को उगाना चाहिए।
- गाँव की सामूहिक भूमि पर बहुवर्षीय घास एवं चारे वाले वृक्ष जैसे खेजड़ी, सूबबूल आदि को लगाना चाहिए।
- फलीदार और बिना फलीदार हरे चारे को मिलाकर खिलाने से चारा की पौष्टिकता बढ़ जाती है।
- जब हरे चारे की आधी फसल में फूल आ जाए तब उसे काट कर खिलाना उपयुक्त होता है।
- घर के पिछवाड़े में पानी के निकास स्थान पर एक से ज्यादा कटाई देने वाली बहुवर्षीय घास लगानी चाहिए जैसे पेरा घास, संकर नैपियर घास।
- वर्ष भर हरा चारा खिलाने के लिए उपरोक्त फसलों को सघन फसल चक्रों में उगाना चाहिए।

चारा फसलों को उगाने के लिए उत्पादन पद्धतियां

हाइब्रिड नेपियर *(पेनिसेटम् परप्यूरियम)* : इसकी सामान्य रूप से मुख्यतः दो किस्में उगायी जाती है, पूसा जांइट तथा एन. वी. 21। इसके अलावा कुछ अन्य प्रमाणित किस्में भी चारे के लिए उगायी जाती हैं। ये प्रमुखतः पूसा नेपियर 1, पूसा नेपियर 2, ई.बी. 4, गजराज, एन.वी. 5 तथा एन.वी. 393 है। हाइब्रिड नेपियर की दो किस्में पी.वी.एन. 233 एवं पी.बी.एन. 83 को मुख्य रूप से पंजाब व हरियाणा में उगाये जाने वाले क्षेत्रों के लिए संस्तुत किया गया है। हाइब्रिड नेपियर की रोपाई फरवरी के अन्तिम सप्ताह से मई महीने तक की जा सकती है। नई उगी हुई कलियों को गर्मी से बचाने के लिए इसे किसी तरह मध्य अप्रैल तक बो देना चाहिए, क्योंकि मई के बाद की गई रोपाई से खरीफ फसल की पैदावार अच्छी नहीं मिलती है।

यह प्रायः वानस्पतिक विधि द्वारा जड़ या तना टुकडों की रोपाई खेतों में करके चारे के लिए उगायी जाती है। इसे उगाने के लिए स्वस्थ एवं रोगमुक्त तने का चुनाव करना चाहिए। 30 सेंमी. जड़ या तना टुकड़ा, जिसमें 2–3 गाँठें मौजूद हों, उन्हें रोपाई के लिए प्रयोग करना चाहिए। प्रति एकड़ खेत की रोपाई के लिए लगभग 11000 जड़ टुकडों या तना टुकडों की आवश्यकता होती है जिनका वजन लगभग 12–13 क्विंटल तक होता है। तना टुकड़ों को पंक्ति में 40 सेंमी. की दूरी पर रखना चाहिए या पंक्तियों की दूरी 60 सेंमी. एवं पौधों की दूरी भी 60 सेंमी. निर्धारित करके इसकी रोपाई पंक्तियों में करनी चाहिए। इन टुकड़ों को भूमि में रोपते समय यह ध्यान रखें कि इसकी एक गाँठ जमीन के अन्दर तथा दूसरी गाँठ जमीन की सतह पर हो और उसके चारों तरफ मिट्टी को दबा देना चाहिए। जड़दार टुकडों या तना टुकडों को 45 डिग्री कोण पर जमीन में रोपना चाहिए।

इसकी पहली कटान रोपाई के लगभग 50 दिन के बाद की जा सकती है। पहली कटाई के बाद वाली कटाईयों को पौधे की बढ़वार लगभग 1 मीटर उँचाई तक होने के बाद की जानी चाहिए अन्यथा अधिक लंबाई बढ़ जाने से इसकी पौष्टिकता में कमी आती है। एकल फसल उगाने से यह चारा ज्यादा सख्त, कम जायकेदार एवं कम पचने वाला होता है, अतः इसे सह–फसल या अंतःफसल जैसे जई, सेंजी एवं जापानी सरसों के साथ उगाया जा सकता है। उपयुक्त हाइब्रिड नेपियर किस्मों से अच्छी देखभाल एवं प्रबंधन से लगभग 1100 एवं 960 क्विंटल/एकड़ हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

गिनी घास *(पेनिकम् मैक्सिकम)* : गिनी घास मध्य मार्च से मध्य मई तक सिंचित क्षेत्रों में बोई जा सकती है। अच्छी बढ़वार एवं पैदावार के लिए पी.जी.जी.–518 एवं पी.जी.जी.–101 किस्में हरियाणा एवं पंजाब में उगाने के लिए संस्तुत की गयी है। कम बढ़ने व कम लंबाई वाली गिनी घास की किस्में सावी और मेक्वेनी की प्रायः बीजों द्वारा बुवाई की जाती है। इसके लिए औसतन 6–8 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ पर्याप्त होता है। यदि बीज का जमाव 90 प्रतिशत तक हो तो इसे घटाकर 1 कि.ग्रा. प्रति एकड किया जा सकता है। बोने के लिए भंडारित बीज का ही प्रयोग करना चाहिए। बीज का खूड़ में 25–30 सेंमी. पंक्ति की दूरी पर 1–2 सेंमी. गहराई में बोना चाहिए, या इसे छिटकंवा विधि से बिखेरकर कल्टीवेटर के साथ पटेला चलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिए और उसके बाद खेत की सिंचाई करनी चाहिए।

रोपाई विधि का प्रयोग प्रायः बडी या औसत लंबाई वाली किस्मों को जड़दार टुकडों द्वारा किया जाता है। इसे खेत में लगाने के लिए पहले 2 मीटर पर पंक्तियों बना लेनी चाहिए तत्पश्चात् पंक्तियों में जड़दार टुकडों को 0.5 से 1 मीटर की दूरी पर लगाना चाहिए। इसकी रोपाई के लिए प्रति एकड़ लगभग 4000 जड़दार टुकडों की आवश्यकता होती है। इसकी रोपाई करते समय इसके चारों तरफ मिट्टी को अच्छी तरह सख्त बनाना चाहिए और इसके तुरंत बाद सिंचाई करनी चाहिए। गिनी घास की पहली कटाई बुवाई के 55 दिन बाद करनी चाहिए तथा इसके बाद वाली कटाई 25–30 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिए। हरे चारे की औसतन उपज 1200–1500 क्विंटल/हैक्टर या 600–700 क्विंटल/एकड़ होती है ।

तालिका 1: सरसों की लवण सहिष्णु उन्नत किस्म सीएस 64 का विवरण

फसल	स्वीकृत किस्म	बुवाई का समय	बीज दर कि.ग्रा / हैक्टर	खाद कि.ग्रा. / हैक्टर	सिंचाई	फसल कटाई का समय	उत्पादन टन / हैक्टर	टिप्पणी
ज्वार	पूसा चरी–1,6,9 जे. एस. 20 हरियाणा चरी विदिशा 60–1 एच.सी.136 उज्जैन 6,8सी. ओ.11 एस. 44 स्वर्ण मीठी एम. पी.चरी	मार्च से जुलाई (उ), फरवरी से अक्टूबर (द)	50	नत्रजन 100 कि.ग्रा. दो खुराक में	गर्मी में 3–4, वर्षा के मौसम में आवश्यकता अनुसार	80–90 दिन में देर से तैयार होने वाली किस्म एवं 60–70दिन में जल्दी तैयार होने वाली किस्म	30–50	गर्मी में एच.सी.एन. होती है और फूल आने से पहले नहीं खिलाना चाहिए
मक्का	अफ्रीकन टाल गंगा–52 विजय कम्पोजिट जे. 1006 जवाहर	मार्च से अगस्त (उ) फरवरी से नवम्बर (द)	60–75 50–60	नत्रजन 100 कि.ग्रा. दो खुराक में	गर्मी में 4–6, वर्षा के मौसम में आवश्यकता अनुसार	60–70 दिन	30–35	–
बाजरा	बी.जे–104 बी.के. 560, 230 बी.एल.–74	मार्च से 10 जुलाई (उ), फरवरी से नवम्बर (द)	10	नत्रजन 75 कि.ग्रा. दो खुराक में	गर्मी में 3–4 वर्षा के मौसम में आवश्यकता अनुसार	50–60 दिन फूल आने से पूर्व	35–45	–
लोबिया	एफ.ओ.एस–1 एच 71, के. 396 रशियन जांइट यू. पी. 286, 287	अप्रैल से जुलाई (उ) फरवरी से नवम्बर (द)	40–50 शुद्ध 15–20 मिश्रण	नत्रजन 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस 60 कि.ग्रा.	2–3	60–70 दिन	35	जलनिकास का अच्छा प्रबंध होना चाहिए
ग्वार	एफ.एस 277 ग्वार–80	जून से जुलाई	30–40 शाखाओं वाली, 50–55 बिना शाखाओं वाली	नत्रजन 20 कि. ग्रा. फॉस्फोरस 40 कि.ग्रा.	1–2	65–85 दिन	30–35	जल निकास का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए
जई	हरियाणा जई कैंट, यू.पी.ओ. ओ.एल. 9 जे.ए.ओ.–822 ओ.एस. 6, 8	मध्य अक्टूबर से दिसम्बर अन्त तक	75–80 मध्यम आकार बीज 100–120 मोटे बीज	नत्रजन 100 कि.ग्रा. दो खुराक में	3–4	110–120 दिन एक कटाई, 55 –60 दिन,दूसरी कटाई, बाद की कटाई 50–55 दिन बाद	45–50	–
बरसीम	मस्कावी वरदान वी. एल 10 वी.एल 22 वी.एल 42	सितम्बर मध्य और नवंबर प्रारम्भ	25–30	फॉस्फोरस 80 कि.ग्रा.	जाड़ों में 15 –20 दिन और गर्मी में 10–15 दिन के अन्तराल पर	पहली कटाई 40–45 दिन दूसरी, तीसरी कटाई 30–35 दिन इसके बाद 20–25 दिन पर	75–80 50–70	बरसीम कल्चर का उपयोग करें
रिंजका	टी–9 (बहुवर्षीय), आनंद–2 (वार्षिक), चेतक	अक्टूबर से नवम्बर	15	नत्रजन 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस 80 कि.ग्रा.	जाडे में 20 और गर्मी में 19 दिन के अन्तर पर	पहली कटाई 75–90 दिन पद इसके पश्चात कटाई 20–30 दिन के बाद	50–60	मई से जून में अत्यधिक अच्छी मिलती है
सरसों	एल.जी. एल., जापानी सरसों, चाइनीज गोभी	सितंबर के प्रारम्भ से नवंबर अन्त तक	8–15	नत्रजन 60 कि.ग्रा. दो खुराक में	2–3	60–70 दिन बाद	35–50	चाइनीज गोभी से दो कटाई ले सकते हैं, यदि पहली कटाई 45 दिन बाद की जाए

फसल	स्वीकृत किस्म	बुवाई का समय	बीज दर कि.ग्रा/हैक्टर	खाद कि.ग्रा./हैक्टर	सिंचाई	फसल कटाई का समय	उत्पादन टन/हैक्टर	टिप्पणी
शलजम	लाल और सफेद	सितंबर से नवंबर	5–6	नत्रजन 200 कि.ग्रा. दो खुराक में पोटाश मिट्‌टी परीक्षण अनुसार	3–4	60–70 दिन बाद	35–50	फसल की समय पर कटाई पर लेनी चाहिए
नेपियर बाजरा संकर	एन.वी. 21 एन.वी. 4 एन.वी. 3	मार्च से जुलाई (उ) फरवरी से नवंबर (द)	36000 (जड़ें)	नत्रजन 200 कि.ग्रा.	गर्मी में 10 दिन, सर्दी में 20 दिन के अन्तराल पर	पहली कटाई 60 दिन पर, इसके बाद 35–40 दिन के अंतराल पर	150 (उ) 200(द)	डचित अवस्था में खिलाना चाहिए

लवणीय/क्षारीय भूमियों के लिए उपयुक्त चारा फसलें

समस्याग्रस्त भूमियों में चारा फसल उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण सफलतापूर्वक उगाई जा सकने वाली फसलों का चयन करना होता है। ग्वार, धमन घास, सिटेरिया आदि 6 डेसी./मीटर तक लवणता में उगाई जा सकती है तथा ज्वार, जई, बरसीम, मकचरी आदि 8 डेसी./मीटर तक सहनशील होती हैं।

तालिका 2: चारा फसलों की लवण सहनशीलता

कम लवण सहनशील (वैद्युत चालकता 6 डेसी./मी.)	मध्यम लवण सहनशील (वैद्युत चालकता 8 डेसी./मी.)	अधिक लवण सहनशील (वैद्युत चालकता 12 डेसी./मी.)
ग्वार, धमन घास, पैनिकम घास	चंवला, मकचरी, ज्वार, नेपियर	सेंजी, बरसीम, रिंजका, सरसों

तालिका 3: लवणीय/क्षारीय भूमियों में प्रमुख चारा फसलों की उत्पादन क्षमता

फसल	लवणीय भूमि में हरा चारा उपज (टन/हैक्टर)	क्षारीय भूमि में हरा चारा उपज (टन/हैक्टर)
ज्वार	35–50	35–40
मकचरी	30–40	–
संकर नेपियर घास	70–110	80–100
रिंजका	60–80	–
जई	35–40	35–45
चंवला	25–35	–
बाजरा	–	35–45
बरसीम	–	60–80

चारा फसलों में मकचरी, बरसीम, रिंजका मृदा लवणता के प्रति सहनशील होती है। गाजर व शलजम वैद्युत चालकता 8 डेसी./मीटर तक उगाई जा सकती है। लवणीय भूमि में रोड्स घास, पैरा घास, दूब घास आदि 4 डेसी./मीटर तथा दीनानाथ घास 8 डेसी./मीटर तक उगा सकते हैं। लवणीय–क्षारीय भूमियों में जिनका पीएच मान 10 तथा ई.सी. 10.7 डेसी./मीटर हो, मकचरी घास सबसे उपयुक्त है। संकर नेपियर घास 60 विनिमयशील सोडियम प्रतिशतता तक उगाई जा सकती है।

समाप्त

7

केथावथ अजय कुमार[1], नसीब सिंह[1] एवं अभिषेक पटेल[2]
[1]भाकृअनुप–उत्तर–पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, बारापानी–793103 (मेघालय)
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र भुज–370105 (गुजरात)
E-mail: ajay.lohith@gmail.com

जलकुंड – भारत के पूर्वोत्तर पहाड़ी क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन हेतु संरचना

लंबे समय तक बरसात के कारण, पूर्वोत्तर पहाड़ी क्षेत्र में वाार्षिक 2000–2400 मि.मी. वर्षा होती है, जिसमें बड़ी मात्रा में अपवाह होता है। क्षेत्र की खड़ी स्थलाकृति के कारण, वर्षा का अधिकतम भाग अपवाह के रूप में परिवर्तित हो जाता है। उच्च रिसाव–दबाव और सामान्य से अधिक रिसने के कारण, इस क्षेत्र के तलीय स्थानों में पानी जमा करना चुनौतीपूर्ण है। पहाड़ी क्षेत्र में वर्षा जलजनित अपवाह को संरक्षित करने के लिए तालाब नुमा संरचना बनाते है, साथ ही ताल से पानी के रिसाव को कम करने के लिये तालाब के तल पर अभेद्य परत का इस्तेमाल, सबसे सरल तरीकों में से एक है। इन संरचनाओं को जलकुंड कहते हैं। जलकुंड को बनाने के लिए जमीन में एक गड्ढा खोदा जाता है और एलडीपीई पॉली–फिल्म को कुंड के ताल पर डाला जाता है जोकि पानी के रिसाव को रोक सकता है। जलकुंड का निर्माण करना आसान है, साथ ही इसे कम रखरखाव की आवश्यकता होती है। पॉली–फिल्म जलकुंड से तलीय एवं पार्ष्व रिसाव को रोकता है। इस जल का उपयोग पशुपालन और बेमौसमी सिंचाई के लिए किया जा सकता है ।

जलकुंड निर्माण प्रक्रिया

जलकुंड निर्माण प्रक्रिया में डिजाइन के अनुसार तालाब खोदा जाता है। इसके बाद तालाब के तल और किनारों को खरपतवार और पत्थर मुक्त बनाया जाता है। तालाब के किनारों पर, पॉली–फिल्म को रखने के लिए 50 सेमी. ऊर्ध्वाधर अंतराल पर सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। पार्श्व भित्ति के ऊपर एक सतत् 50x50 सेमी. नाली खोदी जाती है जिसे पॉली–फिल्म को नीचे खिसकने से रोकने के लिए एंकर के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। तल और किनारों को पर्याप्त रूप से उपचारित करने के बाद, 10 सेमी. मोटी छलनी वाली रेत की एक समान परत को बिस्तर और किनारों पर लगाया जाता है जो पॉली–फिल्म के लिए कुशन का काम करती है। सुरक्षा उपाय के रूप में, एक छिद्रित प्लास्टिक पाइप के साथ एक अच्छी तरह से बनायीं गई जल निकासी प्रणाली को तालाब के तल पर रिसने वाले पानी को निकालने के लिए रखा जाना चाहिए। पाइप के छिद्रों को चोक होने से बचाने के लिए, पाइप को कॉयर रस्सी में लपेटा जाता है। फिर रेत को पाइपों के ऊपर रखा जाता है। उसके बाद, तालाब में उचित रूप से पॉली–फिल्म बिछाया जाता है। 500 एलडीपीई पॉली–फिल्म का उपयोग करके अस्तर किया जाता है। तालाब के आकार से मेल खाने के लिए पॉली–फिल्म को अत्यधिक सावधानी से जोड़ा जाता है। पॉली–फिल्म के ऊपर 30 सेंमी. का मिट्टी/कृषि–अवशेषों का आवरण रखा जाता है। फिर, तालाब के किनारों को

वर्षा जल संरक्षण के लिए जलकुंड

कटाव और अन्य बाहरी प्रभावों से बचाने के लिए, पत्थरों की पिचिंग विशेष रूप से किनारों पर की जाती है। पालतू पशुओं को जलकुंड से दूर रखने के लिए लकड़ी की बाड़ भी तैयार की जा सकती है। इस प्रकार निर्मित जलकुंड वर्षा जल के संरक्षण में सहायक होता है। संरक्षित जल का उपयोग सिंचाई, पशुपालन और दैनिक उपयोग में किया जा सकता है।

अनुशंसित जलकुंड आयाम व क्षेत्र

वर्तमान में, जलकुंड के दो अलग–अलग आयामों की सिफारिश की जा रही हैः

तालिका 1: जलकुंड के आयाम एवं क्षमता

क्र.स.	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई	आयतन (क्षमता) घन मीटर
1.	5	4	1.5	30
2.	7	6	1.2	50

जलकुंड के फर्श की परत एलडीपीई (100 माइक्रोन) या एचडीपीई (1000 माइक्रोन) के साथ की जाती है। सामान्यतः एचडीपीई (1000 माइक्रोन) के साथ तालाब निर्माण की लागत रु. 262/घन मीटर आती है। जलकुंड की एक इकाई के निर्माण की औसत लागत लगभग 6–7 हजार रुपए तक आ सकती है। सब्जी की खेती के लिए उपयोग किए जाने वाले रबी वर्षा सिंचित पहाड़ी ऊपरी क्षेत्र, जलकुंड निर्मण के लिए अत्यधिक संभावित क्षेत्र है, अतः इन क्षेत्रों को जलकुंड प्रौद्योगिकी के माध्यम से लाभान्वित किया जा सकता है।

जलकुंड को अपनाने से किसानों की आजीविका में सुधार का आंकलन

मेघालय राज्य में किसान के खेत में यथास्थान जलकुंड के प्रभाव का आकलन किया गया। जलकुंड से उपलब्ध पूरक सिंचाई से किसान उच्च मूल्य वाली सब्जियां जैसे टमाटर, फूलगोभी, पत्तागोभी, ब्रोकोली, हरी मटर आदि का उत्पादन कर सकते हैं। प्रभाव आंकलन हेतु 30000 लीटर क्षमता वाले जलकुंड का निर्माण किया गया और फसल उत्पादन तथा सुअर पालन प्रणाली पर इसके प्रभाव का आंकलन किया गया। 250 वर्ग मीटर क्षेत्र में टमाटर की फसल के लिए और सुअर पालन (200 दिनों के लिए) कुल पानी की आवश्यकता क्रमशः लगभग 18000 लीटर और लगभग 10000 लीटर रही। किसान ने टमाटर की फसल से 500 कि.ग्रा. टमाटर का उत्पादन किया जिससे 12,500 रुपये की सकल आय प्राप्त की। साथ ही सुअर से प्राप्त 175 कि. ग्रा. मांस से 26,250 रुपये की सकल आय प्राप्त हुई। इस आंकलन में संग्रहित जल की उत्पादकता "किलोग्राम प्रति 1000 लीटर" में आंकलित की गयी। आंकलन के परिणामों से पता चला कि प्रति 1000 लीटर संग्रहित जल से 27.78 किलोग्राम टमाटर का उत्पादन होता है। इसी प्रकार सुअर पालन के लिए जल उत्पादकता लगभग 17.5 किलोग्राम प्रति 1000 लीटर आंकलित की गयी। जलकुंड के निर्माण से किसान को कुल सकल आय 38750 रुपये मिली जिसमें 19,725 रुपये शुद्ध लाभ के रूप में प्राप्त हुआ। इस आंकलन में फसल (टमाटर) के लिए लाभ–लागत अनुपात 1.75 और सूअर पालन के लिए यह 2. 21 रहा, इस प्रकार कुल लाभ–लागत अनुपात 2.04 प्राप्त हुआ। यह आंकलन दर्शाता है कि किसान ने पहाड़ी परिस्थितियों में जलकुंड से संग्रहित जल के उपयोग से परिवारों की स्थायी आजीविका में सुधार के लिए पर्याप्त आय अर्जित की।

तालिका 1: जलकुंड के आयाम एवं क्षमता

गतिविधि	संख्या	प्रति पौधा पानी की आवश्यकता	पानी आवश्यकता की अवधि (दिन)	कुल जल आवश्यकता (लीटर)	प्रति इकाई उत्पादन	उत्पादन कुल (कि.ग्रा.)
टमाटर	250 वर्गमीटर में 200 पौधे	1 लीटर/दिन/पौधा	90	18,000	2.5 किग्रा/पौधा	500
सुअर पालन	5	5 लीटर/सूअर खाना	200	10,000	35 किग्रा./ सूअर	175
अन्य	–	–	–	2,000	–	–

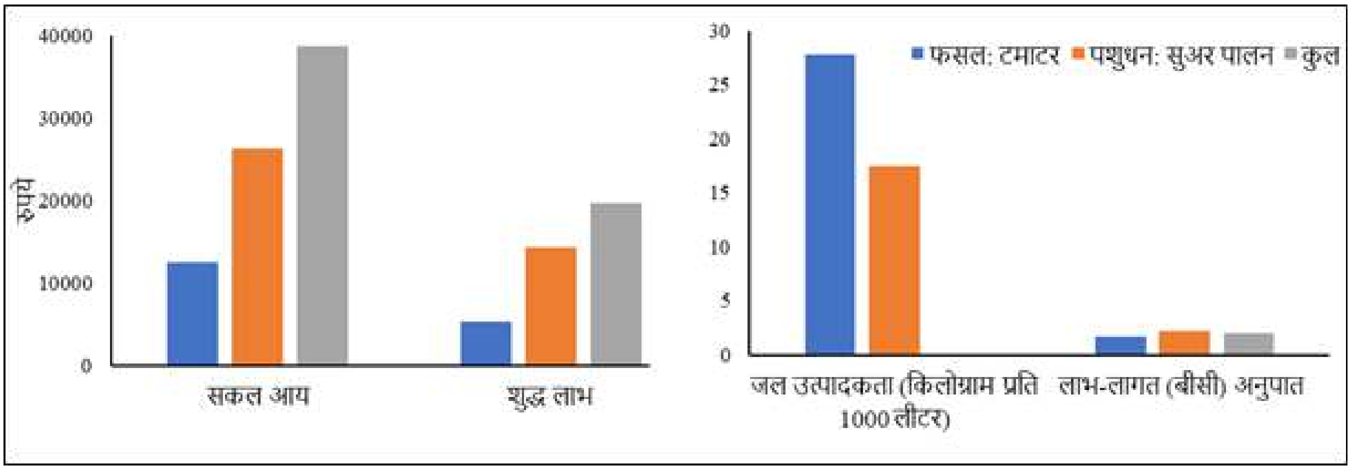

विभिन्न घटकों की सकल आय, शुद्ध लाभ, जल उत्पादकता एवं लाभ–लागत अनुपात

निष्कर्ष

वर्षा ताजे पानी का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। नमी को बनाये रखने और कृषि उत्पादन में स्थिरता प्राप्त करने के लिए वर्षा जल का प्रबंधन आवश्यक है। भारत में 400 मिलियन हैक्टर मीटर वर्षा प्राप्त होती है, जिसमें से 115 मिलियन हैक्टर मीटर अपवाह के रूप में नष्ट हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप कई बार निचले क्षेत्रों में बाढ़ आ जाती है। कृतिम तालाबों द्वारा इस 115 मिलियन हैक्टर मीटर अपवाह जल के एक चौथाई का संचयन वर्षा–सिंचित क्षेत्र में पर्याप्त सिंचाई प्रदान कर सकता है। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए खेतों में निर्मित तालाबों में संरक्षित वर्षा जल का उपयोग पानी की कमी होने पर मददगार साबित होता है। 15–20 घन मीटर क्षमता के छोटे जल संचयन तालाबों का निर्माण सफलतापूर्वक किया जा सकता है। वर्षा सिंचित पहाड़ी ऊपरी क्षेत्र, जलकुंड निर्माण के लिए अत्यधिक संभावित क्षेत्र हैं। शुष्क पहाड़ी खेत्र जहाँ वर्षा–जल अपवाह निर्मित होता है उन क्षेत्रों में संचित जल का उपयोग सिंचाई, पशुपालन, घरेलु कार्य, इत्यादि में किया जा एकता है। जलकुंड से संग्रहित जल के उपयोग से इन क्षेत्रों के जनसाधारण के जीवनस्तर में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है।

समाप्त

8

तलाविया हर्षांग कुमार[1], कोराट हितेश्वरी[2], कैलाशपति त्रिपाठी[1], प्रभु पी.[1] एवं अभिलाष[1]
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय द्वीपिय कृषि अनुसंधान संस्थान, पोर्ट ब्लेयर (अंडमान एवं निकोबार)
[2]आणंद कृषि महाविद्यालय, आणंद (गुजरात)
[3]भाकृअनुप–राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केन्द्र, अजमेर (राजस्थान)
E-mail: t.harshangkumar@icar.gov.in

समुद्री शैवाल का अर्क : लवणीय मिट्टी में फसल उत्पादन बढ़ाने का दीर्घकालिक समाधान

लवणीय मिट्टी, आसान शब्दों में कहें तो, ऐसी मिट्टी होती है जिसमें खारापन उच्च मात्रा में पाया जाता है। इसमें अक्सर प्राकृतिक खनिज होते हैं जैसे कि सोडियम क्लोराइड (घरेलु नमक), मैग्नीशियम सल्फेट, और कैल्शियम सल्फेट इत्यादि। जब मिट्टी में लवण उच्च मात्रा में होते हैं, तो यह पौधों के विकास में कठिनाई पैदा करते हैं, क्योंकि यह पानी को अवशोषित करते हैं, जिससे पौधों को उनकी आवश्यकनुसार नमी नहीं पहुंच पाती है। इस प्रकार की मिट्टी अक्सर शुष्क या अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में पाई जाती है, इन क्षेत्रों में पर्याप्त वर्षा नहीं होती है। अतः यह जमीन के उपरी सतह में लवण जमा होते रहते हैं।

मिट्टी की लवणता भारतीय कृषि के लिए महत्वपूर्ण चुनौती है, जिससे फसल उत्पादन और गुणवत्ता प्रभावित होती है। अत्यधिक तापमान, कम बारिश और मिट्टी की लवणीयता भारतीय कृषि के मुख्य पर्यावरणीय तनाव है, जिसके परिणामस्वरुप फसल की उत्पादकता में कटौती देखने को मिलती हैं। भारत जैसे शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में, मिट्टी की लवणता यहाँ की खेती पर प्रमुख बाधा है जो खाद्य सुरक्षा के लिए बड़ी चुनौती है। फसल की पैदावार और उनकी गुणवत्ता पर मिट्टी की लवणता का प्रतिकूल प्रभाव अच्छी तरह से प्रमाणित किया गया हैं। हमारे भारत में, जहाँ कृषि, देश की अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसलिए सतत् कृषि उत्पादकता और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए स्थायी प्रबंधन और नवीन समाधानों के माध्यम से मिट्टी की लवणता का निवारण अति आवश्यक है।

मिट्टी की लवणता के लिए स्थायी प्रबंधन प्रथाओं एवं नवाचारी समाधान

भारत में लवणीय मिट्टी की समस्या के समाधान के लिए उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य के आधार पर कई स्थायी समाधानों पर विचार किया जा सकता है। एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण लवणमृदोद्भिद और नमक–सहिष्णु पौधों की विकसित किस्में हैं जो खारे पानी की परिस्थितियों में पनप सकती हैं। लवण सहिष्णु धान, गेहूँ, सरसों, चने की कई किस्में करनाल में स्थित भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गई है।

इसके अतिरिक्त, बायोचार और एटापुलगाइट का उपयोग लवणीय मिट्टी की नमी के मापदंडों और समग्र मिट्टी के स्वास्थ्य पर बेहतर प्रभाव डाल सकते हैं। सूक्ष्मजीवी जीवाणु कृषि की अच्छी उपज के लिए अति आवश्यक है, इसलिए लवणीय मिट्टी में सूक्ष्मजीवी जीवाणु की गतिविधियों की भूमिका पर विचार करना महत्वपूर्ण है। सूक्ष्मजीवी गतिविधि पर लवणता के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के उपायों को लागू करने की आवश्यकता है, जो लवणीय मिट्टी में स्थायी फसल उत्पादन के लिए आवश्यक है। इसके अलावा, उपरी सतह से जलनिकास परियोजनाओं का उपयोग भारत जैसे विकासशील देश में लवणता के प्रबंधन में सहायता कर सकता है। लेकिन ये सारे समाधान या तो महंगे हैं या दीर्घकालिक प्रबंधन के बाद अपना परिणाम दिखा रहे हैं। फसल की पैदावार और उनकी गुणवत्ता में सुधार करने के लिए समुद्री शैवाल के अर्क का उपयोग एक त्वरित और कम खर्चीला समाधान है जो कि फसल की लवणता के तनाव को तुरंत ठीक करने के लिए एक बहुत ही सटीक उपाय है।

समुद्री शैवाल अर्क से फसल को संभावित लाभ

समुद्री शैवाल के अर्क ने फसल की खेती में अपने संभावित लाभों की वजह से लोकप्रियता हासिल की है। यह अर्क कार्बनिक

यौगिकों से समृद्ध होते हैं, इसलिए जब इसका इस्तेमाल लवणीय मिट्टी की फसलों में होता है तो पैदावार की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी देखने को मिलती है साथ ही साथ इनमें कोई हानिकारक रसायनों का इस्तेमाल भी नहीं होता है जो उन्हें जैविक कृषि पद्धतियों के लिए भी उपयुक्त बनाते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि समुद्री शैवाल का अर्क प्रभावी जैव–उर्वरक और जैव–उत्तेजक के रूप में काम कर सकता है, जो बायोमास से आवश्यक सूक्ष्म और मैक्रो–तत्वों को मुक्त करता है, साथ में उनकी उपलब्धि को बढ़ाता है, जिससे फसल के जड़ को इन तत्वों की प्राप्ति होती है और फसलो की पैदावार में सुधार होता है। जैव–उत्तेजक के रूप में समुद्री शैवाल के अर्क का उपयोग का फसल के उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिससे बीज अंकुरण दर, फसल वृद्धि, पैदावार और रोगजनकों के कारण होने वाली बीमारियों के सामने प्रतिरोधकता में वृद्धि हुई है। चित्र में दर्शाया गया है कि समुद्री शैवाल का अर्क फसल की वृद्धि और उपज को बढ़ाने में मदद करता है।

लवणीय मिट्टी में, समुद्री शैवाल अर्क के इस्तेमाल ने फसल पैदावार को बढ़ाने में भरोसा दिखाया है। इनका अनुसंधान इंगित करता है कि ये अर्क, लवणता तनाव के तहत टमाटर, मिर्च, चावल और टर्फघास जैसी फसलों की वृद्धि और उपज में सुधार कर सकते हैं। समुद्री शैवाल अर्क में अमीनों अम्ल, फाइटोहोर्मोन और अन्य पदार्थ होते हैं जो पौधों में खार और परासरणीय तनाव के कारण होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं, जिससे उनका लचीलापन बढ़ जाता है। यह अर्क सभी तरह के फाइटोहोर्मोन से भरपूर होता है, जो पौधों का विकास और फसल की गुणवत्ता बढ़ाते हैं। इसके अलावा, समुद्री शैवाल अर्क का पौधों की शारीरिक विशेषताओं, जैसे जड़ संरचना और पोषक तत्वों के अवशोषण पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया है, जो अंततः बेहतर फसल उत्पादकता में योगदान देता है।

तालिका 1: जलकुंड के आयाम एवं क्षमता

उत्पाद का नाम	अनुप्रयोग दर	मूल्य	विवरण
सागरिका (इफको)	2–3 मिली. प्रति लीटर	550 रुपए प्रति लीटर	सागरिका एक समुद्री शैवाल–आधारित जैविक उत्पाद है जो भारत के दक्षिण–पूर्वी तट पर उगाए गए लाल समुद्री शैवाल से निकाला जाता है। यह पौधे के विकास प्रवर्तक के रूप में कार्य करता है।
बायोविटा (पीई)	2 मिली. प्रति लीटर	780 रुपए प्रति लीटर	बायोविटा घन और तरल उर्वरकों में उपलब्ध है। यह भी समुद्री शैवाल–आधारित उत्पाद है जिनका उपयोग सब्जियों, फलों और रसोई बगीचों के लिए भी किया जा सकता है। बेहतर विकास और उत्पादकता के लिए बायोविटा एक आदर्श जैविक उत्पाद है।
कत्यानी समुद्री शैवाल तरल अर्क	1.5 मिली. प्रति लीटर	450 रुपए प्रति लीटर	समुद्री शैवाल का अर्क समुद्री शैवाल के प्राकृतिक खनिजों और पोषक तत्वों का एक परिष्कृत मिश्रण है जो पौधों के विकास को बढ़ाता है। यह पर्णसमूह, अधिक फूलों को बढ़ावा देता है और फलों के उत्पादन को बढ़ाता है। यह फलों के आकार और वजन को भी सुनिश्चित करता है।

समुद्री शैवाल अर्क प्रयोग करने का तरीका

समुद्री शैवाल अर्क का इस्तेमाल, जिस प्रकार से किया जाता है उसी तरह से फसल में उसका प्रभाव देखने को मिलता है। आमतौर पर, अर्क का उपयोग तीन प्रकार से किया जाता है, पत्तों पर विरल, जड़ को भिगोना और इन दोनों तकनीकों से एक साथ उपयोग। इन अर्क को ड्रिप फर्टिगेशन के माध्यम से फसल की जड़ों तक पहुंचाया जा सकता है। परंतु, शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में पत्तों पर विरल तरीके से उपयोग करना लाभकारी है, जिसमें पानी का भी कम इस्तेमाल होता है और अर्क पत्तियों के सीधे सम्पर्क में आने से उनका तुरंत ही प्रभाव देख सकते हैं। अधिकतर उपयोग किए जाने वाले उपचार की विस्तार से चर्चा नीचे दी गयी हैः

बीज उपचारः समुद्री शैवाल का अर्क, अंकुरण में तेजी लाने और जड़ वृद्धि को बढ़ावा देने की अपनी क्षमता के लिए अच्छा बीज उपचारक है, इस उपचार की खास बात यह है कि इनको सभी तरह के बीजों के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। बीज उपचार करने के लिए, एक भाग अर्क का लें और तीन से चार भाग पानी का घोल बनाकर बीज को पांच घंटों तक भिगोएँ।

घोल बनाकर इस्तेमालः पौधे की दो से तीन पत्तियों से लेकर फल–फूल और बीज लगने की अवस्था तक इसका उपयोग किया जा सकता है। इसको हम तरल उर्वरक रूप में भी इस्तेमाल कर सकते हैं। मुख्यतः घोल का इस्तेमाल फसल की प्रारंभिक नाजुक अवस्था एवं फूल आने की अवस्था में करने से बेहतर परिणाम मिलते हैं। एक भाग समुद्री शैवाल के अर्क की, दस भाग पानी के साथ मिलाएं, फिर इस घोल का उपयोग पौधों पर छिड़काव करके पत्तियों को भिगाने के लिए करें। घोल को पत्तियों से टपकने तक छिड़काव करते रहें।

प्रत्यक्ष मिट्टी उपयोगः समुद्री शैवाल के अर्क को पतला घोल बनाकर मिट्टी को गीला या सीधे मिट्टी में लगाने से मिट्टी की दीर्घकालिक उर्वरता को बढ़ाने के लिए इष्टतम है, जिसके परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि होती है और लवणीय तनाव भी कम होता है। यह विधि नाजुक, उथली जड़ों वाले पौधों के लिए विशेष रूप से फायदेमंद है, क्योंकि यह मजबूत जड़ विकास को प्रोत्साहित करती है। समुद्री शैवाल के अर्क का घोल तैयार करने के लिए लेबल पर दिए गए निर्देशों का पालन करें जिसके उपरांत एक भाग अर्क का और बीस भाग पानी लेकर फसल और पौधों की जड़ों के पास लगाएं और सर्वोत्तम परिणामों के लिए हर 2 से 4 सप्ताह इस पद्धति को दोहराएं।

अर्क की खरीदारी करने से पहले कई महवपूर्ण बातों का ध्यान रखना चाहिए। इन बातों का ख्याल किसानों को सिर्फ अर्क ही नहीं परंतु जंतुनाशक दवाई, उर्वरक, बीज और खेती में उपयोग होने वाली सभी चीजों की खरीददारी से पहले ध्यान में रखना चाहिए। उत्पाद के ऊपर दी गई जानकारी और विवरण को अच्छे से पढ़ना चाहिए। उसमें खासकर उत्पादन व समाप्ति की तिथि, उपयोग का तरीका, किस फसल के लिए उत्पाद बनाया गया है, किस अवस्था में उत्पाद का उपयोग लाभकारी होगा, आदि जानकारी को अच्छी प्रकार से पढ़ना और जानना चाहिए। समुद्री शैवाल अर्क की खरीद केवल प्रमाणित विक्रेता से ही करें।

शैवाल के अर्क में पाए जाने वाले लाभकारी फाइटोहोर्मोन

निष्कर्ष

समुद्री शैवाल का अर्क एक अद्वितीय और सकारात्मक प्राकृतिक समाधान प्रदान करता है जो लवणीय मिट्टी में फसल उत्पादन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस स्थायी समाधान के माध्यम से, हम खाद्य सुरक्षा के महत्वपूर्ण मुद्दों का सामना करने के लिए तैयार हो सकते हैं और कृषि क्षेत्र में रूचि बढ़ाने के लिए सक्षम हो सकते हैं। समुद्री शैवाल का अर्क न केवल फसलों की पैदावार को बढ़ाने में मदद करता है, बल्कि उनकी गुणवत्ता को भी बढ़ाता है। इस प्रकार के नवाचार समाधान से, हम एक स्थिर और समृद्ध भारतीय कृषि की संभावनाओं का विस्तार कर सकते हैं, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए एक बेहतर भविष्य सुनिश्चित करेगा।

समाप्त

9

प्रिया सिंह[1], आर॰ के॰ गुप्ता[2], राहुल कुमार[3*], शिवम पांडे[4], निक्की[2] एवं मुस्कान वेदी[5]
[1,4,5]मत्स्य विज्ञान महाविद्यालय, [2]मौलिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय,
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
[3]कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, बावल, रेवाड़ी (हरियाणा)
*E-mail: drrkr321@gmail.com

हरियाणा के खारे पानी में झींगा उत्पादनः सतत् जलकृषि की ओर एक कदम

पंजाब और हरियाणा राज्यों के कई क्षेत्रों में खारे भूजल स्तर में बढ़ोत्तरी के परिणामस्वरूप फिनफिश और शैलफिश उत्पादन के लिए वाणिज्यिक जलीय कृषि में वृद्धि हुई है। तटीय क्षेत्र में झींगा (लिटोपेनियस वन्नामी) पालन आम बात है। फिर भी, देश के उत्तर में लवणीय भूमि से घिरा हरियाणा तेजी से ऐसे राज्य के रूप में विकसित हो रहा है जो लवण के कारण कम उपज में झींगा उत्पादन का लाभदायक विकल्प प्रदान कर रहा है। मुख्य रूप से मिट्टी का लवणीकरण एक गंभीर समस्या है। यह दुनिया भर के देशों पर नकारात्मक प्रभाव भी दर्शाता है। विश्व के अधिकांश अंतर्देशीय लवणीय क्षेत्र शुष्क, अर्ध–शुष्क और निचले इलाकों में स्थित हैं। खराब जल निकास वाले क्षेत्र, जहाँ उच्च सांद्रता होती है, जिसके कारण मिट्टी के भीतर लवणों का संचय हो जाता है। लवणीकरण के इस प्रकार को प्राथमिक लवणीकरण के रूप में जाना जाता है, जो अपर्याप्त वर्षा, अल्प वर्षा और घुलनशील लवणों के निक्षालन के कारण होता है। अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियाँ भी कारण होती हैं, बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन की मांग किसानों को मजबूर करते हैं कि कृषि पूरी तरह से सघन सिंचाई पर निर्भर रहे। इससे जलभराव या भूमिगत जलस्तर बढ़ने जैसी गंभीर समस्या उत्पन्न होती है। वर्षों तक इस प्रक्रिया के दोहराने से उपजाऊ–उत्पादक भूमि, अनुत्पादक बंजर भूमि में बदलती जा रही है।

किसानों के सामने लगातार आ रही चुनौतियों के बावजूद, हरियाणा में राज्य सरकार एक विकल्प के रूप में मछली पालन को सक्रिय रूप से बढ़ावा दे रही है, विशेषकर झींगा उत्पादन में लगातार वृद्धि देखी गई है। झींगा उत्पादन के लिए, 2022–23 में 5,681 मीट्रिक टन का लक्ष्य निर्धारित किया गया था और 2023–24 में यह बढ़कर 7,518 मीट्रिक टन हो गया।

हरियाणा में झींगा फार्म

सफेद झींगा का उत्पादन झज्जर, रोहतक, भिवानी, चरखी दादरी, गुरुग्राम, फरीदाबाद और रेवाड़ी सहित विभिन्न जिलों में बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। यह ध्यान देने योग्य है कि 2014–15 में, झींगा की खेती केवल 70 एकड़ में हुई, जिससे 140 मीट्रिक टन का उत्पादन हुआ। यह 2021–22 में 2,900 मीट्रिक टन उत्पादन के साथ 1,250 एकड़ तक विस्तारित हो गया है। बीज, चारा और निर्यात के लिए दक्षिणी और पूर्वी राज्यों पर निर्भरता के बावजूद, किसानों का मुनाफा दस गुणा बढ़ गया है। वन्नामी की खेती वर्ष 2014 के दौरान हरियाणा के रोहतक जिले के बनियानी और महम गांवों में दो किसान समूहों द्वारा सफलतापूर्वक की गई थी। वन्नामी उत्पादन की प्रक्रिया इस लेख का मुख्य विषय हैं।

लिटोपेनियस वन्नामी (झींगा) की उपयुक्तता का कारण

- उच्च विकास और उत्तर जीविता दर।
- उच्च स्टॉकिंग घनत्व के प्रति सहनशीलता (स्टॉकिंग घनत्व– 60 नंबर/वर्ग मीटर तटीय जलीय कृषि प्राधिकरण

(सीएए) के दिशा निर्देशों का पालन करते हुए)।

- कम प्रोटीन वाले आहार का बेहतर उपयोग।
- विशेषकर पर्यावरणीय उतार–चढ़ाव की एक विस्तृत श्रृंखला के प्रति सहनशीलता तापमान (15–30° सेल्सियस) और लवणता (0.5–45 पीपीटी)।
- उच्च रोग प्रतिरोधक क्षमता।

लिटोपेनियस वन्नामी की विशेषताएँ

- वयस्क गहरे समुद्र में रहते हैं। यह पोस्ट–लार्वा और किशोर भोजन के लिए एस्चुएरी की ओर पलायन करते हैं और अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं।
- मादाएं नर की तुलना में तेजी से बढ़ती हैं। यह 230 मिमी की अधिकतम लंबाई प्राप्त करती हैं।
- रोस्ट्रम सूत्र है, 7–10 पृष्ठीय दाँत और 2–4 उदर दाँत।
- यह पारभासी सफेद होते हैं, लेकिन तालाब के तल के आधार पर अपना रंग बदल सकते हैं।
- नर 20 ग्राम और मादा 28 ग्राम आकार में परिपक्व होते हैं।
- अंडा उत्पादन क्षमता 1 से 2.5 लाख तक होती है।
- अंडे का आकार 0.2 मिमी व्यास का होता है।

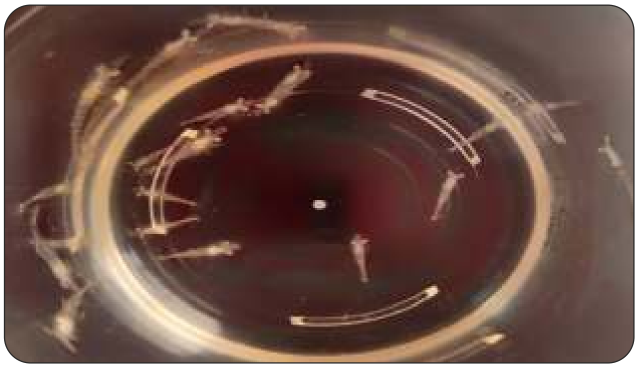

झींगा के पोस्ट–लार्वा

झींगा (लिटोपेनियस वन्नामी)

तालाब की तैयारी

इसमें हर चक्र में तालाब के तल को खंगालना शामिल है, ताकि वहाँ बने जैविक कीचड़ से छुटकारा मिल सके। अवांछित प्रजातियों से छुटकारा पाने का सबसे महत्वपूर्ण और कारगर तरीका तालाब को सुखाना है। सुखाने की प्रक्रिया के साथ–साथ, विभिन्न कार्य जैसे पक्षी जाल लगाना और तालाब के बांध को ठीक करना आदि को पूरा किया जाता है। तालाब का तल सूखते ही फट जाता है और एक टिलर के साथ 10–15 सेंमी. की गहराई तक जुताई की जाती है। यह पोषक तत्वों को जारी करता है जो मिट्टी में जमा हो जाते हैं और जहरीली गैसों के ऑक्सीकरण में सहायता करते हैं। यदि सुखाना कोई विकल्प नहीं है, तो आक्रामक गैसों को हटाने के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले प्रोबायोटिक्स जो नाइट्रोजन बैक्टीरिया से भरपूर होते हैं उनका उपयोग किया जा सकता है। मिट्टी के पीएच को स्थिर रखने के लिए 200–250 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से चूना दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम की पूर्ति की जानी चाहिए जिससे झींगा को निर्मोचन होने पर लाभ होगा।

सिंचाई: सामान्यतः 1.2–1.5 मीटर गहराई तक सिंचाई की जाती है। बोरवेल के पानी को छानने के लिए कई स्क्रीन का उपयोग किया जाता है, इसके बाद इसे 10 पीपीएम क्लोरीन के साथ उपचारित किया जाता है एवं क्लोरीन मुक्त करने के लिए इसे 4–5 दिनों के लिए छोड़ दिया जाता है। गुड़, चावल की पॉलिश, खली और खमीर से जैविक घोल तैयार किया जाता है। तालाब के पानी की पारदर्शिता 30–40 सेंमी. बनाए रखी जानी चाहिए, यदि यह 40 सेंमी. से अधिक हो तो तालाब में उचित प्रकाश संश्लेषण स्तर को बनाए रखने के लिए जैविक घोल को चरणबद्ध तरीके से लगाया जा सकता है।

बीज और बीजों का भंडारण: तटीय जलीय कृषि प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित विभिन्न झींगा हैचरियों से विशिष्ट रोगजनक मुक्त (एसपीएफ) और विशिष्ट रोगजनक प्रतिरोधी (एसपीआर) झींगा बीज और सर्वोत्तम प्रबंधन प्रथाओं (बीएमपी) का उपयोग किया जा सकता है। बीज की खरीद से पहले वायरल और जीवाणु संक्रमण के लिए बीज का परीक्षण किया जाना चाहिए। बीजों के भंडारण से पहले, झींगा के बीजों को तालाब के पानी के तापमान के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही बीज वाले पॉलिथीन बैग में पानी छिड़का जाता है। नरभक्षण से बचने के लिए झींगे के बीज वाले कंटेनर में आर्टीमिया नाप्लाई को डाला जाता है। अनुकूलन के बाद, तटीय जलीय कृषि प्राधिकरण (सीएए) के दिशानिर्देशों का पालन करते हुए बीजों को 60 नंबर/वर्ग मीटर के आधार पर तालाब में डाला जाता है।

दाना और आहार: झींगे के मुँह के आकार के अनुसार सटीक दाने का उपयोग आवश्यक है जैसे आरंभ में 1 मिमी., उससे बड़ों के लिए 2 मिमी. और बड़े होने पर 2.5 मिमी.। खाने को पूरे तालाब में समान रूप से प्रसारित और बायोमास के आधार पर लागू किया जाना चाहिए। खाने की खपत की उचित निगरानी के लिए चेक ट्रे का उपयोग किया जा सकता है। उच्चतम विकास दर के लिए झींगा आहार में 30–35 प्रतिशत प्रोटीन आदर्श होता है।

कटाई: 100–120 दिनों की उत्पादन अवधि में झींगा औसतन 22.8–28 ग्राम वजन प्राप्त करता है। कटाई के लिए दो विधियों का उपयोग किया जाता है, पहला, तालाब की पूरी तरह से जलनिकासी करके और दूसरा बैग नेट का उपयोग करके झींगे को पकड़ना। क्षति से बचने के लिए निकाले गए झींगों को साफ करने के पश्चात बर्फ के कंटेनरों में रखा जाता है। झींगों को क्रमशः स्टायरोफोम बक्सों में बर्फ की कई परतों के साथ पैक कर प्रभावी ढंग से बाजार में ले जाया जाता है।

जल गुणवत्ता की निगरानी: तालाब के जल की गुणवत्ता की निगरानी और परिवर्तनों की मॉनीटरिंग करना महत्वपूर्ण है। यह सुनिश्चित करेगा कि तालाब का जल स्वच्छ और स्वस्थ रहे तथा पानी का तापमान, ऑक्सीजन स्तर और अन्य पैरामीटर्स सामान्य हों।

तालिका 1: जलकुंड के आयाम एवं क्षमता

क्र. सं.	पैरामीटर	स्वीकार्य सीमा	क्र. सं.	पैरामीटर	स्वीकार्य सीमा
1.	विघटित ऑक्सीजन	5.2–8.0 पीपीएम	5.	क्षारीयता	200–240 पीपीएम
2.	पीएच	7.8–8.2	6.	पोटेशियम	80–100 पीपीएम
3.	खारापन	12–15 पीपीटी	7.	कैल्शियम	235–270 पीपीएम
4.	कठोरता	3100–3800 पीपीएम	8.	मैगनीशियम	610–695 पीपीएम

तालाबों प्रबंधन के लिए कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ

तालाब के प्रबंधन में जैविक संतुलन को बनाए रखना महत्वपूर्ण है। यह सुनिश्चित करेगा कि तालाब में मछली, पौधे और मिट्टी के जीवों का संतुलित विकास हो। तालाब के जल संचयन और पुनर्निर्माण को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह जल संचयन और व्यवहार की व्यवस्था में मदद करेगा। तालाब के प्रबंधन में झींगा की नियमित स्वास्थ्य निगरानी शामिल है जैसे एंटीना कट, अपारदर्शिता, सफेद मसल्स, आदि किसी भी असामान्यता की जाँच करना। इसमें तालाब का चयन एवं निर्माण, रख–रखाव जैव सुरक्षा, एसपीएफ और एसपीआर बीज चयन, इष्टतम फीड आकार और प्रबंधन, जल गुणवत्ता जांच, उचित कटाई और कटाई के बाद का प्रबंधन करना आवश्यक है। इसके अलावा, मिट्टी के तल की जांच करना आवश्यक है साथ ही सप्ताह में तालाब के तल पर दो बार जंजीर खींचें जिससे अप्रिय गैसों को खत्म किया जा सके। कटाई के दौरान, एक तालाब

से दूसरे तालाब में संदूषण से बचने के लिए प्रत्येक तालाब के लिए अलग–अलग कास्ट नेट की आवश्यकता होती है। उत्पादन के दौरान इष्टतम कैल्सियमः मैग्नीशियम का अनुपात 1:3 बनाए रखा जाना चाहिए। तालाब के चारों ओर की सुरक्षा और संरक्षण का ध्यान रखना जरूरी है। यह अनचाहे हादसों से बचाव के लिए महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

खारे अंतर्देशीय जल में झींगा पालन का अभ्यास जलीय कृषि के लिए एक आशाजनक विकल्प प्रदान करता है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ तटीय संसाधनों का सीमित या अत्यधिक दोहन हो रहा है। यह अंतर्देशीय खारे जल निकायों का लाभ उठाता है जो अनुत्पादक हैं, उन्हें समुद्री भोजन उत्पादन के मूल्यवान स्रोतों में बदल देता है। सफल कार्यान्वयन के लिए पानी की गुणवत्ता के सावधानीपूर्वक प्रबंधन, रोग नियंत्रण और उपयुक्त झींगा प्रजातियों के चयन की आवश्यकता होती है जो विभिन्न लवणता स्तरों में पनप सकते हैं। इसके अतिरिक्त, पैदावार को अधिकतम करने और अंतर्देशीय झींगा पालन की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए सर्वोत्तम प्रथाओं को एकीकृत करना और तकनीकी नवाचारों को आगे बढ़ाना महत्वपूर्ण है। इन कारकों को संबोधित करके, खारे अंतर्देशीय जल में झींगा संस्कृति ग्रामीण आजीविका का समर्थन करते हुए और पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देते हुए वैश्विक समुद्री भोजन की मांग को पूरा करने में जलीय कृषि की भूमिका को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकती है।

समाप्त

10

अश्वनी कुमार[1], आरजू शर्मा[1], पूजा[2], सुखम मदान[3] एवं अनिता मान[1]
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[2]भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल (हरियाणा)
[3]क्षेत्रिय अनुसंधान केन्द्र चौ.च.सि.ह.कृ.वि., कौल
E-mail: Ashwani.Kumar1@icar.gov.in

मिलेट्सः विशेषताएं और उपयोग

कृषि में परिवर्तन अधिक उत्पादन वाली फसल प्रणालियों के साथ–साथ कम उत्पादन वाली फसलों में वृद्धि के साथ हुआ है। समवर्ती रूप से, विशाल विविधता से पारंपरिक फसलों के क्षेत्र और उत्पादन में गिरावट आई है। फिर भी दुनिया के कई हिस्सों में, ये पारंपरिक फसलें कृषि के टिकाऊ स्वरूप को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जलवायु परिवर्तन परिदृश्य और मानव स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान फसल चक्रों में बदलाव करने की जरूरत है, फसल विविधीकरण के लिए प्राचीन मोटे व छोटे अनाज (मिलेट) वाली फसलों जैसे ज्वार, बाजरा, रागी, कंगनी, सावंक, छोटी कंगनी, कुटकी आदि एक किफायती और पौष्टिक विकल्प प्रदान कर सकती हैं, जिससे खाद्य सुरक्षा की गारंटी प्राप्त हो सकती है। यह स्वदेशी लोगों की संस्कृति और परंपराओं में भी गहराई से निहित हैं। मिलेट अनाज का ही एक प्रकार है जिसके दाने बहुत छोटे होते हैं। इनकी खेती हजारों वर्षों से मुख्य फसलों के रूप में की जाती रही है। ये विविध पर्यावरणीय परिस्थितियों (कम पानी व थोड़े दिन में तैयार होने वाली) में उग सकती हैं और इनमें पोषक तत्व काफी मात्रा में पाए जाते हैं। छद्म मिलेट को प्राचीन अनाज माना जाता है और इनका कृषि में महत्वपूर्ण स्थान है। मिलेट सबसे पुराने खाद्य पदार्थों में से एक है, ये छोटे बीज वाली कठोर फसलें हैं जो मिट्टी की उर्वरता और नमी की सीमांत स्थितियों के तहत शुष्क क्षेत्रों या वर्षा आधारित क्षेत्रों में अच्छी तरह से विकसित हो सकती हैं। बाजरा की खेती कम उपजाऊ भूमि, आदिवासी और वर्षा आधारित और पहाड़ी क्षेत्रों में की जाती है। इन क्षेत्रों में हरियाणा, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और तेलंगाना शामिल हैं।

भारत दुनिया में अनाज का सबसे बड़ा उत्पादक होने के साथ–साथ सबसे बड़ा निर्यातक भी है। भारत का अनाज निर्यात वर्ष 2022–23 के दौरान रु. 111,062.37 करोड़ (13,858 मिलियन अमेरिकी डॉलर) था। भारतीय मिलेट गरीब किसानों के लिए भोजन और चारे का एक महत्वपूर्ण स्रोत है और भारत की पारिस्थितिकी और आर्थिक सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय मिलेट पोषण की दृष्टि से गेहूँ और चावल से बेहतर है क्योंकि वे प्रोटीन, विटामिन और खनिजों से भरपूर तथा ग्लूटेन–मुक्त भी है और उनका ग्लाइसेमिक इंडेक्स भी कम है, जो उन्हें मधुमेह रोगियों के लिए आदर्श बनाता है। भारत दुनिया में मिलेट के शीर्ष 5 निर्यातकों में से एक है। मिलेट का विश्व में निर्यात 2020 में 400 मिलियन डॉलर से बढ़कर 2021 में 470 मिलियन डॉलर हो गया है (कृषि और संसाधिक खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण)। भारत ने वर्ष 2022–23 में 75.46 मिलियन डॉलर का बाजरा निर्यात किया, जो 2021–22 में 62.95 मिलियन डॉलर था। हालांकि मिलेट आधारित मूल्यवर्धित उत्पादों का हिस्सा नगण्य है।

मिलेट्स कई प्रकार के होते हैं, प्रत्येक की अपनी अनूठी विशेषताएं और उपयोग होते हैं जैसे ज्वार, बाजरा, रागी, सावां, कंगनी, चीना, कोदो, कुटकी और कुट्टू को मिलेट फसल कहा जाता है। भारत में सबसे प्रसिद्ध मिलेट में कोदो, कंगनी, सावां, छोटी कंगनी, रागी हैं, जिनकी व्यापक रूप से मोटा अनाज के रूप में खेती की जाती है।

मिलेट्स के प्रकार

1. अनाज के आकार के आधार पर मिलेट्स के प्रकार

मिलेट्स को बीज के आकार के आधार पर बाँट सकते हैं। मोटे दाने वाले अनाज की तुलना में छोटे दाने वाले अनाज में अधिक पौष्टिक तत्व पाए जाते हैं।

अ. मोटे अनाज (प्रमुख बाजरा): इन धान्यों के बीज मोटे होते हैं। मोटे दाने वाले अनाज को नग्न अनाज के नाम से भी जाना जाता है। मोटे अनाज में सूखा सहन करने की क्षमता होती हैं। इन फसलों को उगाने में लागत भी कम आती है। इन फसलों में कीटों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता होती है। जिस कारण उर्वरकों और खाद की कम आवश्यकता पड़ती है। जैसे रागी, बाजरा, ज्वार, मक्का।

ब. छोटे अनाज (छोटी बाजरी): इन धान्यों के बीज छोटे होते हैं। छोटे दाने वाले अनाज को चोकर यूक्त् अनाज के नाम से भी जाना जाता हैं। मोटे धान्यों की तुलना में लघु धान्यों में अधिक पौष्टिक तत्व पाए जाते हैं। जैसे कंगनी, हरी कंगनी, कुटकी, कोदो, झंगोरा।

2. बीजों के भंडारण के आधार पर मिलेट्स के प्रकार

अ. नग्न बीज: जिन फसलों के बीजों पर चोकर यानि छिलके की परत नहीं होती है उन बीजों को फसलों से अलग करने के बाद उन पर लगे छिलके को उतारने के बाद सीधा भोजन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है तथा इन्हें भंडारण भी किया जा सकता है। जैसे रागी, बाजरा, ज्वार, मक्का।

ब. चोकर यूक्त् बीज: जिन फसलों के बीजों पर चोकर यानि छिलके की परत होती हैं। उन बीजों को फसलों से अलग करने के बाद उन पर लगे छिलके को उतारने के बाद सीधा भंडारण तो किया जा सकता पर इन्हें भोजन के रूप में प्रयोग करने से पहले इन पर लगी चोकर की परत को हटाना पडता हैं। जैसे कंगनी, छोटी कंगनी, कुटकी, कोदो, सांवा।

1. पोषक तत्वों के आधार पर मिलेट्स के प्रकार: मिलेट्स की सबसे मुख्य बात यह है कि इनमें पोषक तत्व काफी मात्रा मे पाए जाते हैं। पोषक तत्वों के आधार पर मिलेट्स का वर्गीकरण इनमें कार्बोहाईडेट फाइबर के अनुपात के आधार पर किया जाता है। कार्बोहाईडेट और फाइबर का अनुपात ग्लाइसेमिक इंडेक्स के रूप में माना जाता है। जिन मिलेट्स में कार्बोहाईडेट : फाइबर अनुपात 10 : 1 से कम हो वो सेहत के लिए बेहतर माना जाता है। पोषक तत्वों के आधार पर इन्हें तीन श्रेणियों में रख सकते है ।

अ. नेगेटिव मिलेट (नकारात्मक अनाज): इस वर्ग में उन मिलेट्स को रखा गया है जिनमें कार्बोहाइड्रेट व रेशे का अनुपात काफी ज्यादा होता है और लम्बे समय से इनका सेवन करने से मनुष्य में कई प्रकार की गंभीर बीमारियाँ हो सकती है। भारत में मुख्य रूप से लोग गेहूँ और चावल खाते हैं जो नेगेटिव मिलेट हैं।

ब. न्यूट्रल मिलेट (तटस्थ अनाज): जिनके सेवन से शरीर में न कोई बीमारी होती है और न ही ये किसी बीमारी को ठीक कर सकते हैं। ये शरीर को स्वस्थ रखते हैं। ये मिलेट ग्लूटेन मुक्त होते हैं जैसे–बाजरा, ज्वार, रागी।

स. पॉजिटिव मिलेट (सकारात्मक अनाज): इन मिलेट्स मे कार्बोहाईडेट व रेशे का अनुपात 10 से कम होता है और ये सेहत के लिए काफी बढ़िया माने जाते हैं। इनका सेवन करने से शरीर में जिन पोषक तत्वों की कमी होती है वो पूरी हो जाती है। इसलिए इनको खाना स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी है इसलिए इन्हें पॉजिटिव मिलेट कहा जाता है। जैसे– कंगनी, सामा, सावां, कोदो और छोटी कंगनी।

विभिन्न प्रकार के मिलेट्स की पोषक संरचना

मिलेट्स की खेती शुष्क भूमि (विशम परिस्थितियाँ) में न्यूनतम कृषि लागत में अधिक उपज देने के साथ पोषण संबंधी कमियों से निपटने और अच्छा स्वास्थ्य बनाए रखने में कारगर हैं।

तालिका 1: मिलेट्स की पोषक संरचना एवं पोषक तत्व (एफएसएसएआई, 2017)

मिलेट्स	कार्बोहाईडेट (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	उर्जा (किलो कैलोरी)	फाइबर (ग्राम)	कैल्शियम (मिलीग्राम)	मैग्नीशियम (मिलीग्राम)	फास्फोरस (मिलीग्राम)	लोहा (मिलीग्राम)	जस्ता (मिलीग्राम)
ज्वार	67.7	10.4	334	10.2	27.6	133	274	3.9	1.9
बाजरा	61.8	11.6	347	11.5	27.4	124	289	6.4	2.7
रागी	66.8	7.2	320	11.2	364	146	210	4.6	2.5
कोदरा	66.2	8.9	331	6.4	15.3	122	101	2.3	1.6
प्रोसो मिलेट	70.4	12.5	341	–	14	153	2.06	0.8	1.4
कंगनी	60.1	12.3	331	–	31.0	81.0	188	2.8	2.4
समाई	65.5	7.7	346	7.7	16.1	91	130	1.2	1.8
सांवा	65.5	6.2	307	–	20	82	280	5.0	3.0

अतः मिलेट्स का आहार पौष्टिकता के नजरिये से दैनिक जीवन की चुनौतियों का समाधान कर सकता है क्योंकि यह चिकित्सीय रूप से महत्वपूर्ण घटकों से भरपूर है जैसे एंटीऑक्सीडेंट, फाइटोकेमिकल, जरूरी मुक्त वसी अम्ल, विटामिन और खनिज पदार्थ।

मिलेट्स के लाभः

- मिलेट पारिस्थितिकी स्थितियों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए अत्यधिक अनुकूल है और वर्षा आधारित तथा शुष्क जलवायु क्षेत्रों में अच्छी तरह से पैदा होता है। मिलेट वाली फसलों में पानी, उर्वरक और कीटनाशकों की न्यूनतम आवश्यकता होती है।

- ये लोहा, जस्ता और कैल्शियम जैसे खनिजों का अच्छा स्रोत है।
- भारत में, बाजरा आमतौर पर फलियों के साथ खाया जाता है, जो प्रोटीन की पारस्परिक पूरकता बनाता है, अमीनों अम्ल सामग्री और प्रोटीन की समग्र पाचन शक्ति को बढ़ाता है।
- स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाली पौष्टिक फसलः अन्य अनाजों की तुलना में इनमें बेहतर सूक्ष्म पोषक तत्व और जैव सक्रिय फ्लेवोनोइड होते हैं।
- मिलेट में ग्लाइसेमिक इंडेक्स (जीआई) कम होता है और यह मधुमेह की रोकथाम से भी जुड़ा होता है।
- मिलेट्स ग्लूटेन—मुक्त होते हैं और सीलिएक रोग के रोगियों द्वारा इसका सेवन किया जा सकता है।
- मिलेट्स उच्च कोलेट्रोल के जोखिम के प्रबंधन और रोकथाम में लाभकारी है।
- मिलेट्स में मौजूद उच्च रेशा (फाइबर) और कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स के कारण वजन नियंत्रण, बीएमआई और उच्च रक्तचाप को कम करने में सहायक है।
- मिलेटस् एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर होते हैं, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने और कैंसर जैसी बीमारियों के जोखिम को कम करने में मदद कर सकते हैं।
- बाजरा का उपयोग भोजन के साथ—साथ चारे के रूप में भी किया जाता है, जो इसकी खेती को अधिक कुशल बनाता है।
- मिलेट्स की खेती कार्बन फुटप्रिंट को कम करने में मदद करती है।
- मिलेट पर्यावरण में संबंधित रूप से टिकाऊ होते हैं, क्योंकि इन्हें गेहूँ या चावल की तुलना में कम पानी और उर्वरक की आवश्यकता होती है।
- मिलेटस में अधिक रेशा और प्रोबायोटिक गुण होते हैं जिसके कारण पाचन स्वास्थ्य में सुधार करने में मदद कर सकते हैं। मिलेट बहुमुखी होते हैं और उन्हें दलिया, रोटी, पैनकेक और मिठाई जैसे विभिन्न व्यंजन बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

समाप्त

11

अर्चना उदय सिंह, गौरव ठाकरान एवं ओम प्रकाश*
[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012
*E-mail: prakash1964om@gmail.com

कुट्टूः एक बहुउद्देशीय फसल

अनाज का एक समूह, जो घास परिवार का सदस्य नहीं है, लेकिन अनाज के रूप में खाया जाता है उन्हें छद्म अनाज कहा जाता है। कुट्टू भी एक छद्म अनाज है जो पोलिगोनेसी वंश, फैगोपाइरम परिवार का सदस्य है, जिसमें यूरोप और एशिया के समशीतोष्ण क्षेत्रों में पाई जाने वाली 15 प्रजातियाँ शामिल हैं। अब तक खोजे गए सभी प्रजातियों का आधारपूरक आठ गुणसूत्र हैं। कुट्टू की फसल में पाले के प्रति सहनशीलता एवं कम अवधि (2–3 महीने) के कारण, यह उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में मुख्य अनाज फसलों में से एक है। ऊपरी हिमालय में 3000 से 4500 मीटर पर बीच उगाई जाने वाली एक सफल फसल टार्टरी बकव्हीट भी है। कुट्टू बंजर या कम उर्वर भूमि में भी पनपने की क्षमता रखता है।

कुट्टू गंभीर (ठंडी, शुष्क), उतार–चढ़ाव वाली जलवायु, अच्छी जल निकासी वाली रेतीली मिट्टी में सबसे अच्छा उगता है। जबकि यह उच्च तापमान और गर्म, शुष्क हवाओं के प्रति अति संवेदनशील है। खासकर जब नमी दुर्लभ होती है। यह अम्लीय मिट्टी के प्रति सहिष्णु है। रूस, चीन, यूक्रेन और कजाकिस्तान कुट्टू के सबसे बड़े उत्पादक हैं, हालांकि यह कई अन्य देशों में एक सीमित क्षेत्र में उगाया जाता है।

कुट्टू का आटा और ब्रैड

कई पहाड़ी स्थानों में कुट्टू को निर्वाह फसल के रूप में उपयोग करते हैं। भूटान में कुट्टू एक महत्वपूर्ण फसल है, जो कुल बोई गई भूमि के 7 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में उगाया जाता है। बहुत सारे देश अनाज और चारे की फसल के रूप में कुट्टू का उत्पादन करते हैं। भारत के हिमालयी राज्यों में, पश्चिम में जम्मू और कश्मीर से लेकर पूर्व में अरुणाचल प्रदेश तक, सामान्यतः कुट्टू की फसल का उत्पादन किया जाता है। भारत में इसकी खेती हिमाचल प्रदेश के ऊंचे पहाड़ों (चंबा, पांगी, लाहौल और स्पीति, मंडी, कुल्लू, शिमला और किन्नौर), उत्तराखंड (उत्तराखंड, चमोली, पौड़ी, पिथौरागढ़, बागेश्वर, रुद्रप्रयाग और अल्मोड़ा), सिक्किम (लाचन और लाचूंग), मणिपुर, असम, पश्चिम बंगाल (दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी), अरुणाचल प्रदेश (तवांग, बोमडिला और दिरांग), मेघालय और छिटपुट रूप से दक्षिण भारत में नीलगिरी और पालनी पहाड़ियों में की जाती है।

पॉलीगोनेसी वंश की दो प्रजातियां, एफ. एस्कुलेंटम (सामान्य या जापानी कुट्टू) और एफ. टाटारिकम गार्टिन (टार्टरी बकव्हीट) खेती में उगाई जाती है। एफ. एस्कुलेंटम एक शाकीय लंबा, वार्षिक पौधा है, जिसमे एकांतर त्रिकोणीय आकार की पत्तियाँ, एक खोखला तना और सूजी हुई गांठ पाई जाती है। पुष्पक्रम सफेद, गुलाबी या लाल फूलों के साथ एक कसकर पैक किया हुआ डिमोर्फिक एक्सिलरी या टर्मिनल साइम प्रकार का होता है। यह प्रजाति स्व–बाँझ और क्रॉस–परागण प्रकार की है।

एफ. टाटारिकम एक लंबा, मोटा वार्षिक पौधा है। जिसमे छोटे इंटरनोड्स और पतले, तीर के आकार के पत्तों के साथ, एक ही प्रकार ब्लूम्स, हरे रंग के सेपल्स होते हैं, एक्सिलरी रेसमेम्स पाई जाते हैं। यह प्रजाति स्व–प्रजनन करती है।

कुट्टू की फसल

कुट्टू के फूल

मानव उपयोग के लिए

कुट्टू एक बहुउद्देशीय फसल है। इसके पूरे पौधे, नई शाखाओं, पुष्प और अनाज का उपयोग विभिन्न रूपों मे किया जाता है। भारत के मध्य हिमालय में, एफ. एस्कुलेंटम को सामान्यतः हरी सब्जी की फसल के रूप में उगाया जाता है। संवेदनशील प्ररोहों से पत्तेदार सब्जियाँ बनाई जाती है। कुट्टू, लोहा (155 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम), प्रोटीन (13.3 प्रतिशत) और लिपिड (5 प्रतिशत) का एक बड़ा स्रोत होने के साथ–साथ पोषक तत्वों से भरपूर है। अन्य अनाजों की अपेक्षा इसमें मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक अमीनों अम्ल में से एक, लाइसिन की कमी होती है, परन्तु इसमें अमीनों अम्ल संरचना के संदर्भ में अच्छी प्रोटीन गुणवत्ता होती है। इसमें प्रोटीन का जैविक मूल्य अन्य खाद्य पौधों की तुलना में अधिक है जो दूध और अंडे के बराबर है। यह उच्च हिमालय के निवासियों के लिए एक प्रमुख खाद्य स्रोत है। उपवास के दिनों में जब लोग अनाज नहीं खाते है, तो कुट्टू के आटे से बने उत्पाद का सेवन करते हैं। इसके स्टार्च युक्त आटे का उपयोग सूप या खीर, हलवा, चिलारे (एक अखमीरी रोटी जिसे मक्खन या घी से चिपडा जाता है।) बनाने के लिए किया जाता है, हलवा आटे से बनी एक स्वादिष्ट मिठाई है। जापान में यह सोबा नूडल्स के रूप में बहुत प्रचलित नाश्ता है। कुट्टू के आटे को गेहूँ और जौ के आटे के साथ मिलाकर चपाती और परांठे बनाये जाते हैं। इसके बीज का उपयोग विभिन्न प्रकार के पेय बनाने के लिए किया जाता है। कुट्टू का उपयोग पारंपरिक पेय ''पेचुवी'' और ''छंग'' बनाने के लिए किया जाता है।

औषधि के रूप में उपयोग

कुट्टू के फूल और हरी पत्तियों से रूटिन नामक ग्लुकोसाइड प्राप्त होता है। जिसका प्रयोग संवहनी रोगों जैसे ऑक्युलर रक्त स्राव, एपोप्लेक्सी और कोरोनरी बाधा आदि के उपचार में किया जाता है। सूखे वजन के आधार पर कुट्टू की प्रजाति एफ. एस्कुलेंटस, एफ. टेट्रिकम और एफ. सीमोसम में 3–6 प्रतिशत मात्रा रूटिन की पाई जाती है। एफ. टेट्रिकम में रूटिन की मात्रा अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक होती है। टार्टरी बकव्हीट द्वारा मसूड़ों की बीमारी (पेरिडोंटिटिस) और मसूड़ों के रक्त स्राव का उपचार किया जाता है। इसका टूथब्रश में प्रयोग करने से 62 प्रतिशत रोगियों मे सुधार हुआ है।

हरी खाद के रूप में उपयोग

कुट्टू की फसल का उपयोग हरी खाद के रूप में भी किया जाता है, क्योंकि यह मिट्टी की भौतिक संरचना में सुधार करती है, साथ ही मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों को उपलब्ध कराती है। यह मृदा में पानी सोखने की क्षमता को बढ़ाती है। साथ ही मिट्टी को बांधने और मृदा कटाव नियंत्रण में सहायता करती है। नीलगिरी की पहाड़ियों में यह आलू की फसल के लिए हरी खाद का काम करती है।

शहद की फसल के रूप में उपयोग

कुट्टू के फूल से मधुमक्खी उच्च कोटि का शहद तैयार करती है। कुट्टू के फूल सितम्बर महीने में खिलते हैं। इससे तैयार शहद काले रंग का और स्वाद में तेज होता है। हिमाचल प्रदेश के किन्नौर और शिमला क्षेत्रों में मधुमक्खियों की गतिविधियों में वृद्धि से सेब और शहद की पैदावार में वृद्धि के कारण सेब के बाग उत्पादकों और मधुमक्खी पालकों के मध्य कुट्टू की खेती अधिक प्रचलित हो रही है।

पोषक तत्व

कुट्टू का पोषण मूल्य कई अन्य अनाजों की तुलना में काफी अधिक है। 100 ग्राम कच्चे कुट्टू के पोषण संबंधी तथ्य इस प्रकार हैं:

तालिका 1: कुट्टू में पोषण मूल्य

क्रम संख्या	पोषक तत्व	मात्रा	क्रम संख्या	पोषक तत्व	मात्रा
1	कैलोरी	343	5	शुगर	00
2	जल	10 प्रतिशत	6	तन्तु	10 ग्रा.
3	प्रोटीन	13.3 ग्रा.	7	वसा	3.4 ग्रा.
4	कार्बोहाइड्रेट	71.5 ग्रा.			

कुट्टू के मुख्य हानिकारक कीट

माहूः ये छोटे आकार के कीट हैं, जो पौधों का रस चूसते हैं। इन कीटों का शरीर कोमल एवं अंडाकार, सिर छोटा, सूँड़ संधित, स्पर्शक सात खंडों का एवं चार पारदर्शक पंख होते हैं। ये पौधों में छेद कर और उनका रस चूसकर बहुत क्षति पहुँचाते हैं।

उपचारः सिरिफिड मक्खी और लेडी बर्ड बीटल जैसे मित्र कीटों द्वारा माहू को नियंत्रित किया जा सकता है। माहू (एफिड्स) के प्रभावी प्रबंधन के लिए नीम के तेल (1500 पीपीएम) का 3 मिली. प्रति लीटर का छिड़काव किया जा सकता है तथा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एस.एल. 20–25 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर या थायोमेथोक्साम 25 प्रतिशत डब्लू.जी. 25–30 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर का छिड़काव करें।

पत्ती खाने वाला घुन (स्ट्रोफोसोमाइड्स कुमाओएन्सिस) : घुन के वयस्क मजबूत पंख (एलीट्रा) वाले तथा भूरे रंग के होते हैं। ये सुबह और शाम के समय में सक्रिय होते हैं और शायद ही कभी दिन में दिखाई देते हैं (जब आमतौर पर बादल छाए रहते हैं)। प्रजाति की मादा, नर की तुलना में आकार में बड़ी होती है। वयस्क घुन नए अंकुरित पौधों, कोमल पत्तियों और ऊतकों को नुकसान पहुँचाते हैं जिससे पौधे की वृद्धि बाधित होती है जबकि सुंडी (लार्वा चरण) आंतरिक जड़ के ऊतकों और भूमिगत तने के हिस्सों को खाते हैं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में नए पौधों की पत्तियां झड़ने लगती है और पौधे सूख जाते हैं।

उपचारः बुवाई के समय फेनवोलेरेट धूल का 20 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें अथवा फसल के अंकुरण के तुरंत बाद डेल्टामैथ्रिन 0.0028 प्रतिशत या फेनवोलेरेट 0.01 प्रतिशत या सिपर्मेथ्रिन 0.0075 प्रतिशत का छिड़काव करें।

निष्कर्ष

कुट्टू का बकव्हीट नाम होने पर भी गेहूँ से कोई सम्बन्ध नहीं है, न ही यह एक अनाज है और न ही घास परिवार का सदस्य है। कुट्टू सॉरेल, नॉटवीड और रूबर्ब से संबंधित है, इसके बीज में स्टार्च की उच्च मात्रा होने के कारण, इसे खाना पकाने में इस्तेमाल किया जा सकता है जिससे कुट्टू को छद्म अनाज की श्रेणी में रखा जाता है। कुट्टू की फसल मुख्य रूप से मानव उपयोग, औषधी, मधुमक्खी पालन, हरी खाद एवं पशु चारे के रूप मे सफलता पूर्वक उपयोग की जाती है।

समाप्त

12

योगेश, कैलाश प्रजापत, सुमंत्रा आर्य, अंकित, प्रदीप फोगाट एवं रामेश्वर लाल मीणा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail- yogeshdahiya71997@gmail.com

अधिक उत्पादन एवं आय के लिए संरक्षित खेती

संरक्षित या ग्रीनहाउस खेती को फसल उगाने की एक उन्नत तकनीक के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रोटेक्टेड या संरक्षित खेती का अर्थ है – संरक्षित रुप से उत्पादन की विधि, जो कि विशेष पारदर्शी या रक्षात्मक संरचनाओं के माध्यम से नियंत्रित मौसम और अन्य बाह्य परिस्थितियों के खिलाफ संरक्षण प्रदान करती है। संरक्षित खेती का उदाहरण होता है साइडरी और पॉलीहाउस कृषि, जिसमें पारदर्शी या रक्षात्मक संरचनाओं में उत्पादन की प्रक्रिया को नियंत्रित किया जाता है। इसमें फसलों को बाहरी परिस्थितियों जैसे बारिश, तेज धूप, तापमान की अधिकता आदि से संरक्षित रखने के लिए संरक्षित संरचनाएं उपयोग में ली जाती हैं। इस तरीके से खेती की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है और प्राकृतिक परिस्थितियों के प्रभावों से संरक्षित रखा जा सकता है। संरक्षित खेती में अन्य तकनीकी उपकरणों का उपयोग भी होता है, जैसे कि मृदा सौरीकरण, स्वचालित प्रणाली, बीज उत्पादन तंत्र आदि। इन तकनीकों का उपयोग करके विशेष तरीके से तापमान, आद्रता और ऊर्जा संबंधी परिस्थितियों को नियंत्रित किया जाता है, जिससे फसलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इसके साथ ही, संरक्षित खेती में पेस्टिसाइड्स और उर्वरकों का उपयोग कम होता है, जिससे पर्यावरण को हानि पहुंचाने की संभावना भी कम होती है। इस तरह की खेती कई बाधाओं का समाधान करती है और खेती के लिए अधिक उत्पादक, स्थायी और पर्यावरण के प्रति समन्वय से सहयोगी हो सकती है। संरक्षित खेती में निम्नलिखित फसलों का उत्पादन लिया जा सकता है:

- **टमाटर:** टमाटर सबसे आम फसल है जो संरक्षित खेती में उत्पादित होती है।
- **खीरा:** खीरा संरक्षित खेती में अच्छा उत्पादन देता है और इसे हाइड्रोपोनिक तरीके से भी उगाया जा सकता है।
- **शिमला मिर्च:** शिमला मिर्च व हरी मिर्च तापमान और मौसम के प्रति संवेदनशीलता के कारण संरक्षित खेती के लिए उपयुक्त हैं।
- **सलाद पत्ता (लेटयूस) पत्तेदार सब्जियां:** लेटयूस, पालक, केला, और अन्य पत्तेदार सब्जियों को कीटों से बचाने और उनकी उत्पादन की अवधि बढ़ाने के लिए संरक्षित वातावरण में उत्पादित किया जाता है।
- **बेरीज:** स्ट्रॉबेरी, रस्पबेरी, और ब्लूबेरी उत्पादन में तापमान और आर्द्रता को नियंत्रित करने के लिए संरक्षित खेती में उत्पादित किया जाता है।
- **जड़ी बूटियां:** तुलसी, पुदीना, पार्सले, और अन्य जड़ी बूटियां अपने उच्च मूल्य योग्यता के कारण संरक्षित खेती प्रणालियों में उत्पादित की जाती है।
- **फूल:** गुलाब, कार्नेशन, जरबेरा और अन्य फूल वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए संरक्षित वातावरण में उत्पादित किए जा सकते हैं।
- **कद्दू वर्गीय सब्जियां:** खरबूज, कद्दू, और अन्य कद्दू वर्गीय सब्जियों को संरक्षित खेती में उत्पादित किया जा सकता है, विशेषतः वे क्षेत्र जिनमें जलवायु अस्थिर होती है।
- **माइक्रोग्रीन्स:** इन विशेष फसलों को नियंत्रित वातावरण में उगाया जाता है क्योंकि उनका परिप्रेक्ष्य नाजुक होता है और उच्च बाजार मांग होती है।
- **स्ट्राबेरीज:** स्ट्राबेरी को हाई टनल्स जैसे संरक्षित वातावरण में उत्पादित किया जाता है ताकि उत्पादन की अवधि को बढ़ाया जा सके और फल को विपरित प्राकृतिक वातावरण के प्रति संरक्षित किया जा सके।

सब्जी उत्पादक ग्रीनहाउस खेती से अपनी आय में काफी वृद्धि कर सकते हैं। बेमौसम में सब्जियों की पैदावार सामान्य सीजन में पैदा होने वाली सब्जियों की तुलना में आम तौर पर नहीं होती है। बाजार में इन सब्जियों की बड़ी उपलब्धता के कारण अच्छी आमदनी मिलती है। ग्रीन हाउस प्रौद्योगिकी विभिन्न देशों जैसे अमेरिका, कनाडा और यूरोप में लोकप्रिय है। यह खेती और जगह की कमी तथा जलवायु परिवर्तन आदि परिस्थितियों में टिकाऊ उत्पादन में सक्षम है। इन प्रणालियों में पर्यावरण के विभिन्न कारक जैसे वायु, तापमान, आर्द्रता, वायुमंडलीय गैस संरचना आदि को ग्रीनहाउस, नेट हाउस, मल्च के रूप में संरक्षित खेती से नियंत्रित किया जा सकता है।

तालिका 1: विश्व के विभिन्न देशों में ग्रीनहाउस सब्जी उत्पादन के अंतर्गत क्षेत्र

देश	क्षेत्रफल हैक्टर ('000)	देश	क्षेत्रफल हैक्टर ('000)
चीन	81.0	तुर्की	33.5
स्पेन	70.4	इटली	25.0
दक्षिण कोरिया	47.0	मोरक्को	16.5
जापान	36.0	फ्रांस	10.0

तालिका 2: दुनिया भर में ग्रीनहाउस में उगाई जाने वाली प्रमुख सब्जियाँ (उपज टन/हैक्टर)

देश	टमाटर	शिमला मिर्च	खीरा
नीदरलैंड्स	460	262	690
कनाडा	463	258	530
यूनाइटेड किंगडम	413	248	480
फ़िनलैंड	337	138	396
रूस	300	100	.
मेक्सिको	153	.	.
सीरिया	141	.	.

संरक्षित खेती के लाभ

- प्रकार के आधार पर उपज बाहरी खेती की तुलना में 5–10 गुना अधिक हो सकती है।
- ग्रीनहाउस खेती के तहत फसल की विश्वसनीयता बढ़ जाती है।
- बे मौसम/साल भर सब्जी और फूलों का उत्पादन संभव है।
- रोग–मुक्त और आनुवंशिक रूप से बेहतर प्रत्यारोपण लगातार किए जा सकते हैं।
- उर्वरकों, कीटनाशकों और कीटनाशकों का कुशल उपयोग।
- फसलों की पानी की आवश्यकता बहुत सीमित है और इसे नियंत्रित करना आसान है।
- ऊतक संवर्धित पौधों का आसानी से उपयोग।
- दोषरहित गुणवत्तापूर्ण उत्पाद का उत्पादन।
- विभिन्न पारिस्थितिकी प्रणालियों की अस्थिरता की निगरानी और नियंत्रण में उपयोगी।
- ग्रीनहाउस खेती के अंतर्गत हाइड्रोपोनिक, एरोपोनिक्स और पोषक तत्व फिल्म तकनीक की आधुनिक तकनीकें भी संभव है।

संरक्षित खेती करने से पहले ध्यान में रखे जाने वाले महत्वपूर्ण पहलू

- स्थान की जलवायु।

- उगाई जाने वाली फसल।
- संरक्षित खेती करने के लिए संसाधन।
- संरक्षित खेती की सरकारी सहायता योजनाओं का ज्ञान।
- गुणवत्तापूर्ण उपज की बिक्री के लिए बाजार।

संरक्षित संरचनाओं के प्रकार

जलवायु नियंत्रित ग्रीनहाउस

ग्रीनहाउस पारदर्शी या पारभासी सामग्री से ढके ढांचे होते हैं। इष्टतम उपज प्राप्त करने के लिए पूरी तरह से नियंत्रित पर्यावरणीय परिस्थितियों में फसलें उगाने के लिए उपयुक्त होते है। ये सब्जियों व साल भर खेती के लिए फूल जैसी उच्च मूल्य वाली फसलों के लिए आदर्श रूप से उपयुक्त है। गर्मियों के दौरान कूलिंग पैड और एग्ज़ॉस्ट पंखों का उपयोग तापमान कम करने के लिए किया जाता है। सर्दियों के दौरान रात का तापमान 12–13^{0} सेल्सियस से नीचे जाने पर इष्टतम तापमान बनाए रखने के लिए हीटर का उपयोग किया जाता है। ऐसे ग्रीनहाउस निर्माण और रखरखाव दोनों में महंगे हैं। अत्यधिक गहन उद्यम के लिए पर्याप्त श्रम और मजबूत प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है।

इस तकनीक को अपनाने से पहले ध्यान रखने योग्य बातें

- स्थान की जलवायु।
- उगाई जाने वाली फसल।
- संरक्षित खेती करने के लिए संसाधन।
- संरक्षित खेती की सरकारी सहायता योजनाओं का ज्ञान।
- गुणवत्तापूर्ण उपज की बिक्री के लिए बाजार।

शून्य ऊर्जा प्राकृतिक रूप से हवादार ग्रीनहाउस

प्राकृतिक रूप से हवादार ग्रीनहाउस वो संरक्षित संरचनाएं हैं जहाँ जलवायु नियंत्रण के लिए कोई ताप या शीतलन नहीं होता है। यह कीटरोधी जाल के माध्यम से मुख्य रूप से शीर्ष और किनारों पर प्राकृतिक रूप से हवादार होता है। ये सरल और मध्यम लागत वाले ग्रीनहाउस हैं।

मानव संचालित प्राकृतिक हवादार प्रणाली

ऐसे ग्रीनहाउस का खीरे, टमाटर और शिमला मिर्च आदि की साल भर 8–9 महीने की अवधि तक कुशलतापूर्वक खेती करने के लिए सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। प्रौद्योगिकी को लागू करने की मूल शर्त उपयुक्त जलवायु परिस्थितियों, बाजार की उपलब्धता और सब्जी की फसल के प्रकार के आधार पर डिजाइन के चयन पर निर्भर करती है। शुष्क और अर्धशुष्क परिस्थितियों में अधिकतम 40–50 प्रतिशत तक वायुसंचार की आवश्यकता होती है। सब्जी की फसल उगाने के लिए संरचना कुशल और सफल है। अत्यधिक गर्म अवधि में (मई–जुलाई) ग्रीनहाउस की छतों को शेड नेट (अधिमानतः काले रंग) से ढका जाना चाहिए। हवा की आवाजाही के लिए शेड नेट और छत की सतह के बीच जगह छोड़ना चाहिए। ऐसे ग्रीनहाउस को ऊर्जा कुशल बनाने के लिए कम दबाव वाली ड्रिप सिंचाई प्रणाली से सुसज्जित किया जा सकता है।

प्राकृतिक हवादार पॉलीहाउस में लगी टमाटर की फसल

पॉलीहाउस में शिमला मिर्च का उत्पादन

शेड नेट हाउस

शेड नेट छिद्रित प्लास्टिक सामग्री है जिनका उपयोग गर्मी के महीनों (मई–जून) के दौरान बढ़े हुए तापमान के कारण पत्तियों को झुलसने या मुरझाने से बचाने, सौर विकिरण को कम करने या रोकने के लिए किया जाता है। शेड नेट 25–75 प्रतिशत तक की विभिन्न छाया स्तर में उपलब्ध है। छाया जाल घर उन स्थानों के लिए उपयुक्त है जहाँ रात का तापमान 15–18^0 सेल्सियस से नीचे नहीं जाता है। आमतौर पर दिन के समय तापमान 28–30^{0}सेल्सियस होता है। काले रंग के शेड नेट अन्य रंगों जैसे हरा, सफेद या चांदी आदि की तुलना में तापमान कम करने में सबसे अधिक कारगर होते हैं क्योंकि काला रंग ऊष्मा का सर्वाधिक अवशोषक होता है। अधिकतर पत्तेदार चुकंदर की पत्ती और हरा धनिया जैसी सब्जियाँ छायादार जाल के नीचे उगाना पसंद किया जाता है। जून से सितंबर के दौरान अगेती फूलगोभी और मूली उगाने के लिए छाया नेट हाउस उपयुक्त हैं।

वॉक–इन–टनल

वॉक–इन–टनल जीआई पाइप, प्लास्टिक पाइप या बांस को मोड़कर बनाई गई आवरण के रूप में अर्धगोलाकार और पारदर्शी पराबैंगली स्थिरीकृत (150–200 माइक्रोन) पॉलीथीन की अस्थायी संरचनाएं हैं। केंद्रीय ऊंचाई 6 से 6.5 फीट और चौड़ाई 4.0 से 4.5 फीट रखी जाती है। आवश्यकतानुसार संरचना की लंबाई भिन्न हो सकती है। पूर्वनिर्मित संरचनाओं का उपयोग वॉक–इन–सुरंगों को आसान बनाता है। वॉक–इन–टनल संरचनाओं को 15–25 किग्रा/मी.^{2} के भार को सहन करने के लिए डिज़ाइन किया जाता है।

संरक्षित खेती विकसित करने के लिए प्रमुख सावधानियां रखनी होती हैं। यहाँ कुछ मुख्य बाधाएँ और सावधानियाँ दी जा रही हैं।

- **उचित तापमान व ध्वनिः** संरक्षित खेती में उचित तापमान और ध्वनि का पालन करना महत्वपूर्ण है। समय–समय पर तापमान और ध्वनि का नियमित मापन और नियंत्रण की जांच की जानी चाहिए।
- **सफाईः** संरक्षित खेती में सफाई की मांग होती है। संरक्षित स्थान को साफ़ और सुरक्षित रखने के लिए नियमित धूल और कीटाणुनाशकों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
- **समय–समय पर पानी प्रदान करनाः** संरक्षित खेती में समय–समय पर पानी प्रदान करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। पौधों को उचित पानी प्रदान करने के लिए उचित स्थिति बनाए रखना आवश्यक है।
- **बीमारियों व कीटों का नियंत्रणः** संरक्षित खेती में पौधों में बीमारियों और कीटों का प्रबंधन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। नियमित जांच और नियंत्रण के लिए कृषि विशेषज्ञों की सलाह लेना उपयुक्त है।
- **पोषण सामग्री का प्रबंधनः** पौधों को उचित पोषण सामग्री प्रदान करना महत्वपूर्ण है। सही मात्रा में खाद और पोषण सामग्री का उपयोग करना चाहिए।
- **उचित प्रबंधन व अनुरक्षणः** संरक्षित खेती का उचित प्रबंधन और अनुरक्षण करना महत्वपूर्ण है। तकनीकी गड़बड़ी के साथ निपटने के लिए तत्पर रहना चाहिए।
- इन सावधानियों का पालन करके, संरक्षित खेती को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया जा सकता है।

13

प्रदीप फोगाट, अंकित सिंह[1], सुमंत्रा आर्य, योगेश एवं अंकित
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[1]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125004 (हरियाणा)
E-mail: pardeepphogat0617@hau.ac.in

फसल अवशेष प्रबंधनः मृदा उर्वरता एवं टिकाऊ उत्पादकता में सहायक

पिछली शताब्दी में ही विश्व की मानव जनसंख्या चार गुना बढ़ गई है। यह जनसंख्या वृद्धि, कुछ हद तक बेहतर कृषि और औद्योगिक तकनीकों के परिणामस्वरूप, बढ़ती जनसंख्या को खिलाने के लिए खाद्य उत्पादन पर दबाव जारी रखती है। पिछले कुछ वर्षों में तीव्र खाद्य उत्पादन ने मिट्टी के स्वास्थ्य के साथ–साथ गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला है। बदले में मृदा क्षरण में वृद्धि फसल की पैदावार में कमी से जुड़ी है। मृदा स्वास्थ्य को जीवित प्रणाली के रूप में कार्य करने की मिट्टी की क्षमता के रूप में परिभाषित किया गया है, जबकि मिट्टी की गुणवत्ता इसके उपयोग के लिए उपयुक्त है। कृषि के संदर्भ में, उच्च मिट्टी की गुणवत्ता का मतलब निम्न स्तर के क्षरण के साथ अत्यधिक उत्पादक मिट्टी होना है। टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए मिट्टी की गुणवत्ता मिट्टी के स्वास्थ्य से संबंधित है। एक जीवित प्रणाली के रूप में मिट्टी में ऐसे जीव होते हैं जिनकी गतिविधियों से पोषक तत्वों का चक्रण, पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध, कीट, खरपतवार और रोग नियंत्रण, मिट्टी के समग्र गठन और वातन शामिल होते हैं जो कटाव और जल घुसपैठ की संवेदनशीलता को प्रभावित करते हैं। एक स्वस्थ मिट्टी कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध होती है जो मिट्टी के जीवों की उच्च विविधता को पनपने और मिट्टी के पोषक तत्वों और नमी के भंडार के रूप में कार्य करने की अनुमति देती है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाने या बनाए रखने के लिए जैविक संशोधन के नियमित स्त्रोतों को शामिल करना आवश्यक है जो मिट्टी के स्वास्थ्य सुधार में योगदान देता है।

बायोमास का सबसे सुलभ और उपलब्ध रूप फसल अवशेष है, जो फसल की कटाई के बाद बचे रहते हैं। फसलों से प्राप्त अवशेषों को मिट्टी के लिए कार्बनिक पदार्थ का सबसे बड़ा स्रोत माना जाता है। 110 टन गेहूँ, 122 टन चावल, 26 टन बाजरा, 71 टन मक्का, 28 टन दालें, 8 टन रेशे वाली फसलें एवं 141 टन गन्ने के उत्पादन से सालाना लगभग 500–550 मिलियन टन फसल अवशेष खेत में और खेत से बाहर उत्पादित होते हैं। भारत में उत्पन्न सकल अवशेष का लगभग 234 मिलियन टन/वर्ष (यानी 30 प्रतिशत) अधिशेष के रूप में उपलब्ध है। फसल अवशेषों की यह विशाल मात्रा आर्थिक रूप से काफी महत्वपूर्ण है।

पर्यावरण की स्थिरता के साथ–साथ भारतीय कृषि के विकास के लिए अवशेष प्रबंधन एक उभरती हुई चुनौती है। खेत में फसल अवशेष जलाने से पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य खराब होने के अलावा मिट्टी के पोषक तत्वों की भारी हानि होती है।

खेत में जलते हुए फसल अवशेष

फसल अवशेष जलाने के कारण

- सिन्धु–गंगा के मैदानी इलाकों में गहन फसल प्रणाली अपनाई जाती है जिसके कारण फसल अवशेषों को जला दिया जाता है, क्योंकि अगली फसल की बुआई के लिए कम समय उपलब्ध होने के कारण इससे छुटकारा पाने का यह सबसे आसान और सबसे किफायती विकल्प है।
- यह कम श्रम गहनता के कारण बड़ी मात्रा में फसल अवशेषों से छुटकारा पाने का सबसे आसान और त्वरित तरीका है और किसानों पर कोई अतिरिक्त वित्तीय बोझ नहीं पड़ता है।
- मुख्य रूप से चावल–गेहूँ फसल प्रणाली में, किसान नर्सरी की तैयारी के लिए कृषि मशीनरी के सुचारू संचालन के

लिए खेत को साफ करने के लिए अवशेषों को जलाकर निपटान करते हैं।

- मशीनीकृत खेती के साथ–साथ कुशल कृषि श्रम की कमी और उच्च संबद्ध लागत, फसल अवशेषों को खेत में जलाने की ओर बढ़ावा देती है।
- किसानों का दावा है कि अवशेष जलाने से पिछले मौसम के अवशेषों और बिना विघटित पुआल के नीचे शीतनिद्रा में रहने वाले हानिकारक कीटों को मारने में मदद मिलती है, जो खड़े पानी पर तैरते हैं और हवा चलने पर नए रोपे गए चावल के अंकुर को उखाड़ देते हैं।
- राज्य कृषि विभाग किसानों को मशीनरी का उपयोग करके अवशेषों को मिट्टी में समावेश करने का सुझाव देते हैं, लेकिन इससे खेती की लागत बढ़ जाती है। आमतौर पर, किसान 3 या 4 साल में एक बार गहरी जुताई और लेजर भूमि समतलीकरण करते हैं। लेकिन सलाह के अनुसार, हर साल अवशेषों को शामिल करने के लिए गहरी जुताई करना आवश्यक हो जाता है और उसके बाद भूमि को समतल करना पड़ता है जो किफायती नहीं है।
- उच्च दूध उत्पादन स्तर को बनाए रखने के लिए आवश्यक पर्याप्त पोषक तत्वों की कमी के कारण किसान अपने डेयरी पशुओं को चावल का भूसा खिलाना पसंद नहीं करते हैं।
- अवशेषों को जलाने के कारणों में उच्च परिवहन लागत, खाद बनाने में लगने वाला लंबा समय भी शामिल है।

तालिका 1. विभिन्न फसल अवशेषों में एनपीके की मात्रा (प्रतिशत)

फसल अवशेष	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश
गेहूँ का भूसा	0.53	0.10	1.10
धान की पुआल	0.36	0.08	0.70
जौ का भूसा	0.57	0.26	1.20
मक्के का भूसा	0.47	0.57	1.65

अवशेषों को शामिल करने या फसल अवशेषों को मिट्टी की सतह पर बनाए रखने से मिट्टी की गुणवत्ता पर कई लाभ होते हैं। हालाँकि, हमारे देश में छोटे भूमिधारकों को फसल अवशेषों के प्रबंधन में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अवशेषों को जैव–ईंधन या पशुओं के चारे के रूप में उपयोग के लिए या पशुओं द्वारा यथास्थान चरने के लिए पूरी तरह से हटाया जा सकता है। पारंपरिक फसल अवशेष प्रबंधन में बदलाव फसल अवशेषों को बनाए रखने के दीर्घकालिक पर्यावरणीय और आर्थिक लाभों पर निर्भर करता है।

फसल अवशेष से संबंधित प्रबंधन पद्धतियाँ

जीरो–टिल पद्धति से मक्के की खेती

अनाज की फसलों के अवशेषों का प्रबंधन और उपयोग कई तरीकों से किया जाता है। जो किसान पशुधन पालते हैं वे अपने पशुओं को खिलाने के लिए अवशेष हटाते हैं। कुछ लोग इसे अपनी आय बढ़ाने के लिए पशु चारे के रूप में या जैव–ईंधन के रूप में उपयोग करने के लिए बेचते हैं, जबकि अन्य इसे जला या हटा देते हैं। यदि फसल के अवशेष बरकरार रहते हैं, तो उन्हें या तो मिट्टी की सतह पर छोड़ दिया जा सकता है या मिट्टी में मिला दिया जाता है। पारंपरिक जुताई प्रथाओं में अक्सर मोल्डबोर्ड हल द्वारा प्रारंभिक जुताई शामिल होती है, उसके बाद हेरो द्वारा खेत की द्वितीयक जुताई की जाती है। जुताई का यह रूप सभी सतही फसल अवशेषों को मिट्टी में दबा देता है। फसल अवशेषों को मिट्टी की सतह पर बनाए रखना मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार करता है। शून्य (बिना जुताई) या कम जुताई का उपयोग करने वाली कृषि प्रणालियाँ जैसे संरक्षण कृषि एक स्थायी या अर्ध–स्थायी जैविक मिट्टी कवर की सिफारिश करती है। शून्य जुताई तकनीक का उपयोग करते समय, अवशेषों को हटाने के बजाय सतह पर छोड़ना विशेष रूप से आवश्यक है क्योंकि अवशेषों को हटाने या जलाने

के साथ शून्य जुताई का संयोजन पारंपरिक की तुलना में लंबे समय में मिट्टी की गुणवत्ता पर और भी अधिक नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

मिट्टी की गुणवत्ता पर फसल अवशेषों का प्रभाव

फसल अवशेष कार्बनिक पदार्थ को मिट्टी में लौटा देते हैं जहाँ इसे भौतिक, रासायनिक और जैविक गतिविधियों के संयोजन के माध्यम से बनाए रखा जाता है जो पोषक चक्र सहित मिट्टी की गुणवत्ता पर प्रभाव डालते हैं और प्रभावित करते हैं।

मिट्टी के रासायनिक गुणों पर प्रभाव

मृदा जैविक कार्बन

मृदा जैविक कार्बन को मिट्टी की गुणवत्ता और कृषि स्थिरता का एक महत्वपूर्ण संकेतक माना जाता है क्योंकि यह मिट्टी की समग्र स्थिरता और मिट्टी के जल प्रतिधारण में सुधार करता है, और मिट्टी के पोषक तत्वों का भंडार प्रदान करता है। मानवीय गतिविधियाँ जैसे कि भूमि–उपयोग परिवर्तन, विशेष रूप से कृषि क्षेत्रों और चारागाहों में परिवर्तन, फसल के अवशेषों को हटाना और पशुओं को सीधे भोजन खिलाना, कार्बन डाईऑक्साइड के रूप में वातावरण में कार्बन की और भी अधिक मात्रा जारी करता है। फसल अवशेष सीधे मृदा जैविक पदार्थ में योगदान करते हैं और इसका अपघटन ह्यूमस निर्माण प्रक्रिया का प्रारंभिक चरण है जो कार्बन भंडारण की ओर ले जाता है। फसल अवशेष प्रतिधारण मृदा जैविक कार्बन स्तर को बढ़ाने की कुंजी है। हालाँकि, इसके प्रभाव को मिट्टी के प्रकार, जलवायु और प्रबंधन कारकों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

जुताई द्वारा फसल अवशेषों को शामिल करना या मिट्टी की सतह पर छोड़ना, मिट्टी प्रोफाइल में मृदा जैविक कार्बन पर फसल अवशेषों के प्रतिधारण के प्रभाव को अतिरिक्त रूप से प्रभावित कर सकता है। पारंपरिक जुताई को आमतौर पर अपघटन दर में वृद्धि के कारण कार्बन अपघटन के लिए जिम्मेदार माना जाता है। जुताई मिट्टी की संरचनात्मक स्थिरता को बिगाड़ती है और कार्बनिक पदार्थों को पुनर्वितरित करती है, जिससे मिट्टी की सतह पर सुक्ष्म जैविक गतिविधि प्रभावित होती है जो कार्बन अपघटन करती है।

मिट्टी का पीएच मान

फसल अवशेषों का जमाव मिट्टी के पीएच मान को प्रभावित कर सकता है क्योंकि मिट्टी के पीएच में परिवर्तन की दिशा अवशेषों की रासायनिक संरचना और मिट्टी के गुणों से संबंधित होती है। नाइट्रोजन सामग्री में उच्च अवशेष जैसे कि कुछ फलियां कम सामग्री वाले अवशेषों की तुलना में पीएच पर अधिक प्रभाव डालती हैं। पीएच मान पर फसल अवशेष प्रतिधारण का प्रभाव आमतौर पर ऊपरी मिट्टी की परत तक ही सीमित होता है।

धनायन विनिमय क्षमता

धनायन विनिमय क्षमता, मिट्टी के घोल के साथ विनिमय के लिए धनायनों को धारण करने की मिट्टी की क्षमता है और यह मिट्टी की उर्वरता का संकेतक है। मृदा अवशेष प्रतिधारण कार्बनिक पदार्थ सामग्री को बढ़ाता है और इस प्रकार मिट्टी के पीएच मान पर निर्भर सीईसी को बढ़ाता है। यह ऊपरी मिट्टी में तब बढ़ता है जब अवशेष बने रहते हैं।

पोषक तत्वों की उपलब्धता

फसल के अवशेषों को मिट्टी में मिलाने से फसल को नाइट्रोजन की उपलब्धता प्रभावित हो सकती है। कम कार्बन : नाइट्रोजन संरचना वाले अवशेषों से नाइट्रोजन खनिजकरण हो सकता है, जबकि उच्च कार्बन : नाइट्रोजन संरचना वाले अनाज के अवशेष अपघटन प्रक्रिया के दौरान नाइट्रोजन को अस्थायी रूप से स्थिर कर सकते हैं। ऊपरी मिट्टी में अवशेष प्रतिधारण का फॉस्फोरस की सांद्रता को बढ़ाने में योगदान पाया गया है। इसका श्रेय निचली मिट्टी की परतों से खनन किए गए फॉस्फोरस के पुनर्वितरण को दिया जा सकता है।

मिट्टी के भौतिक गुणों पर प्रभाव

मिट्टी की संरचना

फसल उत्पादन प्रणाली की स्थिरता और कटाव द्वारा मिट्टी के क्षरण के प्रतिरोध को निर्धारित करने में मिट्टी की संरचना एक

महत्वपूर्ण घटक है। वर्षा, जुताई, मशीनरी के उपयोग और अवशेष प्रबंधन जैसे कारकों से मिट्टी की संरचना में बदलाव किया जा सकता है। फसल अवशेषों को बनाए रखने से विभिन्न तंत्रों के माध्यम से मिट्टी की संरचना में सुधार हो सकता है:

- ऊपरी मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ स्तर को बढाकर मिट्टी के एकत्रीकरण को बढ़ाना
- मृदा समुच्चय को वर्षा की बूंदों के प्रभाव से बचाना
- वर्षा की बूंदों के प्रभाव से होने वाले संघनन से मिट्टी की रक्षा करना

मृदा समुच्चय और उनकी स्थिरता मिट्टी की सरंध्रता, मिट्टी प्रणाली के माध्यम से पानी, गैस और पोषक तत्वों की आवाजाही और जड़ विकास को प्रभावित करती है। पहाड़ी इलाकों, भारी वर्षा और अत्यधिक क्षरित मिट्टी वाले क्षेत्रों में ऊपरी मिट्टी की समग्र स्थिरता में सुधार के लिए फसल के अवशेषों को सतह पर छोड़ना महत्वपूर्ण हो सकता है।

मिट्टी में नमी की मात्रा

वर्षा आधारित जलवायु में जहाँ फसल उत्पादन मिट्टी की नमी से सीमित होता है, उपज वृद्धि के संदर्भ में, नमी बनाए रखना सतह अवशेष आवरण के मुख्य लाभों में से एक माना जाता है। अवशेष प्रतिधारण अपवाह को धीमा करने और वाष्पीकरण को कम करने के लिए प्रदर्शित किया गया है, जो सूखा–प्रवृत क्षेत्रों में मिट्टी में पानी की मात्रा को बढ़ाने और लचीलेपन में योगदान देता है। सतही अवशेषों को बनाए रखने के साथ संरक्षण प्रथाओं से पानी की उपलब्धता की कमी के कारण फसल की विफलता और कम फसल अवशेष उत्पादन के जोखिम को कम किया जा सकता है।

मिट्टी का तापमान

यह देखा गया है कि मिट्टी की सतह पर फसल अवशेष दिन के समय मिट्टी के तापमान को कम कर देते हैं। यह जड़ों के विकास के लिए अधिक अनुकूल वातावरण बनाने में मदद करता है। मिट्टी के तापमान पर फसल अवशेषों का प्रभाव अवशेषों के रंग से नियंत्रित होता है। गहरे रंग के अवशेषों के परिणामस्वरूप हल्के रंग के अवशेषों की तुलना में दोपहर का तापमान अधिक होता है।

मिट्टी के जैविक गुणों पर प्रभाव

मृदा जैव विविधता में मृदा वनस्पति और मृदा जीव–जंतु शामिल हैं। यह फसल की गुणवत्ता, मिट्टी से उत्पन्न कीटों और बीमारियों की घटना, पोषक चक्र और जल हस्तांतरण को प्रभावित करके कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अशांति और तनाव को भी प्रतिबिंबित कर सकता है, क्योंकि कम मिट्टी की जैव विविधता अक्सर मानव–जनित अशांति के कारण होती है।

सुक्ष्म जैविक गतिविधि

मिट्टी के सूक्ष्म जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थों का अपघटन कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में पानी और पोषक तत्वों की उपलब्धता के साथ–साथ मिट्टी की संरचना को भी प्रभावित करता है। मृदा सुक्ष्म जीवों के बायोमास को मृदा कार्बनिक पदार्थ के जीवित भाग के रूप में परिभाषित किया गया है। आजकल, यह मिट्टी की गुणवत्ता का एक उपयोगी और संवेदनशील संकेतक है क्योंकि यह जैविक रूप से उपलब्ध पोषक तत्वों का एक स्रोत और भंडार है और मिट्टी के एकत्रीकरण और संरचनात्मक गठन को बढ़ावा देता है। मृदा सूक्ष्मजीव बायोमास तापमान और नमी जैसे पर्यावरणीय कारकों और फसल अवशेष इनपुट जैसे मृदा प्रबंधन प्रथाओं से प्रभावित हो सकता है। मिट्टी में फसल अवशेषों को शामिल करने से मिट्टी का तापमान और वायु संचार बढ़ता है, जिससे सूक्ष्म जीवों के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनती हैं और सूक्ष्मजीव गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है।

केंचुआ

कवक (फफूंद)

आर्बुस्कुलर माइकोराइजा फंगस पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाते हैं जहाँ फंगस पौधे से ग्लूकोज प्राप्त करते हैं और बदले में कवक जाल (हाइफे) के माध्यम से फॉस्फेट वितरित करते हैं, जो अंततः पौधे को पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार करता है। कार्बनिक पदार्थ का इनपुट आर्बुस्कुलर माइकोराइजा फंगस के विकास और बीजाणु आबादी पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है, जबकि जुताई द्वारा मिट्टी में गडबड माइकोराइजा विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालने के लिए जानी जाती है।

यह देखा गया है कि केंचुए फसल अवशेषों को बनाए रखने और मिट्टी में न्यूनतम गड़बड़ी के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया देते हैं। केंचुओं को पारिस्थितिकी तंत्र इंजीनियरों के रूप में वर्णित किया गया है क्योंकि मिट्टी के पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव उनके शरीर के आकार और जीवनकाल से परे रह सकता है। वे अपने बायोमास के माध्यम से पोषक तत्वों का उपभोग, भंडारण और चक्रण करके, उत्सर्जन और मृत्यु दर के माध्यम से विशेष रूप से महत्वपूर्ण मात्रा में नाइट्रोजन जारी करके कार्बन और नाइट्रोजन चक्र को सीधे प्रभावित करते हैं। परोक्ष रूप से, वे अपनी आंत और अपनी संरचनाओं के माध्यम से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ मिलाकर कार्बन और नाइट्रोजन चक्र और मिट्टी की समग्र स्थिरता को प्रभावित करते हैं। मिट्टी का ठंडा तापमान, बेहतर मिट्टी की संरचना और सतह पर जमा फसल अवशेषों द्वारा प्रदान किए गए खाद्य संसाधन केंचुओं की संख्या और बायोमास में वृद्धि का कारण बन सकते हैं।

निष्कर्ष

मिट्टी के स्वास्थ्य से संबंधित भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में आमतौर पर फसल अवशेष प्रतिधारण के साथ सुधार होता है। मिट्टी के कटाव के उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों और उच्च अपघटन दर वाले आर्द्र उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में फसल अवशेषों के सतह पर प्रतिधारण को बढ़ावा देना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। मिट्टी के पीएच मान और मिट्टी के तापमान पर अवशेष प्रतिधारण का प्रभाव अवशेषों की गुणवत्ता और मिट्टी की विशेषताओं पर अत्यधिक निर्भर है। पानी की कमी वाले क्षेत्रों में, मिट्टी की सतह पर फसल अवशेषों को बनाए रखने से मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार और नमी बनाए रखने के कारण पैदावार में वृद्धि करके सकारात्मक प्रतिक्रिया पैदा हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप अतिरिक्त फसल अवशेषों का उत्पादन होता है, जिनका उपयोग बाद में चारे के लिए किया जा सकता है।

समाप्त

14

रेनू यादव[1], राहुल कुमार[2*], किरण[1], निक्की[1] एवं मुस्कान वेदी[3]
[1]मौलिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125004 (हरियाणा)
[2]कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, बावल, रेवाड़ी (हरियाणा)
[3]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125004 (हरियाणा)
*E-mail: drrkr321@gmail.com

वर्मीकम्पोस्टिंगः अपशिष्ट प्रबंधन के लिए पर्यावरण अनुकूल समाधान

हाल के वर्षों में, जैसे–जैसे पर्यावरण संबंधी चिंताएँ बढ़ती जा रही है, टिकाऊ अपशिष्ट प्रबंधन प्रथाओं का महत्व सबसे जरूरी हो गया है। इन प्रथाओं के बीच, वर्मीकम्पोस्टिंग ने मिट्टी के स्वास्थ्य को समृद्ध करने के साथ–साथ जैविक कचरे के पुनर्चक्रण में अपनी प्रभावशीलता के लिए महत्वपूर्ण ध्यान आकर्षित किया है। यह न केवल कचरे को लैंडफिल से हटाता है बल्कि पोषक तत्वों से भरपूर खाद का उत्पादन भी करता है जो पौधों को पोषण देता है और मिट्टी के स्वास्थ्य को पुनर्जीवित करता है। ऐसे समय में जब स्थिरता और पर्यावरण चेतना तेजी से महत्वपूर्ण होती जा रही है, वर्मीकम्पोस्टिंग का अभ्यास पर्यावरणीय प्रबंधन के एक प्रतीक के रूप में उभरता है। वर्मीकम्पोस्टिंग केंचुओं की मदद से जैविक कचरे के पुनर्चक्रण का एक सरल और प्रभावी तरीका है।

वर्मीकम्पोस्टिंग क्या है?

वर्मीकम्पोस्टिंग एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसमें केंचुओं की विशिष्ट प्रजातियों का उपयोग शामिल होता है, जैसे कि आईसेनिया फीटिडा (लाल केंचुए), रसोई के स्क्रैप, यार्ड अपशिष्ट और कागज जैसे कार्बनिक पदार्थों को तोड़कर पोषक तत्वों से भरपूर खाद में बदल देते हैं जिन्हें वर्मीकम्पोस्ट या वर्म कास्टिंग के रूप में जाना जाता है। ये केंचुए कार्बनिक पदार्थों का सेवन करते हैं, उन्हें पचाते हैं और पोषक तत्वों से भरपूर पदार्थों का उत्सर्जन करते हैं, जो एक उत्कृष्ट मिट्टी संशोधन और उर्वरक के रूप में काम करते हैं।

वर्मीकम्पोस्टिंग के लाभ

कचरे में कमीः वर्मीकम्पोस्टिंग जैविक कचरे को लैंडफिल से हटाने के लिए एक स्थायी समाधान प्रदान करता है, जो अन्यथा अवायुवीय रूप से विघटित होता है, जिससे मीथेन जैसी एक शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस का उत्पादन होता है। केंचुओं के साथ कार्बनिक पदार्थों को खाद बनाकर, हम लैंडफिल में भेजे जाने वाले कचरे की मात्रा को काफी कम कर सकते हैं, जिससे पर्यावरण प्रदूषण कम हो सकता है और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम हो सकता है।

मृदा स्वास्थ्य और उर्वरताः वर्मीकम्पोस्ट पौधों के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का एक पावरहाउस है, जिसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम और सूक्ष्म पोषक तत्व शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, वर्मीकम्पोस्ट में लाभकारी सूक्ष्मजीव और एंजाइम होते हैं जो मिट्टी की संरचना को बढ़ाते हैं, वातन को बढ़ावा देते हैं और जल धारण क्षमता में सुधार करते हैं। मिट्टी में वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग से उसकी उर्वरता बढ़ती है, जिससे फसल की पैदावार बढ़ती है, पौधों का स्वास्थ्य बेहतर होता है और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है।

जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र स्वास्थ्य

केंचुए सूक्ष्मजीवी गतिविधि, पोषक चक्र और मिट्टी के वातन को बढ़ाकर मिट्टी की पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्मीकम्पोस्टिंग के माध्यम से, हम न केवल केंचुओं की उत्पादक क्षमता का उपयोग करते हैं बल्कि जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य का भी समर्थन करते हैं। स्वस्थ मिट्टी पारिस्थितिकी तंत्र के समग्र लचीलेपन में योगदान देती है, पौधों की विविधता को बढ़ावा देती है, पानी की गुणवत्ता में सुधार करती है और कटाव को कम करती है।

आर्थिक लाभः वर्मीकम्पोस्टिंग व्यक्तिगत घरों और कृषि उद्यमों दोनों को आर्थिक लाभ प्रदान करता है। जैविक कचरे को मौके पर ही खाद बनाकर, घरेलू अपशिष्ट निपटान लागत को कम कर सकते हैं और बागवानी और भूनिर्माण उद्देश्यों के लिए पोषक तत्वों से भरपूर खाद का उत्पादन कर सकते हैं। कृषि में, वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम करके लागत की बचत हो सकती है और मृदा उत्पादकता में सुधार हो सकता है, और अंततः कृषि लाभप्रदता बढ़ सकती है।

बहुमुखी प्रतिभाः वर्मीकम्पोस्टिंग घर के अंदर या बाहर किया जा सकता है, जिससे रहने की जगह की परवाह किए बिना लोगों के लिए सुलभ हो जाता है। यह शहरी, अपार्टमेंट निवासियों और बागवानों के लिए एक आदर्श समाधान है।

शैक्षिक मूल्यः वर्मीकम्पोस्टिंग सभी उम्र के व्यक्तियों के लिए व्यावहारिक सीखने का अनुभव प्रदान करता है, जिससे अपघटन और पोषक चक्र के प्राकृतिक चक्रों की गहरी समझ को बढ़ावा मिलता है।

सतत् कृषिः जलवायु परिवर्तन और मृदा स्वास्थ्य में गिरावट की स्थिति में, खाद्य सुरक्षा और लचीलापन सुनिश्चित करने के लिए टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाना अत्यावश्यक है। वर्मीकम्पोस्टिंग मृदा संरक्षण को बढ़ावा देने, पर्यावरणीय क्षरण को कम करने और सिंथेटिक इनपुट पर निर्भरता को कम करके टिकाऊ कृषि के सिद्धांतों के अनुरूप है। कृषि प्रणालियों में वर्मीकम्पोस्ट को शामिल करने से लचीली, पारिस्थितिकी रूप से सुदृढ़ कृषि पद्धतियों के विकास में योगदान मिल सकता है जो दीर्घकालिक खाद्य उत्पादन का समर्थन करती हैं।

वर्मीकम्पोस्टिंग के साथ शुरुआत करना

सही केंचुआ का चुनावः आईसेनिया फेटिडा, जिसे रेड रिग्लर्स के नाम से भी जाना जाता है, अपनी तीव्र भूख और सीमित स्थानों में पनपने की क्षमता के कारण वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए पसंदीदा प्रजाति है।

एक कंटेनर का चयन करें: आप वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए विभिन्न प्रकार के कंटेनरों का उपयोग कर सकते हैं, जिनमें प्लास्टिक के डिब्बे, लकड़ी के बक्से या व्यावसायिक रूप से उपलब्ध विशेष कृमि खाद प्रणाली शामिल हैं। कंटेनर में पर्याप्त वायु संचार और जलनिकास सुनिश्चित करें।

बेडिंग सामग्रीः कटे हुए अखबार, कार्डबोर्ड, या नारियल की जटा जैसी बेडिंग सामग्री जोड़कर केंचुओं के लिए एक आरामदायक वातावरण बनाएं। बेडिंग को तब तक गीला करें जब तक वह गीले स्पंज जैसा न हो जाए।

केंचुए और खाद्य अपशिष्ट डालें: केंचुओं को बेडिंग में डालें और धीरे–धीरे फलों और सब्जियों के छिलके जैसे रसोई के कचरे को डालें। खट्टे फल, प्याज, लहसुन, डेयरी, मांस और तैलीय खाद्य पदार्थों से बचें, क्योंकि वे कीटों को आकर्षित कर सकते हैं और गंध पैदा कर सकते हैं।

अनुकूलतम स्थितियाँ बनाए रखें: वर्मीकम्पोस्टिंग प्रणाली को नम रखें लेकिन जल भराव न रखें, और बेडिंग और कचरे का संतुलित अनुपात बनाए रखें। समय–समय पर बेडिंग को धीरे से हिलाकर पर्याप्त वातन सुनिश्चित करें।

वर्मीकम्पोस्ट प्राप्त करें: एक बार जब बेडिंग वर्मीकम्पोस्ट में बदल जाता है और केंचुए काफी बढ़ जाते हैं, तो वर्मीकम्पोस्ट प्राप्त करने का समय आ जाता है। तैयार खाद को कंटेनर से निकालें, केंचुओं को पीछे छोड़ दें, और इसका उपयोग अपने बगीचे की मिट्टी या गमले में लगे पौधों को समृद्ध करने के लिए करें।

वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए आमतौर पर उपयोग की जाने वाली विधियाँ

बिन विधि: यह सबसे आम तरीका है जहाँ केंचुओं और जैविक कचरे को रखने के लिए एक बिन, जो अक्सर प्लास्टिक या लकड़ी से बना होता है, का उपयोग किया जाता है। जल निकासी और हवा के आवागमन के लिए तल में छेद किए जाते हैं। बिन को कटे हुए अखबार या कार्डबोर्ड जैसी बिस्तर सामग्री से भर दिया जाता है, और लाल केंचुए (आईसेनिया फेटिडा) डाल दिए जाते हैं। फिर रसोई के स्क्रैप जैसे जैविक कचरे को नियमित रूप से डाला जाता है और केंचुए इसे खाद में बदल देते हैं।

खाई या गड्ढा विधि: इस विधि में खाई या गड्ढा सीधे जमीन में खोदा जाता है। खाई को जैविक कचरे और मिट्टी परतों से बारी–बारी से भरते हैं। मिश्रण में लाल केंचुए मिलाये जाते हैं और खाई को मिट्टी से ढक दिया जाता है। समय के साथ, केंचुए कार्बनिक पदार्थ को विघटित कर देते हैं।

विंड्रो विधि: यह विधि बड़े पैमाने पर वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए उपयुक्त है। इसमें बिस्तर सामग्री के साथ मिश्रित जैविक कचरे के लंबे ढेर या विंड्रो बनाना शामिल है। लाल केंचुओ को विंडरोज में लाया जाता है, और वे सामग्री के माध्यम से आगे बढ़ते हैं, इसे खाद में तोड़ देते हैं। खाद सामग्री को हवा देने और समान रूप से अपघटन सुनिश्चित करने के लिए ढेर को नियमित रूप से पलटने की आवश्यकता होती है।

फ्लो प्रणाली: इसे सतत् प्रवाह प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है, ये सेटअप केंचुओं को हटाए बिना जैविक कचरे को निरंतर डालने और खाद को हटाने की अनुमति देते हैं। केंचुए ट्रे या छिद्रित तली वाले डिब्बों में रखे जाते हैं। जैविक कचरा शीर्ष ट्रे में डाला जाता है, और जैसे ही यह विघटित होता है, केंचुए खाद को पीछे छोड़ते हुए ऊपर की ओर चले जाते हैं। निचली ट्रे तैयार खाद को इकट्ठा करती है, जिसे समय–समय पर निकाला जा सकता है।

इनडोर वर्मीकम्पोस्टिंग: अपार्टमेंट या सीमित बाहरी स्थान वाले क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए, इनडोर वर्मीकम्पोस्टिंग डिब्बे का उपयोग किया जा सकता है। ये डिब्बे आम तौर पर आकार में छोटे होते हैं और सिंक के नीचे या कोठरियों में फिट करने के लिए डिजाइन किए जाते हैं। डिब्बे में कटे हुए कागज या कार्डबोर्ड और रसोई के स्क्रैप के साथ केंचुए भी डाले जाते हैं। गंध को रोकने के लिए इनडोर वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए उचित वेंटिलेशन और नमी नियंत्रण आवश्यक है।

तालिका 1: वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए अनुकूलतम परिस्थितियाँ

स्थिति	इष्टतम सीमा	महत्व
तापमान		18–27° सेल्सियसइस सीमा के भीतर केंचुओं की गतिविधि बढ़ जाती है
नमी की मात्रा	60–80 प्रतिशत	केंचुओं के स्वास्थ्य और अपघटन के लिए आवश्यक है
पीएच स्तर	6.0–8.0	केंचुएं थोड़े अम्लीय से तटस्थ परिस्थितियों में पनपते हैं
कार्बनः नाइट्रोजन अनुपात	20:1 से 30:1	केंचुओं और सूक्ष्मजीवों के लिए संतुलित पोषण प्रदान करता है
वतन	पर्याप्त वायु प्रवाह और वेंटिलेशन	अवायुवीय स्थितियों को रोकता है और अपघटन को बढ़ावा देता है
बेडिंग सामग्री	कटा हुआ कागज, कार्डबोर्ड, पत्तियां, पुआल संरचना, मवेशियों का गोबर	नमी बनाए रखने और सूक्ष्मजीवों को आवास प्रदान करता है
जैविक अपशिष्ट	फल और सब्जियों के टुकड़े, चाय की पत्तियाँ	केंचुओं और सूक्ष्मजीवी गतिविधि के लिए पोषक तत्व प्रदान करती है
वातावरण	हल्का अंधेरा	केंचुएं अंधेरा पसंद करते हैं और प्रकाश के संपर्क से बचेंगे
जगह	केंचुओं की गतिविधि के लिए पर्याप्त जगह	खाद बनाने की प्रक्रिया के लिए अनुकूलतम स्थितियाँ सुनिश्चित करती है

इनमें से प्रत्येक विधि के अपने फायदे हैं और यह संचालन के विभिन्न पैमानों और उपलब्ध स्थान के अनुसार उपयुक्त होती है। सफल वर्मीकम्पोस्टिंग की कुंजी खाद सामग्री में नमी, वातन, तापमान और कार्बनःनाइट्रोजन अनुपात का सही संतुलन बनाए रखने के साथ–साथ केंचुओं को पनपने के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करने में निहित है (तालिका 1)।

निष्कर्ष

वर्मीकम्पोस्टिंग अपशिष्ट प्रबंधन और मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए एक टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल दृष्टिकोण के रूप में सामने आता है। जैविक कचरे को मूल्यवान खाद में बदलने के लिए केंचुओं की शक्ति का उपयोग करके, हम स्थायी कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देते हुए गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान कर सकते हैं। जैसे–जैसे हम अधिक टिकाऊ भविष्य की दिशा में प्रयास कर रहे हैं, वर्मीकम्पोस्टिंग को व्यापक रूप से अपनाने से स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र बनाने, अपशिष्ट को कम करने और लचीली कृषि प्रणालियों को बढ़ावा देने की अपार संभावनाएं हैं। हमारे अपशिष्ट प्रबंधन और कृषि रणनीतियों के एक हिस्से के रूप में वर्मीकंपोस्टिंग को अपनाना न केवल पर्यावरण के लिए फायदेमंद है, बल्कि एक अधिक टिकाऊ और समृद्ध समाज के निर्माण के लिए भी आवश्यक है।

समाप्त

15

नंद किशोर जाट[1], विपिन चौधरी[1], राम लाल चौधरी[2*], छीतर मल ओला[1] एवं महेश कुमार गौड़[1]
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर–342003 (राजस्थान)
[2]भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर–321303 (राजस्थान)
*E-mail: rl.choudhary@icar.gov.in

शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ फसलोत्पादन के लिए शून्य लागत तकनीकियाँ

शुष्क क्षेत्रों में खेती का एक परिदृश्य

शुष्क क्षेत्रों में कृषि हमेशा से एक चुनौती रही है। यहाँ पर मौसम की अनिश्चितता, सीमित जल संसाधन और मिट्टी की कम उर्वरता के कारण किसानों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के बावजूद, किसानों को अपनी आजीविका के लिए नवाचार और संसाधनपूर्ण तरीकों की आवश्यकता होती है। शून्य लागत तकनीकियाँ वे सामान्य कृषि क्रियाए हैं जो बिना किसी अतिरिक्त वित्तीय निवेश के कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद करती है। इन तकनीकों का उपयोग करके, किसान न केवल अपनी फसल की पैदावार में वृद्धि कर सकते हैं, बल्कि मिट्टी की उर्वरता को भी बनाए रख सकते हैं और पर्यावरण को होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं। शुष्क क्षेत्रों में प्रतिकूल जलवायुवीय दशाओं व किसानों की कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण इन तकनीकों का महत्व और भी बढ़ जाता है शून्य लागत तकनीकियाँ शुष्क क्षेत्रों के किसानों के लिए एक वरदान साबित हो सकती हैं।

शून्य लागत तकनीकियाँ

शून्य–लागत तकनीकियाँ वे कृषि क्रियाएं हैं जो बिना किसी अतिरिक्त लागत के उच्च पैदावार प्राप्त करने में मदद करती है, तथा इनकी लागत उत्पादन स्तर के साथ परिवर्तित नहीं होती। ये तकनीकियाँ स्थानीय रूप से अनुकूलनीय होती हैं और खेती की लागत को काफी हद तक कम कर सकती हैं। फसल उत्पादन में शून्य–लागत तकनीकियाँ उन क्रियाओं का उपयोग करने पर केंद्रित होती हैं जो या तो निःशुल्क उपलब्ध होती हैं या प्रतिस्थापित की जा सकती हैं ताकि फसल की पैदावार और स्थिरता में सुधार किया जा सके। ये तकनीकियाँ विशेष रूप से संसाधन–सीमित परिस्थितियों में प्रासंगिक होती हैं और स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री, पारंपरिक ज्ञान, और नवाचारपूर्ण क्रियाओं के उपयोग को सम्मिलित करती हैं। शून्य–लागत तकनीकियों में कृषि के विभिन्न क्रियाकलापों की समयबद्धता, क्रियाओं को करने के तरीके और बिना अतिरिक्त लागत के बेहतर विकल्पों के साथ विभिन्न आदानों का प्रतिस्थापन शामिल है। फसल उत्पादन के लिए विभिन्न शून्य–लागत तकनीकियाँ तालिका 1 में दी गई है।

तालिका 1: शून्य लागत तकनीकियों का वर्गीकरण

समय	विधि	प्रतिस्थापन
जुताई का समय	बुआई की गहराई	फसल चक्रण
बुआई का समय	बुआई की दिशा	मिश्रित खेती
नमी संवेदनशील अवस्थाओ में जल प्रबंधन	फसल ज्यामिति	फसल का चुनाव
क्रांतिक काल में खरपतवार नियंत्रण	उर्वरक प्रतिस्थापन	किस्म का चुनाव
कीटनाशक प्रयोग का समय	–	कीटनाशक चक्रण

जुताई का समय

खेती कि यांत्रिक जुताई

फसलोत्पादन में जुताई एक महत्वपूर्ण कृषि क्रिया है जिसके लिए सटीक समय की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में जहाँ की मिट्टी काफी भिन्न होती है। मिट्टी की संरचना को बनाए रखने के लिए जुताई इष्टतम नमी पर की जानी चाहिए ताकि मिट्टी को सख्त या धूल बनने से बचाया जा सके। ग्रीष्मकालीन जुताई पारंपरिक रूप से कीटों और बीमारियों को नियंत्रित करने में सहायक होती है। गर्मियों में मिट्टी को धूप में खोलने से विभिन्न रोगजनकों के अंडे और निष्क्रिय बीजाणु नष्ट हो जाते हैं। यह प्रथा मिट्टी के स्वास्थ्य को सुधारती है, जिससे फसल की बढत और उपज में वृद्धि होती है और रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करती है, जिससे यह एक प्रभावी शून्य–लागत तकनीक बन जाती है।

बुआई का समय

फसलों की ट्रेक्टर द्वारा पंक्ति बुआई

फसल की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए बुआई का सही समय विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में अत्यंत महत्वपूर्ण है। बुआई का उचित समय फसलों को तापमान और वर्षा जैसी पर्यावरणीय परिस्थितियों का पूरी तरह से दोहन करने का मौका देता है। उदाहरण के लिए, प्रारंभिक मानसून की वर्षा बाजरा और तिल के लिए अनुकूल होती है, जबकि देरी से मानसून की वर्षा ग्वार, मूंग और मोठ के लिए उपयुक्त होती है। सही समय पर बुआई से फसलें पर्यावरणीय कारकों का अधिकतम उपयोग कर पाती है, जिससे कीटों के संक्रमण और उपज में कमी से बचा जा सकता है। इस प्रकार बुआई इष्टतम फसल उत्पादन का एक महत्वपूर्ण शून्य लागत तरीका है। शुष्क क्षेत्रों की विभिन्न फसलों का उचित समय बुआई समय तालिका 2 में दिया गया है।

तालिका 2: शुष्क क्षेत्रों में फसलों की बुआई का उचित समय

खरीफ फसलें	बुआई का इष्टतम समय	रबी फसलें	बुआई का इष्टतम समय
बाजरा	जून के अंत से जुलाई के मध्य तक	सरसों	अक्टूबर की शुरुआत से मध्य नवंबर तक
ज्वार	जून के अंत से जुलाई के मध्य तक	तारामीरा	सितंबर अंत से अक्टूबर की शुरुआत तक
मूंग	जून के अंत से जुलाई के मध्य तक	चना	अक्टूबर के मध्य से नवंबर के शुरुआत तक
मोठ	जून के अंत से जुलाई के मध्य तक	जीरा	नवंबर की शुरुआत से नवंबर के मध्य तक
ग्वार	जून के अंत से जुलाई के मध्य तक	इसबगोल	नवंबर के मध्य से दिसंबर के शुरुआत तक
तिल	जून के अंत से जुलाई के मध्य तक	गेहूँ	अक्टूबर के अंत से नवंबर के मध्य तक
अरंडी	जून के अंत से जुलाई के मध्य तक	जौ	अक्टूबर के अंत से नवंबर के शुरुआत तक

नमी संवेदनशील अवस्थाओं में जल प्रबंधन

शुष्क क्षेत्रों में फसल के कुछ महत्वपूर्ण विकास चरणों के दौरान जल प्रबंधन अति आवश्यक है। प्रत्येक फसल के कुछ चरण जल तनाव के प्रति संवेदनशील होते हैं, जिन्हें महत्वपूर्ण विकास चरण कहा जाता है। इन चरणों के दौरान सिंचाई की अनुपस्थिति से उपज में बड़ी कमी हो सकती है। रणनीतिक जल प्रबंधन, जिसमें सूखे के प्रभाव को कम करने के लिए जीवनदायी सिंचाई शामिल है, फसल की उत्पादकता को बिना अतिरिक्त लागत के बढ़ाता है। इस प्रकार का जल प्रबंधन फसलों को उनके महत्वपूर्ण समय पर नमी प्रदान कर उपज में वृद्धि करता है और इस प्रकार यह एक प्रभावी शून्य लागत तकनीक है। विभिन्न फसलों की नमी संवेदनशील अवस्थाएं तालिका 3 में दी गई हैं।

तालिका 3: विभिन्न फसलों के नमी संवेदनशील अवस्थाए

खरीफ फसलें	नमी संवेदनशील अवस्थाएं	रबी फसलें	नमी संवेदनशील अवस्थाएं
बाजरा	फूल आना, दाना भरना	सरसों	फूल आना, फली भरना
ज्वार	कल्ले निकलना, फूल आना, दाना भरना	तारामीरा	फूल आना, फली भरना
मूंग	फूल आना, फली भरना	चना	फूल आना, फली भरना
मोठ	फूल आना, फली भरना	जीरा	फूल आना, बीज लगना
ग्वार	फूल आना, फली भरना	इसबगोल	क्रांतिक जडो का आरम्भ, बीज भरना
तिल	फूल आना, फली बनना	गेहूँ	क्रांतिक जडो का आरम्भ, फूल आना, दाना भरना
अरंडी	फूल आना, फली बनना	जौ	क्रांतिक जडो का आरम्भ, फूल आना, दाना भरना

क्रांतिक अवधि में खरपतवार नियंत्रण

शुष्क क्षेत्रों में नमी और पोषक तत्वों की कमी के कारण प्रभावी खरपतवार प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। खरपतवार—फसल प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवधि वह अवस्था होती है जब निराई से सबसे अधिक आर्थिक लाभ मिलता है। इस अवधि के दौरान उचित निराई खरपतवार प्रतिस्पर्धा के कारण होने वाले महत्वपूर्ण उपज नुकसान को कम करती है, जिससे यह एक लागत प्रभावी और कुशल शून्य लागत तकनीक साबित होती है। इस अवधि में की गई निराई न केवल फसल की वृद्धि में मदद करती है, बल्कि फसल को आवश्यक पोषक तत्वों का पूरा लाभ मिलने में भी सहायक होती है। विभिन्न फसलों में खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवधि तालिका 4 में दी गई है।

तालिका 4: विभिन्न फसलों में खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवधि

खरीफ फसलें	क्रांतिक अवधि	रबी फसलें	क्रांतिक अवधि
बाजरा	बुआई से 20—45 दिन तक	सरसों	बुआई से 15—45 दिन तक
ज्वार	बुआई से 20—45 दिन तक	तारामीरा	बुआई से 15—45 दिन तक
मूंग	बुआई से 15—35 दिन तक	चना	बुआई से 20—40 दिन तक
मोठ	बुआई से 15—35 दिन तक	जीरा	बुआई से 25—50 दिन तक
ग्वार	बुआई से 20—40 दिन तक	ईसबगोल	बुआई से 20—45 दिन तक
तिल	बुआई से 15—35 दिन तक	गेहूँ	बुआई से 20—40 दिन तक
अरंडी	बुआई से 25—50 दिन तक	जौ	बुआई से 20—40 दिन तक

कीटनाशक प्रयोग का समय

कीटनाशकों का उचित समय पर अनुप्रयोग रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता को कम कर कीट प्रबंधन को बढ़ाता है। कीटनाशकों का उपयोग उचित समय पर, जैसे सुबह जल्दी या देर शाम लगाना लाभकारी कीटों की गतिविधि को कम करता है, जिससे दोहराए गए उपचार की आवश्यकता कम हो जाती है। कीटों के विकास के विशिष्ट चरणों को लक्षित करना कीटनाशकों की प्रभावशीलता को काफी बढ़ाता है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सकता है जो अतिरिक्त लागत को नगण्य रखती है।

बुआई की गहराई

बुआई की गहराई विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में फसल की वृद्धि और उपज को प्रभावित करती है। बीज के आकार, मिट्टी के प्रकार, नमी उपलब्धता और फसल विशेष की आवश्यकताओं के अनुसार बुआई की गहराई को समायोजित करने से बेहतर अंकुरण और वृद्धि सुनिश्चित होती है। छोटे बीज जैसे सोयाबीन को उथली गहराई पर और बड़े बीज जैसे चना को अधिक गहराई पर बोना चाहिए। उचित बुआई की गहराई उपज घटकों को काफी हद तक सुधार सकती है, अतः इस तकनीक को शून्य लागत तकनीक कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

बुआई की दिशा

बुआई की दिशा सूक्ष्म जलवायुवीय कारकों जैसे वाष्पोत्सर्जन, जल उपयोग दक्षता और प्रकाश संश्लेशण को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, खरीफ मौसम के दौरान, उत्तर—दक्षिण दिशा में बोए गए बाजरा में अधिक प्रकाश संश्लेशण के कारण

अधिक उत्पादन होता है। इसके विपरीत, सरसों और गेहूँ जैसी सर्दियों की फसलें पूर्व–पश्चिम दिशा में बुआई से लाभान्वित होती है। बुआई की दिशा प्रकाश उपयोग दक्षता को फसल के प्रति अनुकूलित करती है, जिससे फसल उत्पादन बिना अतिरिक्त लागत के बढ़ता है।

फसल ज्यामिति

उचित फसल ज्यामिति, पौधों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को अनुकूलित करती है। यह सूर्य के प्रकाश, पानी और पोषक तत्वों के कुशल उपयोग को सुनिश्चित करती है, जिससे फसल की वृद्धि और उपज पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। फसल ज्यामिति का सही प्रबंधन न केवल पौधों को बेहतर वातावरण प्रदान करता है, बल्कि रोगों एवं खरपतवारों के प्रसार को भी कम कर फसल की गुणवत्ता में सुधार करता है। विभिन्न फसलों के लिए उपयुक्त फसल ज्यामितियाँ उत्पादकता को अतिरिक्त लागत के बिना बढ़ाती है। विभिन्न फसलों के लिए उपयुक्त फसल ज्यामितियाँ तालिका 5 में दी गई है।

तालिका 5: शुष्क क्षेत्रों की फसलों के लिए अनुशंसित फसल ज्यामिति (पंक्ति ग पौधे का अंतर)

खरीफ फसलें	फसल ज्यामिति (पंक्ति–पौधा)	रबी फसलें	फसल ज्यामिति (पंक्ति–पौधा)
बाजरा	45 गुणा 15 सेंमी.	गेहूँ	2.5 गुणा 5 सेंमी.
मूंग	30 गुणा 10 सेंमी.	जौ	22.5 गुणा 5 सेंमी.
ग्वार	30 गुणा 15 सेंमी.	चना	30 गुणा 7 सेंमी.
मोठ	45 गुणा 10 सेंमी.	सरसों	45 गुणा 10 सेंमी.
चंवला	30 गुणा 15 सेंमी.	तारामीरा	45 गुणा 10 सेंमी.
तिल	45 गुणा 10 सेंमी.	जीरा	30 गुणा 5 सेंमी.
अरंडी	90 ग 60 सेंमी.	ईसबगोल	30 गुणा 5 सेंमी.
कपास	67.5 ग 60 से. मी.	–	–

उर्वरकों का प्रतिस्थापन

उर्वरकों का उचित प्रतिस्थापन सुनिश्चित करता है कि पौधों को आवश्यकता होने पर पोषक तत्वों की उपलब्धता हो, जिससे उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ती है। शुष्क क्षेत्रों में, जड़ क्षेत्र के पास उर्वरक देने से पोषक तत्वों का अवशोषण बढ़ता है और लीचिंग और अपवाह कम होती है। उर्वरकों के उचित प्रतिस्थापन से बिना अतिरिक्त लागत के मिट्टी की दीर्घकालिक उर्वरता बढ़ती है।

फसल चक्रण

विभिन्न प्रकार की फसलों को हेर–फेर कर बोने से मिट्टी में होने वाले रोग, कीट और खरपतवार में कमी आने के साथ–साथ मिट्टी की उर्वरता भी बढ़ती है। शुष्क क्षेत्रों में, बाजरा–मूंग और बाजरा–ग्वार जैसे विशिष्ट फसल–चक्र जल और पोषक तत्व उपयोग दक्षता में सुधार करते हैं। फसल चक्रण का सही प्रबंधन न केवल मिट्टी की सेहत को बेहतर करता है, बल्कि पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति में भी मदद करता है। ये फसल–चक्र बिना अतिरिक्त लागत के निरंतर फसल उत्पादन सुनिश्चित करते हैं, जिससे फसल–चक्र एक प्रभावी शून्य लागत तकनीक पाई गई है।

मिश्रित खेती

मिश्रित खेती एक ही भूमि पर एक ही समय में एक से अधिक फसलें उगाकर संसाधनों का उपयोग बढ़ाकर फसलों की उत्पादकता, मिट्टी के स्वास्थ्य और संसाधन संरक्षण को बढ़ाने के साथ–साथ मिट्टी के कटाव और पोषक तत्वों की हानि को कम करती है। यह तकनीक खरपतवारों, कीटों और रोगों के प्रकोप को कम कर उत्पादकता को बिना अतिरिक्त वित्तीय निवेश के बढ़ाने का एक लागत–प्रभावी तरीका है।

फसलों का चुनाव

कृषि जलवायुवीय स्थितियों, बाजार की मांग और उपलब्ध संसाधनों के आधार पर सही फसलों का चुनाव फसल उत्पादन को बढ़ाता है। शुष्क क्षेत्रों में, किसान अक्सर बाजरा और दालों जैसी सूखा प्रतिरोधी फसलों को चुनते हैं। सरकारी नीतियाँ और

बाजार प्रोत्साहन भी फसल चयन को प्रभावित करते हैं, जो बिना अतिरिक्त आर्थिक बोझ के टिकाऊ फसल उत्पादन में योगदान देते हैं। सही फसलों का चुनाव न केवल पर्यावरण के अनुकूल होता है, बल्कि किसानों की आय भी बढ़ाता है।

किस्म का चुनाव

उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का चयन उत्पादकता को बिना अतिरिक्त लागत के बढ़ाता है। शुष्क क्षेत्रों में जल्दी पकने वाले और रोग प्रतिरोधी किस्में विशेष रूप से लाभकारी होती है, जो उच्च उपज सुनिश्चित करती है और रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता को कम करती है। यह रणनीतिक चयन किस्म के चुनाव को एक महत्वपूर्ण शून्य लागत तकनीक बनाता है। प्रमुख फसलों की शुष्क क्षेत्रों के लिए अनुशंसित उन्नत किस्में तालिका 6 में दी गई हैं।

संकर बाजरा (एम.पी.एम.एच. 17)

ग्वार (आर.जी.सी. 936)

सरसों की उन्नत किस्म (एन.आर.सी.एच.बी.

तालिका 6: राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों के लिए अनुशंसित प्रमुख फसलों की उन्नत किस्में

फसलें	उन्नत किस्में
	खरीफ फसलें
बाजरा	एच.एच.बी. 67 (आई), जी.एच.बी. 538, आर.एच.बी. 121, आई.सी.एम.एच. 356, एम.एच. 169, राज 171, सी.जेड.पी. 9802, एम पी.एम.एच. 17, एम.पी.एम.एच. 21
मोठ	आर.एम.ओ. 40, आर.एम.ओ. 225, आर.एम.ओ. 257, आर.एम.ओ. 435, काजरी मोठ 4, काजरी मोठ 5
मूंग	आर.एम.जी. 268, आर.एम.जी. 344, एस.एम.एल. 668, जी.एम. 4, आई.पी.एम. 2–3, आई.पी.एम. 205–7, एम.एच. 421
ग्वार	आर.जी.सी. 936, आर.जी.एम. 112, आर.जी.सी. 1002, आर.जी.सी. 1003, आर.जी.सी. 1017
तिल	आर.टी. 46, आर.टी. 125, आर.टी. 127, आर.टी. 346
अरंडी	आर.एच.सी. 1, आर.एच.सी. 4, जी.सी.एच. 5, जी.सी.एच. 7, डी.सी.एस. 9
मूंगफली	एम. 13, एच.एन.जी. 10, जी.जी. 20, टी.जी. 39, टी.एच. 37ए
कपास	आर.जी. 8, बिकानेरी नरमा, गंगानगर अगेती, आर.एस.टी. 9, एम.आर.सी.एच. 6304, एम.आर.सी.एच. 314, एम. आर.सी.एच. 6025, जे.के.सी.एच. 1947, एन.ई.सी.एच. 6, एम.आर.सी. 7017
चारा बाजरा	राज बाजरा चारी 2, जायंट बाजरा, राज 171, जे.बी.वी. 2, जे.बी.वी. 3
चारा ज्वार	एस.एस.जी. 59–3, एम.पी. चरी, सी.एस.एच. 24, राज चरी 1, राज चरी 2,
	रबी फसलें
गेहूँ	राज 3077, खारचिया–65, राज 1482, लोक 1, डब्ल्यू.एच. 147, राज 3765, राज 3777, राज 4083, जी. डब्ल्यू–11
जौ	आर.डी. 2052, आर.डी. 2035, आर.डी. 57, आर.डी. 31, आर.डी. 103, बिलारा 2, आर.डी. 2552
चना	सी 235, आर.एस.जी. 44, आर.एस.जी. 888, जी.एन.जी. 663
सरसों	डी.आर.एम.आर.–150–35, डी.आर.एम.आर.–1165–40, आर.एच.–406, आर.बी.–50, आर.एच.–725, आर.जी.एन.–229, आर.जी.एन.–298, आर.जी.एन.–48, आर.वी.एम.–2, पूसा सरसों–27, पूसा सरसों–25, पूसा सरसों–26, बायो–902, एन.आर.सी.एच.बी.–101, आशीर्वाद
ईसबगोल	आर.आई.–1, जी.आई.–2, आर.आई.–89
जीरा	जी.सी.–4, आर.जेड.– 19, आर.जेड.– 209, आर.जेड.– 223
सोंफ़	आर.एफ.– 101, आर.एफ.– 125, आर.एफ.– 143

कीटनाशक चक्रण

कीटनाशक चक्रण अर्थात एक ही कीट के लिए अलग–अलग समयावधि में अलग–अलग कीटनाशकों का प्रयोग, एकीकृत कीट प्रबंधन का हिस्सा है, जो कीट प्रतिरोध को प्रबंधित करने और फसल स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए एक प्रभावी विकल्प है। यह कीट प्रकोप की संभावना को कम करता है, मिट्टी के प्रदूषण को न्यूनतम करता है और एक टिकाऊ कृषि वातावरण को बढ़ावा देता है, जिससे यह एक प्रभावी शून्य लागत तकनीक मानी जा सकती है।

कपास में कीटनाशी छिड़काव

निष्कर्ष

शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए शून्य लागत तकनीकियाँ किसानों के लिए लाभप्रद साबित हो सकती है। ये तकनीकियाँ न केवल फसल की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक होती है बल्कि मिट्टी के स्वास्थ्य और पर्यावरण संतुलन को भी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समय पर जुताई, बुआई का समय, नमी संवेदनशील अवस्थाओं में जल प्रबंधन एवं खरपतवार नियंत्रण जैसी सामान्यः कृषि क्रियाएँ फसल उत्पादन को बढ़ावा देती है। इसके अलावा, बुआई की गहराई और दिशा, फसल ज्यामिति, उर्वरक का सही प्रतिस्थापन, फसल चक्रण, मिश्रित खेती और सही फसल और किस्म का चुनाव फसल की गुणवत्ता और उत्पादकता को बढ़ाते हैं। कीटनाशक चक्रण जैसी तकनीकें कीट प्रतिरोध को नियंत्रित करती हैं। इन सभी तकनीकों का उपयोग करके, किसान अपनी कृषि को अधिक टिकाऊ और लाभकारी बना सकते हैं, जिससे उनकी आय में वृद्धि होने के साथ ही पर्यावरण संरक्षण को भी बढ़ावा मिलता है।

समाप्त

16

राम लाल चौधरी[1], दिनेश कुमार[2], नंद किशोर जाट[3], विजय पुनिया[2],
हरवीर सिंह[1] एवं रामस्वरूप जाट[1]
[1]भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर–321303 (राजस्थान)
[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012
[3]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर–342003 (राजस्थान)
E-mail: rl.choudhary@icar.gov.in

जैविक खेतीः एक टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल कृषि पद्धति

पिछले कई दशकों के दौरान, कृषि का विकास मुख्य रूप से उत्पादकता और लाभप्रदता में अल्पकालिक लाभ अर्जित करने पर केंद्रित रहा है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल स्थानीय संसाधनों की उपेक्षा हुई बल्कि बाहरी आदानों का भी अनुचित दोहन हुआ। इससे मिट्टी की उर्वरता, स्वास्थ्य और पर्यावरण को गंभीर नुकसान हुआ है। इसके अलावा, पारंपरिक रासायनिक खेती से होने वाली आय या तो घट रही है या स्थिर है। इन परिवर्तनों ने हमें खेती के तरीकों में बदलाव लाने के लिए सोचने को मजबूर किया है। कुछ खास कृषि परिस्थितियों में चयनित फसलों की जैविक खेती एक बेहतरीन विकल्प प्रतित होती है। जैविक खेती में, जैवभौतिक उत्पादन कारक, सामाजिक–आर्थिक और संस्थागत कारकों से घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। यह मिट्टी और पर्यावरण की रक्षा के अलावा कृषि उपज की उत्पादकता और गुणवत्ता को बेहतर बनाने और बनाए रखने में मदद कर सकता है। हालांकि प्रारंभ के कुछ वर्ष जमीन व फसल की उपज को सामान्य करने में लगेंगे, परन्तु किसान भाइयों को भी धीरज से काम लेना होगा। इस बात के पुख्ता सबूत हैं कि उचित तकनीकों को अपनाकर जैविक खेती की उत्पादकता को पारंपरिक खेती के स्तर पर या उससे भी अधिक लाया जा सकता है। जैविक खेती में उच्चत्तम फसल उत्पादकत्ता प्राप्त करने के लिए उचित फसल चक्रों को अपनाना जिसमें दलहनी फसलों का समावेश, विविध पोषक तत्व प्रबंधन तकनीकें, कुशल मृदा और जल प्रबंधन तकनीकें, उचित खरपतवार प्रबंधन और उपलब्ध उपकरणों और तरीकों के माध्यम से कीटों और बीमारियों का प्रभावी नियंत्रण शामिल है।

जैविक खेती की परिभाषा

जैविक खेती का अर्थ है विज्ञान द्वारा खोजे गए प्रकृति के रहस्यों व वरदानों का कृषि क्षेत्र में उपयोग कर उत्पादन को उचित स्तर पर स्थायित्व प्रदान करना। इसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग नहीं किया जाता है। जैविक खेती का सम्पूर्ण प्रबंधन पर्यावरण–हितकारी तकनीकियों द्वारा किया जाता है। यह वास्तव में गैर–कृषि आदानों के न्यूनतम उपयोग और प्रबंधन तकनीकियों पर आधारित है जो पारिस्थितिकी सद्भाव को बहाल, बनाए रखते और बढ़ाते हैं। वास्तविक जैविक खेती वही है जो कि हमारी मिट्टी और जलवायु के अनुसार हो और हमारे पास उपलब्ध संसाधनों द्वारा की जा सके तथा जिसमें सभी आदानों का सदुपयोग हो ताकि वे दीर्घकालीन समय तक उपलब्ध हो सकें।

जैविक खेती में पौषक तत्व प्रबंधन

जैविक खेती में फसल में पोषक तत्वों के प्रबंधन में जैविक पदार्थों का ही उपयोग किया जाता है जैसे कि गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट, फसल अवशेषों से तैयार कम्पोस्ट खाद, हरी खाद, रॉक फॉस्फेट, जैविक खाद / जैव–उर्वरक तथा पोषक तत्वों के अन्य संरूपण जिनका स्रोत जैविक हो इत्यादि। इसके अलावा नियोजित फसल चक्र जिसके अंतर्गत अंतःफसल या सहफसल के रूप में दलहनी फसलों का समावेश एवं पलवार इत्यादि पद्धतियों को आमतौर पर जैविक खेती में पोषक तत्व प्रबंधन के लिए प्रयोग में लाया जाता है। हरी खाद के लिए दलहनी फसलों का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे वातावरण में मौजूद नाईट्रोजन का स्थिरीकरण होने से मृदा नाईट्रोजन के मामले में आत्मनिर्भर बनी रहे। जैविक खादों के उपयोग से मृदा में कार्बनिक तत्वों की वृद्धि होती है जिससे मृदा में जीवांश बढ़ता है। रासायनिक उर्वरकों की तुलना में जैविक खादें सस्ती, सुलभ और खेती को टिकाऊ बनाने में सहायक होती हैं। इससे मृदा में ह्यूमस बढ़ती है और मृदा की भौतिक दशा में

तालिका 1. जैव–उर्वरक एवं विभिन्न फसलों में उनके प्रयोग करने की विधियाँ

जैव–उर्वरक	उपयुक्त फसलें	संस्तुत प्रयोग विधि	आवश्यक मात्रा
राइजोबियम	सभी दलहनी फसलें	बीजोपचार	200 ग्राम/10–15 कि॰ग्रा॰ बीज
एजोटोबैक्टर	दलहनी फसलों के अलावा अन्य सभी फसलें	बीज, जड़ एवं मृदा उपचार	200 ग्राम/10–15 कि॰ग्रा॰ बीज, मृदा उपचार के लिए 5 कि॰ग्रा॰/ हैक्टर
एजोस्पिरिलम	दलहनी फसलों के अलावा अन्य सभी फसलें, गन्ने के लिए विशेष उपयोगी	बीज, जड़ एवं मृदा उपचार	200 ग्राम/10–15 कि॰ग्रा॰ बीज, मृदा उपचार के लिए 5 कि॰ग्रा॰/ हैक्टर
फॉस्फोजीवाणु	सभी फसलों के लिए	बीज, जड़ एवं मृदा उपचार	200 ग्राम/10–15 कि॰ग्रा॰ बीज, मृदा उपचार के लिए 5 कि॰ग्रा॰/ हैक्टर
नीलहरित शैवाल	धान के खेत का वातावरण नील हरित शैवाल के लिये सर्वथा उपयुक्त होता है	एक कोशिकीय सूक्ष्म नील हरित शैवाल नम मिट्टी तथा स्थिर पानी में स्वतन्त्र रूप से रहते हैं	इसकी वृद्धि के लिये आवश्यक ताप, प्रकाश, नमी और पोषक तत्वों की मात्रा धान के खेत में विद्यमान रहती है

सुधार होता है। इन सब स्रोतों को समेकित रूप से उपयोग में लाने पर न केवल मुख्य पोषक तत्वों की बल्कि गौण एवं अन्य सूक्ष्म तत्वों की भी फसल को आपूर्ति होने के साथ मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में सुधार होता है और मृदा उर्वरता भी स्थिर बनी रहती है। जैविक खाद से पौधों में वृद्धिकारक हार्मोन उत्पन्न होते हैं जिनसे उनकी बढ़वार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा फसलों की पैदावार में वृद्धि होती है। जैव–उर्वरकों के प्रयोग से नत्रजन व घुलनशील फॉस्फोरस की फसल के लिए उपलब्धता बढ़ती है। नत्रजनी जैव–उर्वरकों के प्रयोग से 30 से 40 कि॰ग्रा॰ नत्रजन प्रति हैक्टर भूमि को प्राप्त हो जाती है तथा उपज 10 से 20 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। फॉस्फोजीवाणु और माइकोराइजा नामक जैव–उवर्रकों के प्रयोग से खेत में फॉस्फोरस की उपलब्धता में 20 से 30 प्रतिशत की बढ़ोतरी होती है। विभिन्न जैव–उर्वरकों का उल्लेख तालिका 1 में दिया गया है।

जैविक खेती में कीट, रोग एवं खरपतवार प्रबंधन

फसल चक्र, फसल विविधीकरण और जैविक नियंत्रण को अपनाना अक्सर जैविक खेती में कीटों और बीमारियों के प्रबंधन के लिए एक कारगर रणनीति के रूप में माना जाता है। कीट, रोग और खरपतवार भी खेती से बनने वाली खाद्य श्रृंखला के सदस्य हैं किन्तु आजकल हम ये मानते हैं कि खेत में बीज बौने से लेकर उसकी उपज तक का अधिकार हमारा है और जो भी इस प्रक्रिया में हिस्सा माँगता है वह खेती का दुश्मन है। हमारी परंपरागत खेती (हरित क्रांति से पहले वाली खेती) में इन हिस्सेदारों को इस प्रकार हटाया जाता था कि साँप भी मर जाये, और लाठी भी न टूटे। अर्थात् इस प्रकार का प्रबंध किया जाये कि ये रोग, खरपतवार एवं कीट या तो कम पैदा हों और यदि हों भी तो इनका नियंत्रण ऐसे किया जाए ताकि खेती के तंत्र, पर्यावरण और हमारे ऊपर कोई बुरा प्रभाव न पड़े। उदाहरण के लिए कीटों, बीमारियों एवं खरपतवारों का नियंत्रण काफी हद तक फसल चक्र, खेत में विविधता बनाये रखना, परती छोड़ना, कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं, प्रतिरोधक जातियों एवं जैव–उत्पादों द्वारा ही हो सकता है।

रासायनिक खेती में कीट, रोग एवं खरपतवार का उचित प्रबंध करने की बजाय इन्हें नष्ट करने हेतु ज़हरीले कीटनाशकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग हो रहा है जिससे ये कीड़े कभी–कभी तो मरते हैं और कभी नहीं। किन्तु इससे ज्यादा जहर हम सब के शरीर में जा रहा है। किसान के शरीर में तो और भी अधिक मात्रा में जाता है क्योंकि वह कीटनाशकों का छिड़काव भी करता है। कीटनाशकों की बढ़ती माँग के कारण बाजार में नकली कीटनाशकों की भरमार हो गयी है जिससे कीट व रोग भी नियंत्रित नहीं होते हैं और किसान का पैसा भी बर्बाद होता है इससे किसान आर्थिक दबाव में आ जाता है। देश में प्रति वर्ष बहुत से किसान जो कि नकदी फसलों जैसे कपास, गन्ना, आलू, सब्जियाँ आदि की खेती करते हैं, वो इन्हीं आर्थिक दबावों के चलते आत्महत्या तक कर लेते हैं। कीटनाशकों के हानिकारक परिणामों का एक और उदाहरण हमारी आँखें खोल देने वाला है। केरल और कर्नाटक राज्यों के काजू बागानों में पहले इंडोसल्फान नामक कीटनाशक का छिड़काव किया जाता था

जो कि अब राज्य सरकारों द्वारा बंद करवा दिया गया है। इस कीटनाशी का परिणाम यह होता था कि इस जहरीली दवा के प्रभाव से आस–पास के प्रभावित गाँवों में मंद–बुद्धि और विकलांग बच्चे पैदा होने लगे। आज यह सत्य सामने आ रहा है कि खेती के नाम पर हम हवा, पानी और स्वयं के अंदर जहर का छिड़काव कर रहे हैं। अतः हमें समय रहते इससे सचेत होने की आवश्यकता है और स्वस्थ खेती की ओर बढ़ने की जरूरत है जिससे कीटों, रोगों व खरपतवारों का प्रबन्धन पर्यावरण हितकारी विधियों से किया जा सके।

1. खरपतवार प्रबंधन

बोई हुई फसल के अलावा खेत में जो अन्य पौधे उग आते हैं उन्हें खरपतवार कहा जाता है। खरपतवार मुख्य फसल के साथ पानी, पोषक तत्वों, हवा और प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। वे विभिन्न कीटों और रोग पैदा करने वाले सूक्ष्मजीवों के लिए वैकल्पिक स्रोत भी होते हैं। इसलिए, जैविक खेती में मिट्टी की उर्वरता और मिट्टी की उत्पादकता बनाए रखने के लिए खरपतवार नियंत्रण बहुत आवश्यक है। जैविक खेती में रासायनिक शाकनाशियों के प्रयोग की अनुमति नहीं है।

यदि किसान को इनके आने के मुख्य स्रोत मालूम पड़ जाये तो वहीं से इनका नियंत्रण किया जा सकता है। फसल के साथ खरपतवार कम उगे, इसके लिए खरपतवारों को उनके बीज बनने से पहले ही निराई–गुड़ाई द्वारा निकाल देना चाहिए। हरी खादों का प्रयोग करें। हरी खाद जैसे ढ़ैंचा, सनई आदि के साथ कई खरपतवार उग आते हैं किन्तु हरी खाद के तेजी से बढ़ने से ये खरपतवार नष्ट हो जाते हैं या हरी खाद के साथ मिट्टी मे मिल जाते हैं। खेत की समय–समय पर निराई–गुड़ाई करने से न केवल खरपतवारों को निकाला जा सकता है बल्कि भूमि में हवा पानी का संचार भी बढ़ाया जा सकता है जिससे फसल की पैदावार अच्छी होती है। फसल की कतारों के बीच फसल व खरपतवार के अवशेष बिछाने से खरपतवारों की वृद्धि रुक जाती है। विभिन्न खरपतवारों पर परजीवी बनने वाले अनेक कवकीय और जीवाणुजनित रोगाणुओं का उपयोग, जो फसल को कोई नुकसान नहीं पहुंचाते हैं, का प्रयोग खरपतवार नियंत्रण के लिए किया जा सकता है।

2. रोग प्रबंधन

रोग के जीवाणु/विषाणु सदैव पर्यावरण में रहते हैं और अनुकूलता पाते ही पौधों पर हमला कर सकते हैं। जीवाणुओं/विषाणुओं के लिए वातावरण अनुकूल न बने और उनके पनपने की दशाओं को समाप्त कर दिया जाए तो फसल रोगों को समूल नष्ट किया जा सकता है। फसलों में रोग प्रसारण के मुख्य कारण, पौधों व भूमि में जल की मात्रा का अधिक होना, पौधों व भूमि में पोषक तत्वों का असंतुलन, पौधों में धारक प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास, रोग मूलक जीवाणु/विषाणु के अनुकूल असंतुलित सहायक कृषि क्रियाएं अपनाना इत्यादि। फसलों में रोगों के प्रसारण को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए।

पौधों व भूमि में जल की मात्रा को संतुलित करनाः जरूरत से ज्यादा सिंचाई करने से पौधों व भूमि में जल की मात्रा अधिक हो जाती है। इसके अलावा रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से भी पौधों में जल की मात्रा बढ़ जाती है और पादप कोशिकाओं की दीवार कमज़ोर होने से रोगाणु–जीवाणुओं के हमले से उनके क्षतिग्रस्त होने की संभावना बढ़ जाती है। पौधों व मिट्टी में जल संतुलन हेतु जैविक खाद का ही प्रयोग करना चाहिए और जरूरत से ज्यादा सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

पौधों व भूमि में पोषक तत्वों का संतुलन बनानाः पौधों व भूमि में पोषक तत्वों का असंतुलन होने का मुख्य कारण भी रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग ही है क्योंकि सामान्यतया किसी भी उर्वरक में तीन से ज्यादा पोषक तत्व नहीं होते जिससे भूमि व पौधों में पोषक तत्वों का अनुपात बिगड़ जाता है। अतः हमेशा जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि जैविक खाद में लगभग सभी पोषक तत्वों जैसे मुख्य, गौण तथा सूक्ष्म तत्वों का समावेश होता है।

पौधों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ानाः पूर्व में उल्लेखित कारणों से या कभी–कभी किसी विशेष प्रजाति की फसल में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है। इसके लिए सदैव स्थानिय या देशी प्रजातियों का चयन करना चाहिए। स्थानीय प्रजातियों में उस क्षेत्र विशेष में होने वाले रोगों के लिए प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है। जैविक खाद में मौजूद कई जैव–रसायन भी पौधों की रोगों से लड़ने की ताकत को बढ़ाते हैं। जीवाणु खाद जैसे एजोटोबैक्टर, नील हरित शैवाल, फॉस्फोरस घालक जीवाणु (पीएसबी) आदि भी रोग प्रतिरोधक क्षमताओं को बढाते हैं। अतः जैविक व जीवाणु खाद का प्रयोग करना चाहिए।

फसल रोगों के विषाणु/जीवाणु का जीवन–चक्र पूरा करने वाली सहायक कृषि क्रियाओं को नियंत्रित करना: कई कृषि कार्य रोगकारक जीवाणुओं के जीवन चक्र को पूरा करने में सहायक होते हैं जिससे रोगों का प्रकोप हर वर्ष बढ़ता जाता है। इसका सबसे अहम कारक है रोगयुक्त बीज की बुआई, जिसके कारण फफूँद से होने वाली कई बीमारियों के रोगाणु अपना जीवन–चक्र पूरा कर लेते हैं। इसका सबसे अच्छा उपाय है कि फसल पकने से पहले ही रोगग्रस्त पौधों को नष्ट कर दिया जाये और उपयुक्त फसल चक्र अपनाया जाये जिससे इन जीवाणु विषाणुओं का जीवन–चक्र पूरा न हो सके। कई बार अधिक समय तक बादल छाये रहने से फफूँद (रोग) लगने की संभावना बढ़ जाती है तब बचाव के लिए रोग लगने से पहले नीम की खली और गौ मूत्र का छिड़काव कर देना चाहिए।

3. कीट प्रबंधन

फसल में कीट प्रकोप के भी वही कारक होते हैं जो रोगों के लिए होते हैं अर्थात पौधों व भूमि में जल की अधिकता, पोषक तत्वों का असंतुलन, पौधों की कीट प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास तथा बार–बार एक ही फसल लेना आदि प्रमुख हैं। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग, एक ही फसल लगातार बोना, फसल में कीटों के प्रकोप को बढ़ावा देने वाले के मुख्य कारण हैं। इसके अलावा कीटों के नियंत्रण में जो रासायनिक कीटनाशक काम में लिए जाते हैं उनके कुल छिड़काव का मात्र 5 से 10 प्रतिशत ही इन्हें मारने के काम में आता है और शेष 90 से 95 प्रतिशत पौधों और पर्यावरण में रह जाता है जो कि बाद में मनुष्यों और उपयोगी पशुधन को नुकसान पहुँचाता है। जैविक खेती में कीटों पर नियंत्रण के लिए समन्वित प्रयास जरूरी है। अतः निम्नलिखित जैव संक्रियाओं को अपनाने से हानिकारक रसायनों के दुष्प्रभाव से भी बच सकते हैं और कीटों पर भी नियंत्रण रखा जा सकता है।

सस्य तकनीकियाँ/फसल प्रबंधन: खेतों की निराई–गुड़ाई अच्छी तरह से करने से मिट्टी में छुपे हुये कीटों के अंडे, डिंभक आदि धूप की गर्मी से नष्ट हो जाते हैं। मिश्रित फसल उगाने से भी कीटों का प्रकोप कम हो जाता है। पौधों को रोपते समय उनके बीच उचित दूरी का ध्यान रखना चाहिए, इससे कीटों का प्रसार एक पौधे से दूसरे पौधे तक आसानी से नहीं हो पाता है। कीटों से प्रभावित पौधों को उखाड़कर जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। पौधों के बीच मिट्टी को खरपतवार से ढ़क देने से मिट्टी में नमी बनी रहती है और कीटों का प्रभाव भी कम होता है। भंडारण से पहले अनाज को धूप में सुखाने से उसमें छुपे हुये कीट और उनके अंडे सूर्य की गर्मी से नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि पूर्व में बताया गया है यदि पौधों में जल व पोषक तत्वों का संतुलन रखा जाये तो पौधों की रोग व कीट प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। इसके लिए जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए तथा हमेशा बहुवर्षीय फसल चक्र अपनाना चाहिए ताकि कोई कीट अपने जीवन चक्र को लगातार बनाये न रख सके। कई तरह की फ़सलें जिन्हें यदि मुख्य फसलों के बीच में बोया जाए या मेड़ पर लगाया जाये तो ये फ़सलें मुख्य फ़सलों के कीटों को आगे बढ़ने से रोकती है या उन्हें स्वयं की तरफ आकर्षित करती है, ताकि मुख्य फसल को नुकसान न हो (तालिका 2)। कुछ फसलें ऐसी भी होती हैं जो मुख्य फसल के हानिकारक कीटों को नष्ट करने वाले मित्र कीटों को शरण देती है। जैसे कि कपास की फसल के चारों और मक्का की फसल लगाने से इस प्रकार का लाभ मिलता है। अतः फसल विविधता बनाये रखकर नुक़सानदेह कीटों का प्रकोप कम किया जा सकता है।

तालिका 2. ट्रैप फसलों के सफल उदाहरणों की सूची

मुख्य फसल	ट्रैप फसल	नियंत्रित कीट
तम्बाकू/कपास/मूंगफली	अरंडी	तम्बाकू इल्ली (कैटरपिलर)
मक्का	ज्वार	प्ररोह मक्खी (शूटफ्लाई), तना छेदक
कपास	प्याज/लहसुन	थ्रिप्स

वानस्पतिक कीटनाशकों का प्रयोग: पौधों से प्राप्त वानस्पतिक कीटनाशकों जैसे कि नीम, आक, धतूरा, लहसुन, करंज आदि के अर्क या तेल में ऐसे गुण होते हैं जो हानिकारक कीटों को जीवन चक्र पूरा नहीं करने देते। इन वानस्पतिक कीटनाशकों का अच्छा पक्ष यह है कि इनका मानव व अन्य लाभकारी कीटों पर असर नगण्य होता है। अतः ये पूर्णत सुरक्षित हैं। वानस्पतिक कीटनाशकों को ताजा रहते ही प्रयोग करना चाहिए, जैसे कि नीम की निंबोली को कूट कर रात भर पानी में रखें और सुबह छान कर छिड़काव कर दें तो अधिक असर होता है।

कीट नियंत्रण में नीम का प्रयोग

- 500 ग्राम नीम के बीज (निंबोली) की गिरि + 10 लीटर पानी में रातभर के लिए भिगो दें, सुबह छान लें। इस घोल में 10 ग्राम साबुन मिला लें और फसल पर इसका छिड़काव कर दें।
- 2 कि॰ग्रा॰ हरी नीम पत्ती + 10 लीटर पानी में रातभर के लिए भिगो दें, सुबह छान लें। इस घोल में 10 ग्राम साबुन मिला लें और फसल पर इसका छिड़काव कर दें।
- 1 कि॰ग्रा॰ हरी नीम पत्ती + 10 लीटर गौ मूत्र (24 घंटे पुराना) रातभर के लिए मिला कर रख दें, सुबह छान लें और फसल पर इसका छिड़काव कर दें।

भौतिक/यांत्रिक नियंत्रणः अधिकांश कीट प्रकाश की तरफ आकर्षित होते हैं अतः रात को खेत में बल्ब या लालटेन लगा कर इन कीटों को इकट्ठा किया जा सकता है। इसी प्रकार कई कीट जैसे माहु, तेला आदि पीले रंग की और आकर्षित होते हैं। अतः खेत में पीली व चिपचिपी पट्टियाँ लगा कर इन्हें पकड़ा जा सकता है।

निष्कर्ष

जैविक खेती फसल एवं मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करने और पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में मदद करती है। जैविक खेती से न केवल उपभोक्ताओं के लिए गुणवत्तायुक्त सुरक्षित खाद्य पदार्थों का उत्पादन होता है, बल्कि यह जैव विविधता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुई है। रासायनिक खेती द्वारा उत्पादित खाद्य पदार्थों की तुलना में जैविक रूप से उत्पादित खाद्य पदार्थ गुणवत्ता के मामले में बेहतर होते हैं। वे स्वाद, सुगंध, आवश्यक पोषक तत्वों आदि में अच्छे होते हैं और साथ ही, वे हानिकारक या जहरीले रसायनों से मुक्त होते हैं। यह जैविक खाद्य पदार्थों के निर्यात की संभावनाओं को उज्ज्वल करती हैं जिसके फलस्वरूप अधिक लाभ भी अर्जित किया जा सकता है।

समाप्त

17

मनीष राज[1], पवन कुमार[1], सुशांत[2], संजय कुमार[2], मैनाक घोष[2] एवं राजेश कुमार[1]
[1]कृषि विज्ञान केंद्र, भागलपुर–813210 (बिहार)
[2]बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर–813210 (बिहार)
E-mail: manishrajagri@gmail.com

सूक्ष्म सिंचाईः वर्तमान कृषि की आवश्यकता

भारत में तेजी से बढ़ती पानी की कमी एक वास्तविकता है और आने वाले वर्षों में इसके और बदतर होने की आशंका है। जल संरक्षण केवल व्यक्तिगत कार्यों का मामला नहीं है, यह एक सामूहिक जिम्मेदारी है जो समुदायों, संस्थानों और राष्ट्रों तक फैली हुई है। शिक्षा, प्रसार कार्यक्रम और वित्तीय प्रोत्साहन के माध्यम से, हम व्यक्तियों, समुदायों और संस्थानों को जल कुशल आदतों और प्रौद्योगिकियों को अपनाने और विकसित करने के लिए सशक्त बना सकते हैं। दूसरी तरफ पानी के बिना कृषि की कामना करना एक असंभव सी बात है, इसलिए फसल की सिचाई के लिए केंद्र और राज्य सरकार सिंचाई की नयी तकनीक (सूक्ष्म सिंचाई) पर जोर दे रही है। सूक्ष्म सिंचाई पद्धतियां जल उपयोग दक्ष होती हैं, जो सिंचाई जल की उपयोगिता में सुधार करती है। इनको बढ़ावा देने के लिए सरकार 80 प्रतिशत तक अनुदान दे रही है।

सूक्ष्म सिंचाई पद्धतियाँ

टपका (बूंद–बूंद) सिंचाई विधि

यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पानी को सीधे पौधों की जड़ों के निकटतम क्षेत्रों में पहुँचाया जाता है। यह तकनीक पानी की बचत करने में मदद करती है, जिससे न केवल पानी की बर्बाद कम होती है, बल्कि वित्तीय लाभ भी होता है। यह सिंचाई वाष्पीकरण उत्सर्जन को कम करने में मदद करती है और पौधों के जड़ क्षेत्रों के आस–पास पानी की बूंदें छोड़ती है। सतही टपक सिंचाई का उपयोग अधिकतर उच्च मूल्य वाली फसलों, सब्जियों, बगीचों में किया जाता है। टपका सिंचाई चावल और जूट की फसल के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि उन्हें पर्याप्त मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। पारंपरिक सिंचाई की तुलना में टपका सिंचाई से केला, नारियल, अंगूर, हल्दी और सेब की उत्पादकता में क्रमशः 4, 15, 16, 22 और 35 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।

टपका सिंचाई प्रणाली के लाभ

- सभी प्रकार की मिट्टी के लिए उपयुक्त होती है।
- सिंचाई दक्षता को 50 से 90 प्रतिशत तक बढ़ा सकते हैं।
- फल की गुणवत्ता में सुधार होता है।
- फसल की उत्पादकता में 40–60 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।
- मिट्टी का कटाव कम होता है, जड़ संकुचन का जोखिम कम होता है और पानी की खपत कम होती है।
- खेत में खरपतवार कम होते हैं, जिससे श्रम की आवश्यकता भी कम होती है।
- टपका सिंचाई से जड़ क्षेत्र में नमक एकत्र होने की संभावना भी कम हो जाती है।
- टपका सिंचाई पद्धति में पानी केवल पौधों की जड़ों तक पहुंचता है, जिससे कीटनाशकों की ज़रूरत काफी कम हो जाती है

- .टपका सिंचाई से उर्वरकों की भी बचत होती है।

टपका सिंचाई प्रणाली की कमियाँ

- अत्यधिक प्रारंभिक निवेश की जरूरत होती है।
- लगाने के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है।
- ड्रिप सिंचाई में ड्रिपर्स के छिद्रों का बंद होना एक महत्वपूर्ण समस्या है।
- ड्रिप सिंचाई प्रणाली का प्रबंधन करना बहुत मुश्किल है। इसमें हर समय निगरानी और सफ़ाई की ज़रूरत होती है।
- पानी में मौजूद मिट्टी के कण, कचरा, शैवाल (काई) आदि से ड्रिपर्स के छिद्र बंद हो सकते हैं।

फव्वारा सिंचाई विधि

सिंचाई की इस विधि में जल पाइप लाइन के माध्यम से छिड़काव स्थल पर ले जाया जाता है। जहाँ पर फुहार के माध्यम से वर्षा की बूंदों की तरह जल फसल पर छिड़का जाता है। इस विधि को ओवर हैड सिंचाई प्रणाली भी कहते हैं। सतही सिंचाई की तुलना में इस विधि द्वारा 25 से 50 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है। सिंचाई दक्षता को 50 से 70 प्रतिशत तक बढ़ाने के साथ–साथ फसल की उत्पादकता में भी वृद्धि होती है। इस विधि द्वारा कम सिंचाई योग्य जल से अधिक क्षेत्र की सिंचाई करना सम्भव है।

फव्वारा सिंचाई विधि के लाभ

- फव्वारा सिंचाई बलुई मिट्टी एवं बुन्देलखण्ड जैसे क्षेत्रों के लिए उपयुक्त विधि है, साथ ही यह अधिक ढाल वाली तथा ऊंची–नीची जगहों के लिए भी सर्वोत्तम विधि है, जिन जगहों पर सतही विधि से सिंचाई नहीं की जा सकती है।
- इस विधि में सिंचाई के पानी के साथ घुलनशील उर्वरक, कीटनाशी तथा जीवनाशी या खरपतवारनाशी दवाओं का भी प्रयोग आसानी से किया जा सकता है।
- पानी की कमी, सीमित पानी की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में दोगुना से तीन गुना क्षेत्रफल में सतही सिंचाई की तुलना में सिंचाई की जा सकती है।
- जिन जगहों पर भूमि ऊंची–नीची रहती है वहाँ पर सतही सिंचाई संभव नहीं हो पाती, उन जगहों पर फव्वारा सिंचाई वरदान साबित होती है।
- लगभग सभी प्रकार की फसलों जैसे गेहूँ, चना, दालें और सब्जियाँ और कपास, सोयाबीन, चाय, कॉफी आदि के लिये उपयुक्त होती है।

फव्वारा सिंचाई विधि की कमियाँ

- अत्यधिक प्रारंभिक निवेश की जरूरत होती है।
- लगाने के लिए कुशल श्रमिक की आवश्यकता होती है।
- खारे पानी का स्प्रिंकलर सिंचाई द्वारा उपयोग करने से समस्याएं उत्पन्न हो सकती है।
- इस पद्धति को चलाने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है।
- अधिक हवा होने पर पानी का वितरण समान नहीं हो पाता है।
- चिकनी मिट्टी और गर्म हवा वाले क्षेत्रों में इस पद्धति के द्वारा सिंचाई नहीं की जा सकती है।

केन्द्र और राज्य सरकार की पहल

माइक्रो सिंचाई को प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारें कृषकों को संयंत्र लगाने के लिए अनुदान दे रही है। केन्द्र सरकार प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत छोटे और सीमांत किसानों के लिए 55 प्रतिशत और अन्य किसानों के लिए 45 प्रतिशत वित्तीय सहायता प्रदान करती है। राज्य सरकार जैसे बिहार सरकार माइक्रो सिंचाई योजना के अंतर्गत टपका,

फव्वारा और रेन गन प्रणाली लगवाने पर किसानों को 80 प्रतिशत तक अनुदान देती है। केन्द्र एवं राज्य सरकार के सतत् प्रयास से देश में सूक्ष्म सिंचाई क्षेत्र 12.90 मिलियन हैक्टर हो गया है जो कि कुल सिंचित क्षेत्र का 19.8 प्रतिशत है।

निष्कर्ष

जल संरक्षण एक गंभीर मुद्दा है जो भारत में अधिकतर क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण है। इस समस्या का समाधान केवल व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं, बल्कि समुदायों, संस्थानों और सरकारों के साथ मिलकर किया जाना चाहिए। नई तकनीकों और सिंचाई प्रणालियों के प्रयोग से हम सभी जल की बचत में मदद कर सकते हैं। सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ इसका अच्छा उदाहरण है जो पानी की बचत में सहायक होती हैं और कृषि क्षेत्र को बेहतर उत्पादकता प्रदान करती हैं। सरकारें इन प्रणालियों को प्रोत्साहित करने के लिए समय–समय पर वित्तीय सहायता देती रहती है ताकि अधिक से अधिक किसान इन तकनीकों का उपयोग कर सके। इन सिंचाई प्रणालियों को प्रयोग करके 25–50 प्रतिशत पानी की बचत के साथ 40–60 प्रतिशत तक ज्यादा उपज ले सकते हैं।

समाप्त

18

दीपा सामंत[1], कुंदन किशोर[1], गोबिंद चंद्र आचार्य[1], सत्य प्रिय सिंह[1],
कनुप्रिया चतुर्वेदी[2] एवं प्रीति सिंह[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु–560089 (कर्नाटक)
केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, भुवनेश्वर–751019 (ओडिशा)
[2]भाकृअनुप–भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु–560089 (कर्नाटक)
E-mail: hortideepa@gmail.com

इमली की उन्नत बागवानीः किसानो की आय बढ़ाने के लिए आवश्यक

इमली जिसका वानस्पतिक नाम टेमेरिंडस इंडिका है, फैबेसी परिवार का एक फलदार वृक्ष है। इस सदाबहार वृक्ष की उत्पत्ति पूर्वी अफ्रीका में हुई थी। वर्तमान में, इसकी बागवानी विश्व के उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय जलवायु वाले देशों, जैसे मिश्र, सूडान, ताइवान, मलेशिया, थाईलैंड, म्यांमार, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, मेक्सिको तथा भारत में की जा रही है। विविध मृदा एवं जलवायु वाले हमारे देश में पाला पड़ने वाले शीतोष्ण क्षेत्रों को छोड़कर सर्वत्र मिलता है, मुख्य रूप से तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओडिशा, बिहार तथा उत्तर प्रदेश। इसे कई नामों से जाना जाता है, जैसे गुजराती में आम्बली, बांग्ला में तेतुल, ओडिआ में तेंतुली, मलयालम में पुली, मराठी में चिन्च, तेलगु में अमलीका इत्यादि। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 2017–18 के दौरान देश में इमली का क्षेत्रफल 48.42 हजार हैक्टर तथा उत्पादन 2.01 लाख टन था। इमली की राष्ट्रीय औसत उत्पादकता 4.16 टन प्रति हैक्टर तथा विभिन्न राज्यों में उत्पादकता का स्तर 3 से 9.7 टन प्रति हैक्टर रहा।

इमली को कृषि अनुपयोगी भूमि, शुष्क भूमि, सामाजिक वानिकी एवं कृषि वानिकी के लिए उत्तम माना जाता है क्योंकि जहाँ एक ओर यह अपने व्यापक एवं गहरे जड़तंत्र के कारण मृदा एवं जलवायु की प्रतिकूल परिस्थितियों, जैसे तेज, गर्म हवा, चक्रवात, सूखे की मार इत्यादि को सहन कर सकता है, वहीं इसके लगभग हर हिस्से का प्रयोग मानव द्वारा किया जाता है। इससे मिलने वाली लकड़ी का प्रयोग ईंधन के लिए, भवन निर्माण के कार्यों में तथा घर की साज सज्जा का सामान, जैसे मेज, कुर्सी, पलंग इत्यादि बनाने में किया जाता है। इमली की पत्तियों का प्रयोग चारे के लिए किया जाता है। इसकी जड़, छाल, पत्तियों, फूलों, फलों तथा बीजों का प्रयोग औषधि के रूप में पाचक शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, हृदय एवं यकृत को स्वस्थ रखने, मोटापे एवं ज्वर को कम करने तथा उच्च रक्त चाप, कोलेस्ट्रॉल, गठिया एवं मधुमेह की समस्या में किया जाता है। इमली की विटामिन (सी, ई तथा बी), खनिज–लवण (लौह, कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम तथा मैंगनीज), टार्टरिक अम्ल एवं आहारी रेशे से भरपूर खट्टी–मीठी फलियाँ सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। फलियों से प्राप्त गूदे का उपयोग भारतीय रसोई घर तथा खाद्य उद्योग द्वारा नाना प्रकार के व्यंजन, जैसे चटनी, करी, सांभर, अचार इत्यादि तथा प्रसंस्कृत एवं मूल्यवर्धित पेय तथा खाद्य उत्पाद, जैसे जूस, नेक्टर, सीरप, प्यूरी, पेस्ट, सॉस, जैम, कैंडी, टॉफी, अचार, चूर्ण इत्यादि बनाने में किया जाता है। जहाँ एक ओर फलियों का गूदा महत्वपूर्ण है वहीं इनसे मिलने वाले बीज भी अत्यंत उपयोगी होते हैं। इमली के बीज में कई प्रकार के पोषक तत्व, जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, एमिनों अम्ल, पोटैशियम इत्यादि पाये जाते हैं। इमली के सख्त बीजों को भूनने के बाद इनके भूरे रंग के आवरण को अलग कर दिया जाता है तथा सफेद रंग की गिरी को पीस कर चूर्ण तैयार किया जाता है। इस चूर्ण को टेमेरिंड कर्नेल पाउडर (टीकेपी) के नाम से जाना जाता है। टीकेपी की जल अवशोषण क्षमता उत्तम होती है जिसके कारण यह पानी में डालने पर फूल जाता है तथा गरम करने पर एक गाढ़े चिपचिपे घोल में परिवर्तित हो जाता है। इसलिए इसका प्रयोग जूट, वस्त्र एवं

छपाई उद्योग में साइजिंग प्रक्रिया के दौरान तथा फार्मा उद्योग में सरेस (गोंद) के रूप में किया जाता है। टीकेपी का प्रयोग खाद्य योजक के रूप में पशु आहार तथा विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत खाद्य एवं कन्फेक्शनरी, जैसे केचप, सॉस, सूप, जैम, जेली, मार्मालेड, आइसक्रीम, शर्बत, झटपट नूडल, बिस्कीट, ब्रेड, केक, चॉकलट इत्यादि बनाने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त टीकेपी का प्रयोग रसोई घर में विभिन्न प्रकार के व्यंजनों को गाढ़ा करने तथा पोषक तत्वों से समृद्ध करने में भी किया जा सकता है।

देश में इमली जैसी बहुउपयोगी फसल का उत्पादन बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं, जिसके लिए यह जरुरी है कि इसकी खेती का व्यवसायीकरण हो व इसकी बागवानी को व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक तरीके से किया जाए। लघु एवं सीमांत कृषक, जिनकी आजीविका का प्रमुख साधन पारंपरिक अनाज फसलों को उगाना एवं बेचना है, की आय बढ़ाने के लिए उच्च मूल्य वाली नकदी फसल के रूप में इमली की बागवानी एक बहुत ही अच्छा विकल्प साबित हो सकती है। प्रस्तुत लेख में इमली बागवानी के विभिन्न पहलुओं तथा उन्नत उत्पादन तकनीकियों का विवरण दिया जा रहा है, जिन्हें ध्यान में रखकर व अपनाकर इमली बागवान प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक से अधिक इमली का उत्पादन कर सकेंगे व ज्यादा मुनाफा कमा पायेंगे।

जलवायु एवं मृदा

व्यापक जलवायु अनुकूलता के कारण इमली की बागवानी को आर्द्र से लेकर शुष्क जलवायु वाले गरम क्षेत्रों तक सफलतापूर्वक किया जा सकता है। पाले के प्रति यह अति संवेदनशील है, अतः पाला पड़ने वाली ठंडी जगहों पर इसकी बागवानी नहीं करनी चाहिए। इसमें सूखे को सहने की उत्तम क्षमता होती है, जिसके कारण इसे शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए एक आदर्श फसल माना गया है। इमली लगभग सभी प्रकार की मृदा में हो सकती है, परन्तु व्यवसायिक बागवानी के लिए अच्छी जल धारण क्षमता एवं जल निकास वाली गहरी दोमट अथवा जलोढ़ मिट्टी को उत्तम माना गया है, क्योंकि कंकरीली, पथरीली, बलुई, लवणीय एवं क्षारीय, उथली एवं अल्प उपजाऊ मृदा में पौधे की बढ़वार अच्छे से नहीं हो पाती है और अच्छा उत्पादन भी नहीं मिल पाता है।

उन्नत प्रभेद

कई खूबियों के बावजूद भी इमली हमारे देश में अभी भी जंगलों, वानिकी वृक्षारोपणों, हरित राजमार्ग रोपण, शहरी वृक्षारोपण, सामुदायिक वृक्षारोपण तथा गृह वाटिकाओं से निकलकर कृषकों के मध्य व्यवसायिक बागवानी के रूप में उतनी प्रचलित नहीं हो पायी है जितना इसे होना चाहिए था। देश का अधिकांश इमली उत्पादन बीजू वृक्षों से आता है जो उपज तथा गुणवत्ता में काफी भिन्नता रखते हैं। इमली बागवानी को बड़े पैमाने पर आगे बढ़ाने के लिए यह जरुरी है कि उपभोक्ताओं की पसंद को ध्यान में रखते हुए इमली की अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्मों का विकास, प्रचार एवं प्रसार किया जाए। इस दिशा में देश की कई कृषि एवं बागवानी से संबंधित संस्थाएं कार्य कर रही हैं, परिणामस्वरुप कुछ उन्नत किस्मों का विकास हुआ है जिनके बारे में जानकारी तालिका 1 में दी जा रही है।

तालिका 1. इमली की उन्नत किस्में

किस्म	विकसित करने वाली संस्था	विशेषताएं
लक्ष्मना	भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु, कर्नाटक	फली का आकार घुमावदार, फली की लम्बाई 25.4 सेंमी., गूदा 43 प्रतिशत उपज 250 कि॰ग्रा॰/वृक्ष
डीटीएस–1	कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़, कर्नाटक	फली की लम्बाई 23.6 सेंमी., गूदा 51 प्रतिशत
डीटीएस–2		फली की लम्बाई 17.6 सेंमी., गूदा 53 प्रतिशत
गोमा प्रतीक	केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, गोधरा, गुजरात	अर्द्ध बौनी किस्म, फली का आकार हल्का घुमावदार, फली की लम्बाई 16.7 सेंमी., गूदा 50 प्रतिशत , उपज 58.5 कि॰ग्रा॰/वृक्ष

किस्म	विकसित करने वाली संस्था	विशेषताएं
पीकेएम–1	बागवानी महाविद्यालय एवं अनुसंधान संस्थान, पेरियाकुलम, तमिलनाडु	वृक्ष की वृद्धि प्रवृत्ति हल्की फैलने वाली, फली का आकार घुमावदार, गूदा 39 प्रतिशत तथा कम रेशेदार, उपज 263 कि॰ग्रा॰/वृक्ष
ऊरीगम	उद्यान विभाग, तमिलनाडु	वृक्ष की वृद्धि प्रवृत्ति सीधी, फली का आकार चपटा एवं घुमावदार, फली की लम्बाई 20 सेंमी. अनंत रुधिराडॉ. वाई.एस.आर. बागवानी विश्वविद्यालय, बागवानी अनुसंधान केन्द्र, अनंतपुर, आंध्र प्रदेशकच्ची फलियों के गूदे का रंग लाल (एंथोसायनिन वर्णक की उपस्थिति), फली का वजन 12.7 ग्राम
प्रतिष्ठान	वसंतराव नाइक मराठवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, फल अनुसंधान केन्द्र औरंगाबाद, महाराष्ट्र	वृक्ष की वृद्धि प्रवृत्ति फैलने वाली, फली का आकार घुमावदार, गूदा 61 प्रतिशत, उपज 300 कि॰ग्रा॰/वृक्ष
अजंता		वृक्ष की वृद्धि प्रवृत्ति सीधी, फली का आकार सीधा, गूदा 40 प्रतिशत

बाग स्थापना

रोपण गड्ढ़ों की खुदाई एवं भराई: बाग लगाने के लिए मई में 5 मी. गुणा 5 मी. की रोपण दूरी को अपनाते हुए रस्सी, चूने तथा इंच टेप की मदद से बाग का खाका (लेआउट) तैयार करें। इसके बाद 1 मी. लम्बाई, 1 मी. चौड़ाई तथा 1 मी. गहराई वाले माप के रोपण गड्ढ़ों को बना लें। मानसून से पहले रोपण गड्ढों को भरने का कार्य पूरा कर लें। इसके लिए खुदाई के दौरान निकली मिट्टी में 20–25 कि॰ग्रा॰ गोबर खाद, 1 कि॰ग्रा॰ नीम की खली, 50 ग्राम क्लोरपाइरीफोस (1.5 प्रतिशत डीपी) की धूल, 100 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश तथा 100 ग्राम डाईअमोनियम फॉस्फेट अथवा 300 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट को भली–भांति मिश्रित कर गड्ढों को करीब 10 से 15 सेंमी. ऊपर तक भर लें। बारिश के बाद मिट्टी की अतिरिक्त तह बैठ जाएगी और रोपण गड्ढे का स्तर बाग की जमीन के बराबर आ जाएगा। बारिश के बाद रोपण गड्ढे में धंसाव आने की स्थिति में पर्याप्त मात्रा में मिट्टी डालकर गड्ढों को भर दें।

सघन रोपित (5 गुणा 5 मी.) इमली का बाग

पौध रोपण: मानसून शुरू होने के बाद जब मिट्टी पर्याप्त रूप से नम हो जाए तब रोपण गड्ढे के ठीक बीच में से मिट्टी को निकाल कर पौधारोपण का कार्य करें। रोपण से पूर्व पॉलीथीन थैली के निचले हिस्से को चारों तरफ से काटकर हटा दें तथा आपस में उलझी हुई जड़ों की छंटाई कर लें। पौधे को मृदा पिंड तथा पॉलीथीन के साथ रोपण सूराख में डालें तथा पॉलीथीन थैली को लम्बाई में नीचे से ऊपर की ओर दो चीरे लगाकर हटा दें। इसके बाद रोपण सूराख को मिट्टी से भर दें तथा पौधे को जमीन में दृढ़ता से स्थापित करने के लिए इसके चारों ओर की मिट्टी को दबा दें। पौध को उतना ही गहरा लगाएं जितना कि वो नर्सरी की पॉलिथीन थैली में था। कलमी पौधे को लगाते समय यह ध्यान रखें कि कलम जोड (ग्राफ्ट–यूनियन) मिट्टी के ऊपर रहे तथा जमीन को छूने ना पाये। रोपण के वक्त कलमी पौध के जोड़ पर लगी हुई पॉलीथीन पट्टी को निकाल दें। ना निकालने की स्थिति में पॉलीथीन पट्टी से लिपटा हुआ हिस्सा सामान्य रूप से विकसित नहीं हो पाता है तथा मूलवृन्त (रूटस्टॉक) एवं कलम (सायन) की तुलना में पतला और कमजोर हो जाता है। ऐसे विकृत पौधों का जीवनकाल कम होता है तथा इनसे मिलने वाली उपज भी संतोषजनक नहीं होती है।

इमली की कलमी पौध

रोपण उपरांत देखभालः रोपण के तुरंत बाद पौधे के चारों ओर थाला बना लें व सिंचाई का कार्य करें। मृदा नमी को अधिक देर तक बरकरार रखने व खरपतवार को नियंत्रित करने के लिए पौधे के चारों ओर बने थाले में पलवार (मल्च) बिछा लें। शुरुवात में पौधे का तना कमजोर होता है जिस कारण तेज हवा इसे नुकसान पंहुचा सकती है, इसलिए लकड़ी की छड़ी को पौधे से उचित दूरी पर बिना जड़ों को नुकसान पहुँचाते हुए गाड़ दें व पौधे को सुतली की मदद से इस छड़ी से बाँध कर सहारा दें। मूलवृन्त से निकलने वाले कल्लों को समय–समय पर काट कर हटा दें।

छत्र (कैनोपी) प्रबंधन

सुचारु रूप से विभिन्न कर्षण क्रियायों को संपन्न करने तथा उत्तम गुणवत्तायुक्त अधिक पैदावार पाने के लिए यह जरुरी है कि बाग लगाने के आरम्भिक वर्षों में कटाई–छंटाई तथा सधाई के जरिये इमली के पौधे को एक उचित आकार एवं सशक्त ढांचा प्रदान किया जाए। पौध रोपण के 4–6 महीने बाद दिसंबर–जनवरी में तने को करीब 70 सेंमी. की ऊंचाई पर काट दें व तने के लगभग 45 सेंमी. हिस्से को साफ रखते हुए इस पर 3–4 प्राथमिक शाखाओं को चारों दिशाओं में विकसित करें। प्राथमिक शाखाओं को 3–4 महीने उपरांत 40 सेंमी. की लम्बाई पर काट दें व प्रत्येक प्रथम वर्गीय शाखा में 2–3 द्वितीय वर्ग की शाखाओं को 45° द्विशाखीय कोण के साथ रखें। इन द्वितीय वर्ग की शाखाओं को भी 3–4 महीने बाद 30 सेंमी. की लम्बाई पर काट दें व प्रत्येक द्वितीय वर्गीय शाखा पर 45° के द्विशाखीय कोण के साथ 2–3 तृतीय वर्ग की शाखाओं को चयनित करें। तृतीय वर्ग की शाखाओं के विकास के उपरांत इन पर प्राकृतिक रूप से छत्र को बनने दें। इमली के बागों की उत्पादकता को लम्बे समय तक टिकाऊ बनाये रखने के लिए नियमित रूप से सूखी, संक्रमित, रोगग्रस्त, कमजोर, टूटी हुई तथा एक के ऊपर एक चढ़ी हुई, आपस में उलझी हुई एवं विकृत बनावट वाली शाखाओं को हटाते रहें। सघन पद्धत्ति (5 मी. गुणा 5 मी.) से लगाये गये पूर्ण रूप से विकसित बागों में वृक्षों की ऊंचाई तथा छत्र (कैनोपी) फैलाव को 4 मीटर के भीतर रखें।

इमली का छत्र प्रबंधन

खाद एवं उर्वरक व्यवहार

इमली बागवानी के लिए वार्षिक गोबर की खाद एवं पोषक तत्व मात्रा (नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश) उम्र अनुसार तालिका 2 में दिया गया है। तालिका में दी गयी जानकारी के हिसाब से गोबर खाद एवं रासायनिक उर्वरकों अर्थात यूरिया, सिंगल सुपर फॉस्फेट, डाईअमोनियम फॉस्फेट एवं म्यूरेट ऑफ पोटास का प्रयोग करें। गोबर की खाद, फॉस्फोरस एवं पोटाश उर्वरक की सम्पूर्ण तथा नत्रजन उर्वरक की आधी मात्रा को जून–जुलाई में डालें। नत्रजन की शेष आधी खुराक को अक्टूबर–नवंबर में दें। उर्वरक तथा खाद डालने के तुरंत बाद सिंचाई करें।

सिंचाई

आमतौर पर व्यापक एवं गहरे मूलतंत्र के कारण इमली को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। इसकी बागवानी के लिए बारिश का पानी ही पर्याप्त है। हालांकि, पौध स्थापना तथा पौधे की कायिक वृद्धि एवं विकास को सुदृढ़ एवं सुनिश्चित करने के लिए बाग लगाने के शुरुआती 4–5 सालों अर्थात् जब तक कि पौधा फल अवस्था में नहीं आ जाता है, में जरूरत के हिसाब से सिंचाई करनी चाहिए, विशेषकर गर्मियों और जब वातावरण शुष्क हो। सर्दियों में 15–20 दिन के अंतराल तथा गर्मियों में 7–10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें। सिंचाई करते समय यह ध्यान जरूर रखें कि बाग में जलभराव न हो। एक बार जब पौधा अच्छे से स्थापित होकर फल अवस्था में आ जाता है तो उसे सिंचाई की जरूरत कम पड़ती है, बारिश का पानी ही पर्याप्त होता है। विपरीत जलवायु परिस्थितियों जैसे तापमान के अत्यधिक बढ़ने तथा वर्षा कम होने की स्थिति में, इमली के बाग में सिंचाई करना लाभदायक रहता है। शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन तथा पलवार अपनाने से अच्छी उपज मिलती है।

तालिका 2. इमली बागवानी के लिए वार्षिक गोबर खाद, पोषक तत्व एवं रासायनिक उर्वरक प्रदाय

आयु (वर्ष)	गोबर खाद (कि.ग्रा./वृक्ष)	वार्षिक पोषक तत्व मात्रा (ग्राम/वृक्ष)			वार्षिक रासायनिक उर्वरक प्रदाय (ग्राम/वृक्ष)				
					एसएसपी का उपयोग करने पर		डीएपी का उपयोग करने पर		एमओपी
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश	यूरिया	एसएसपी	यूरिया	डीएपी	
1	10	50	25	50	110	160	90	55	80
2	20	100	50	100	220	320	180	110	160
3	30	150	75	150	330	480	270	165	240
4	40	200	100	200	440	640	360	220	320
5	50	250	125	250	550	800	450	275	400
6	50	300	150	300	660	960	540	330	480
7	50	350	175	350	770	1120	630	385	560
8	50	400	200	400	880	1280	720	440	640
9	50	450	225	450	990	1440	810	495	720
10	50	500	250	500	1100	1600	900	550	800

फसल सुरक्षा

देश के उष्ण एवं आर्द्र जलवायु वाले पूर्वी राज्यों विशेषकर, ओडिशा में इमली की फसल को दो कीट काफी नुकसान पहुँचाते हैं, पुष्पकली छेदक तथा फली भेदक। उचित समय पर इनका नियंत्रण न करने की स्थिति में उत्पादन में करीबन 30 से 40 प्रतिशत की गिरावट आ जाती है। अतः समय पर रोकथाम के तरीके अपनाने चाहिए। कली छेदक की रोकथाम के लिये पुष्कलिकाओं के निकलते वक्त क्लोरपाइरीफॉस (20 ईसी) का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से वृक्ष छत्र पर दो बार छिड़काव 15 से 20 दिन के अंतराल पर करें। फली भेदक के नियंत्रण के लिये क्लोरपाइरीफॉस (20 ईसी) का पर्णीय छिड़काव 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से अगस्त से नवंबर तक मासिक अंतराल पर करें।

फली भेदक क्षति

फल तुड़ाई एवं उपज

इमली के कलमी (ग्राफ्टेड) पौधे 4–5 साल में फलना शुरू करते हैं तथा 10 वर्ष की आयु से आर्थिक उपज देने लगते हैं। पूर्ण रूप से विकसित वृक्ष करीबन 1–2.5 कुंटल फलियों की उपज देता है। हमारे देश में इमली की फलियां फरवरी–मई में परिपक्व होती हैं। फलियों को पेड़ पर ही तब तक पकने देना चाहिए जब तक कि उनका बाहरी खोल सूखकर कड़ा नहीं हो जाता और गूदे से आसानी से बिना चिपके अलग होना शुरू नहीं करता।

समाप्त

19

रवीना[1], अरविंद मलिक[2*], दिव्या[2], नेहा[2] एवं अनेजा नायर एम॰[1]
[1]महाराणा प्रताप बागवानी विश्वविद्यालय, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]सीसीएस हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125004 (हरियाणा)
*E-mail: asmalik2033@gmail.com

गुलाब के मूल्यवर्धित उत्पाद तथा फूलों से तेल निकालना: एक मार्गदर्शिका

गुलाब के फूल अपनी सुंदरता, खुशबू और सांस्कृतिक महत्व के लिए प्रसिद्ध हैं। अपने सजावटी और भावनात्मक मूल्य से परे, इत्र, सौंदर्य प्रसाधन, अरोमाथेरेपी और पाक कला सहित विभिन्न उद्योगों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका उपयोग दुनिया के कुछ हिस्सों में प्यार, चिकित्सा गतिविधियों, प्रयुक्त सौंदर्य, खुशी के समय, उत्सव, स्वागत समारोह, सजावट और खाद्य टॉनिक पूरक के रूप में किया जाता है। मूल्यवर्धित उत्पादों को प्राप्त करने और गुलाब के फूलों से तेल निकालने की प्रक्रिया में शामिल है जटिल तकनीकें और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। भारत में गुलाब जल आसवन इकाइयाँ आमतौर पर गुलाब की खेती और आवश्यक तेल उत्पादन वाले क्षेत्रों में स्थित हैं। ये इकाइयाँ अक्सर बड़े कृषि या आवश्यक तेल निष्कर्षण उद्योगों का हिस्सा होती हैं। उत्तर प्रदेश के कन्नौज को "भारत की इत्र राजधानी" के रूप में जाना जाता है। इसका गुलाब जल, आवश्यक तेल और इत्र के उत्पादन का एक लंबा इतिहास है। कन्नौज में कई आसवन इकाइयाँ पारंपरिक तरीकों पर ध्यान केंद्रित करती हैं, जिसमें गुलाब जल और आवश्यक तेल निकालने के लिए तांबे के स्टिल का उपयोग किया जाता है। राजस्थान में पुष्कर अपनी गुलाब की खेती और वार्षिक गुलाब उत्सव के लिए प्रसिद्ध है। पुणे, महाराष्ट्र और आस–पास के क्षेत्रों में, आपको आसवन इकाइयाँ मिलेंगी जो गुलाब जल और अन्य आवश्यक तेलों में विशेषज्ञ हैं। हिमाचल प्रदेश के निचले हिमालयी क्षेत्रों में, विशेषकर मंडी जैसे क्षेत्रों में, गुलाब की खेती आम है।

गुलाब के अनोखे गुण

गुलाब अपनी मादक सुगंध और जीवंत रंगों के कारण फूलों में अद्वितीय है। ये गुण उन्हें विभिन्न प्रकार के उत्पाद बनाने के लिए आदर्श बनाते हैं। मूल्यवर्धित उत्पादों के लिए उपयोग किया जाने वाला सबसे आम प्रकार का गुलाब रोज़ा डेमस्केना है, जिसे इसकी उच्च तेल सामग्री और समृद्ध सुगंध के कारण डेमस्क गुलाब के रूप में भी जाना जाता है। व्यवसायिक उपयोग, विशेष रूप से गुलाब और गुलाब जल के आवश्यक तेलों के उत्पादन के लिए तीन मुख्य प्रकार के गुलाब उगाए जाते हैं।

गुलाब के फूलों की कटाई

- इसे सुबह के ठंडे समय में और रोपण के पूरे चार महीने बाद किया जाना चाहिए।
- कसी हुई कली के चरण में जब रंग पूरी तरह से स्थापित हो जाए और पंखुड़ियां खुलना शुरू हो जाएं, तब सिकेटियर से कटाई करनी चाहिए।
- फूल को पहली कटाई के लिए पौधे पर छोड़ी गई 3–4 परिपक्व पत्तियों के साथ काटा जाना चाहिए और दूसरी कटाई के लिए, फूल को काटने के बाद 2 परिपक्व पत्तियों को छोड़ा जा सकता है।

गुलाब की कटाई के बाद की संभाल

- कटाई के बाद, तने को तुरंत पानी की एक बाल्टी में रखा जाता है और ग्रीन हाउस में लगभग 6 से 12 घंटे तक भंडारण के लिए आवश्यक तापमान 5 से 7° सेल्सियस रखना चाहिए।
- फूल का तीखापन बनाए रखने के लिए 90–92 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर रखा जाना चाहिए और 15–20 मिनट के भीतर ग्रेडिंग हॉल में ले जाया जाना चाहिए।

- तना मजबूत, सीधा होना चाहिए और फूल सीधी स्थिति में पकड़ने में सक्षम होना चाहिए, फूलों के तने की लंबाई एक समान होनी चाहिए।
- कोल्ड स्टोरेज के लिए गुलाब को लगभग 5–10 सेंमी. फूल परिरक्षक रसायन में 2–4° सेल्सियस पर एक सप्ताह के लिए संग्रहित किया जाना चाहिए।
- फूलों को गुच्छों में व्यवस्थित कर नालीदार कार्डबॉक्स में आस्तीन में लपेटकर पैक किया जाता है।
- परिवहन मुख्यतः रीफ़र वैन कंटेनरों में किया जाता है। ग्रीनहाउस से सबसे पहले आने वाले फूलों को पहले संसाधित करके भेजा जाना चाहिए।

गुलाब के मूल्यवर्धित उत्पाद

मूल्यवर्धित उत्पाद उन वस्तुओं को संदर्भित करते हैं जो अपने मूल्य को बढ़ाने के लिए अतिरिक्त प्रसंस्करण, पैकेजिंग या ब्रांडिंग के साथ कच्चे माल से बनाई जाती है। गुलाबों को न केवल सुंदरता के लिए महत्व दिया जाता है, बल्कि उनसे प्राप्त होने वाले मूल्यवर्धित उत्पादों की विविधता के लिए भी महत्व दिया जाता है। ये उत्पाद किसानों, उद्यमियों और निर्माताओं को विविधता लाने और आकर्षक बाजारों में प्रवेश करने के अवसर प्रदान करते हैं। गुलाब के फूलों से उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला प्राप्त कर सकते हैं:

1. गुलाब जल: गुलाब जल एक लोकप्रिय उत्पाद है जो गुलाब की पंखुड़ियों को भाप से आसवित करके प्राप्त किया जाता है। त्वचा की देखभाल, सौंदर्य प्रसाधन, भोजन और धार्मिक अनुष्ठानों में इसके कई अनुप्रयोग हैं। इसका उपयोग चेहरे के टोनर के रूप में, डेसर्ट में और अरोमाथेरेपी में एक शांत एजेंट के रूप में किया जाता है।

2. गुलाब का तेल (गुलाब ओटो): गुलाब का तेल, जिसे गुलाब ओटो भी कहा जाता है, भाप आसवन के माध्यम से निकाला गया एक आवश्यक तेल है। भाप आसवन के माध्यम से निकाला गया, गुलाब का तेल, तेल की एक छोटी उपज के लिए आवश्यक पंखुड़ियों की उच्च मात्रा के कारण सबसे महंगे आवश्यक तेलों में से एक है। इसका उपयोग इत्र, अरोमाथेरेपी और उच्च गुणवत्ता वाले त्वचा देखभाल उत्पादों में किया जाता है। रोज़ा कैनिना का उपयोग गुलाब के तेल का उत्पादन करने के लिए किया जाता है।

3. रोज़ एब्सोल्यूट: रोज़ एब्सोल्यूट को हेक्सेन जैसे घोलक का उपयोग करके निकाला जाता है और इसकी स्थिरता गुलाब के तेल की तुलना में अधिक गाढ़ी होती है। इसकी तीव्र सुगंध के कारण इसका उपयोग अक्सर लक्जरी परफ्यूम और उच्च स्तरीय सौंदर्य प्रसाधनों में किया जाता है। यह हेक्सेन जैसे घोलक का उपयोग करके निकाला गया गुलाब के तेल का दूसरा रूप है। इसकी गाढ़ी स्थिरता होती है और इसका उपयोग इत्र और सौंदर्य प्रसाधनों में किया जाता है।

4. गुलाब की पंखुड़ियों का जैम और सिरप: गुलाब की पंखुड़ियों से जैम और सिरप बनाया जा सकता है, जिससे पाक व्यंजनों में फूलों का स्वाद जुड़ जाता है। ये उत्पाद आमतौर पर मध्य पूर्वी और भारतीय व्यंजनों में उपयोग किए जाते हैं।

5. गुलाब की मोमबत्तियाँ और पोटपुरी: सूखी गुलाब की पंखुड़ियों का उपयोग गुलाब की मोमबत्तियाँ और पोटपुरी बनाने के लिए किया जा सकता है, जो घरों और कार्यालयों के लिए प्राकृतिक सुगंध प्रदान करती है। ये उत्पाद अपनी सजावटी अपील और सुखदायक सुगंध के लिए मूल्यवान हैं।

6. गुलाब की चाय और हर्बल इन्फ्यूजन: गुलाब की पंखुड़ियों को सुखाकर हर्बल चाय और इन्फ्यूजन बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इन उत्पादों को अक्सर उनके शांत गुणों और अद्वितीय स्वादों के लिए प्रचारित किया जाता है।

7. गुलाब से युक्त त्वचा देखभाल उत्पाद: गुलाब से युक्त त्वचा देखभाल उत्पाद, जैसे गुलाब से बनी चेहरे की क्रीम, सीरम और तेल, अपने हाइड्रेटिंग और सुखदायक प्रभावों के कारण लोकप्रिय हैं। इन्हें अक्सर उनके सूजन रोधी गुणों और समृद्ध ऑक्सीकरण रोधी के लिए विपणन किया जाता है।

8. गुलाब के पाउच और स्नान नमक: इसका उपयोग पाउच बनाने के लिए किया जा सकता है, जिन्हें घरों और अलमारी में प्राकृतिक खुशबू जोड़ने के लिए दराज या अलमारी में रखा जाता है। गुलाब युक्त स्नान नमक एक आरामदायक अनुभव प्रदान करते हैं और उनके चिकित्सीय प्रभावों के लिए विपणन किया जाता है।

9. गुलाब कैंडी और मिठाइयाँः कुछ संस्कृतियों में, गुलाब की पंखुड़ियों का उपयोग कैंडी और अन्य मिठाइयाँ बनाने के लिए किया जाता है, जो एक अनोखा पुष्प स्वाद प्रदान करती है।

10. गुलाब कला और शिल्पः सूखे और संरक्षित गुलाब की पंखुड़ियों का उपयोग विभिन्न शिल्पों में किया जा सकता है, जैसे दबाए गए फूल कला, बुकमार्क और अन्य सजावटी सामान। गुलाब के ये मूल्यवर्धित उत्पाद किसानों और उद्यमियों के लिए विविध आय स्रोत बनाने के अवसर खोलते हैं।

विभिन्न उद्योगों में गुलाब का उपयोग

कपड़ा उद्योग

लाल गुलाब बगीचे में उगने वाले सबसे महत्वपूर्ण सजावटी पौधों में से एक है और यह लाल रंग से समृद्ध है और लाल गुलाब के फूलों में मौजूद गुलाबी रंग चार अलग–अलग विलायक निष्कर्षण विधियों का उपयोग करके निकाले जाते हैं। इस प्रकार, लाल गुलाब डाई का उपयोग सूती कपड़े, रेशम और ऊनी कपड़ों की रंगाई में किया जा सकता है। इसलिए पर्यावरण अनुकूल और बायोडिग्रेडेबल रंगों का उपयोग दुनिया भर में बड़ी चिंता का विषय है। प्राकृतिक रंग निकालने के लिए पौधे के विभिन्न भागों जैसे बीज, फूल, पत्तियां और छाल का उपयोग किया जाता है।

खाद्य उद्योग

गुलाब के फूल अपने उचित न्यूरोलॉजिकल, पोषण संबंधी गुणों, फार्मास्युटिकल लाभों, रासायनिक संरचना और आहार अनुपूरक के प्रकारों के कारण खाद्य बाजार के विस्तार में एक महत्वपूर्ण भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। आने वाले दशकों में बाजार पर काबू पाने के लिए, उपभोक्ता व्यवहार और खरीद के उद्देश्य पर उपभोक्ता अनुसंधान खाद्य फूलों के विभिन्न पहलुओं की खोज के शुरुआती तरीके रहे हैं। दूसरी ओर, फूलों से बायोएक्टिव यौगिकों को निकालने के आधुनिक और प्रभावी तरीके भी उनके घटकों के परीक्षण में योगदान करते हैं, जिससे खाद्य उद्योग में सक्रिय अवयवों के विकास की अनुमति मिलती है।

फार्मास्युटिकल / औषधीय उद्योग

गुलाब की पंखुड़ियों में शामक, एंटीसेप्टिक, अवसाद रोधी, बैक्टीरिया रोधी, ऐंठन रोधी, सूजन रोधी और परजीवी रोधी गुण होते हैं। गुलाब में औषधीय गुण होते हैं इसलिए इन्हें औषधीय जड़ी–बूटी कहा जा सकता है। गुलाब के पौधे की पत्तियों, तने और जड़ों में विटामिन और खनिजों के रूप में द्वितीयक मेटाबोलाइट और पोषक तत्व होते हैं। यह लीवर को फिर से जीवंत कर सकता है और भूख और रक्त परिसंचरण को बढ़ा सकता है। रोजा इंडिका का उपयोग दस्त, अस्थमा, ल्यूकोडर्मा और मुंह की सूजन के इलाज के लिए किया जाता है।

निष्कर्ष

गुलाब के फूलों से प्राप्त मूल्यवर्धित उत्पाद किसानों को अपनी आय के स्रोतों में विविधता लाने और नए बाजारों तक पहुंचने का एक आशाजनक अवसर प्रदान करते हैं। गुलाब के तेल और गुलाब जल के निष्कर्षण से लेकर गुलाब युक्त त्वचा देखभाल उत्पाद, हर्बल चाय, जैम और मोमबत्तियाँ बनाने तक, गुलाब के फूलों की बहुमुखी प्रतिभा कई उद्योगों में अनुप्रयोगों की एक विस्तृत श्रृंखला में योगदान करती है। मूल्यवर्धित उत्पादों का उत्पादन और बिक्री करके, किसान पारंपरिक गुलाब की खेती से परे अतिरिक्त राजस्व स्रोत उत्पन्न कर सकते हैं। कच्चे गुलाबों को बाजार मूल्य पर बेचने के बजाय, किसान प्रसंस्करण और ब्रांडिंग के माध्यम से अपनी फसलों के मूल्य में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। मूल्यवर्धित उत्पादों की एक श्रृंखला के साथ, किसान बदलते बाजार के रुझान और उपभोक्ता प्राथमिकताओं को अपना सकते हैं, जिससे एक लचीला व्यवसाय मॉडल तैयार हो सकता है।

समाप्त

20

बृज लाल अत्री
भाकृअनुप–खुम्ब अनुसंधान निदेशालय, चंबाघाट, सोलन–173213 (हिमाचल प्रदेश)
E-mail: bl.attri@icar.gov.in

मशरूम–एक संपूर्ण आहार एवं आय का उत्तम साधन

दैनिक भोजन का सेवन हम न केवल अपनी भूख मिटाने के लिए करते हैं अपितु यह हमें स्वस्थ रखने के लिए भी योगदान करता है। वर्तमान में असाध्य रोगों के कारण अधिकतर लोग अपने अच्छे स्वास्थ्य के लिए दैनिक आहार के प्रति बहुत जागरूक हो गए हैं। खाद्य पदार्थ हमें बुनियादी पोषण के अलावा अनुपूरक स्वास्थ्य लाभ भी प्रदान करते हैं जिसके लिए इन्हें कार्यात्मक भोजन कहा जाता है। मशरूम एक अद्भुत एवं दुर्लभ भोजन है जो कई सदियों से मानव सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ है लेकिन आज भी इसके बहुसंख्यक पोषक तत्वों व औषधीय गुणों के बारे में उपभोक्ताओं में जागरूकता की कमी है। प्राचीन काल से ही मशरूम में मौजूद चमत्कारी पौष्टिक एवं औषधीय गुणों को मान्यता प्राप्त है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी अधिकतर आबादी खासकर औरतें एवं बच्चे कुपोषण से पीड़ित हैं। कुपोषण अनेक बीमारियों का कारण है जिसके नियंत्रण के लिए मशरूम एक महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ हो सकता है, क्योंकि इसमें मानव शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। मशरूम के पर्याप्त मात्रा में लगातार सेवन से पुरानी बीमारियों और विकारों से छुटकारा पाया जा सकता है हालांकि हमारे देश में मशरूम की प्रति व्यक्ति उपलब्धता चीन जैसे देशों के मुकाबले काफी कम है। लोकप्रियता बढ़ने के कारण, दुनिया भर में सभी आयु वर्ग के लोगों द्वारा मशरूम का सेवन दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। भारत में पांच मशरूमों, सफ़ेद बटन, ढींगरी, दूधिया, पराली एवं शिटाके (चित्र) की खेती व्यवसायिक स्तर पर की जा रही है। हालांकि कुल उत्पादन में से 70 प्रतिशत से ज्यादा सफ़ेद बटन मशरूम का है।

मशरूम में कम कार्बोहाइड्रेटस, वसा एवं प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, विटामिन व खनिजों के कारण इन्हें सुपर फूड भी कहा जाता है। प्राचीन समय में चीन और जापान में विशेषाधिकार प्राप्त लोगों द्वारा ही मशरूम का सेवन किया जाता था हालांकि अब जागरूकता बढ़ने के कारण सभी लोग अपने भोजन में शामिल करने लगे हैं। रोम में इसे "भगवान का भोजन" तथा चीन में "जीवन का अमृत" माना जाता है। लगभग 44 मिलियन टन के कुल उत्पादन में से, चीन लगभग 27 कि॰ग्रा॰/व्यक्ति/वर्ष की खपत के साथ 36 मिलियन टन से अधिक का उत्पादन करने में अग्रणी है जबकि भारत में लगभग 3.15 लाख टन के उत्पादन के साथ, उपलब्धता मुश्किल से 220 ग्राम/व्यक्ति/वर्ष है।

बटन मशरूम

ढींगरी मशरूम

दूधिया मशरूम

पराली मशरूम

शिटाके मशरूम

पोषण संबंधी घटक

भारत में अधिकांश आबादी अनाजों के साथ–साथ दालों का सेवन करती है जिनमें प्रोटीन और आवश्यक अमीनों अम्ल की कमी होती है। चूंकि मानव शरीर विटामिन और खनिजों को संश्लेषित नहीं कर सकता है, इसलिए दैनिक आहार के माध्यम से इन घटकों को प्राप्त करना बहुत महत्वपूर्ण है। हालाँकि, मशरूम 70–95 प्रतिशत पानी से बना होता है, फिर भी यह प्रोटीन, रेशा, खनिज, विटामिन, प्रतिओक्सीकारक (एंटीऑक्सिडेंट), पॉलीसेकेराइड, फेनोलिक यौगिक, टेरपेनोइड, सेकेंडरी मेटाबोलाइट्स आदि प्रचुर मात्रा में तथा कार्बोहाइड्रेट एवं वसा कम पाए जाते हैं। मीठे, खट्टे, नमकीन और कड़वे स्वादों के अलावा, मशरूम में ग्लूटामेट की उपस्थिति के कारण विशिष्ट नमकीन स्वाद होता है जिसे उमामी स्वाद कहा जाता है।

प्रोटीन

मशरूम प्रोटीन का बहुत समृद्ध स्रोत है जो ताजे वजन के आधार पर 2.20 से 3.50 ग्राम / 100 ग्राम और सूखे वजन के आधार पर 19.05 से 35.10 ग्राम / 100 ग्राम तक होता है। मानव शरीर के विभिन्न अंगों की संरचना, कार्यप्रणाली तथा ऊतकों का नियमन प्रोटीन द्वारा ही होता है। 20 विभिन्न प्रकार के अमीनों अम्ल (एलेनिन, आर्जिनिन, एस्पेरेगिन, एसपारटिक एसिड, सिस्टीन, ग्लूटामाइन, ग्लूटामिक एसिड, ग्लाइसिन, हिस्टिडीन, आइसोल्यूसिन, ल्यूसीन, लाइसिन, मेथियोनीन, फेनाईल एलानिन, प्रोलाइन, सेरीन, थ्रिओनीन, ट्रिप्टोफैन, टायरोसिन और वेलिन) मिलकर एक प्रोटीन बनाते हैं। मशरूम में 9 आवश्यक अमीनों अम्ल जैसे हिस्टिडाइन, आइसोल्यूसीन, ल्यूसीन, लाइसिन, मीथियोनीन, फेनाईल एलानिन, थ्रिओनीन, ट्रिप्टोफैन और वेलिन पाए जाते हैं जिसके कारण मशरूम को "संपूर्ण प्रोटीन" कहा जाता है जिसकी मानव शरीर में 60–70 प्रतिशत तक पाचन क्षमता होती है। मानव आहार में प्रोटीन की कमी से क्वासियोरकोर और मरास्मस रोग होता है। क्वासियोरकोर रोग में जठरांत्र प्रणाली में परासरणीय असंतुलन होता है जिसे एडिमा कहा जाता है और साथ ही यकृत का आकार भी बढ़ जाता है। मरास्मस में, कुल प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण होता है जिससे वसा ऊतक और मांसपेशियों का स्पष्ट नुकसान होता है।

कार्बोहाइड्रेट

कार्बोहाइड्रेट कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बने चीनी के अणु होते हैं जो मानव शरीर में टूटकर ग्लूकोज बनते हैं तथा कोशिकाओं और ऊतकों के लिए ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। ग्लूकोज का तुरंत उपयोग होता है अन्यथा यह यकृत और मांसपेशियों में संग्रहित हो जाता है। मशरूम में अपेक्षाकृत कम कार्बोहाइड्रेट पाए जाते हैं जो शरीर को नुकसान नहीं पहुंचाते, इसलिए मशरूम मधुमेह से पीड़ित लोगों के लिए भी एक उत्तम आहार है।

वसा

कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन की तुलना में मशरूम में वसा की मात्रा बहुत कम होती है। अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए मानव शरीर में आवश्यक वसा जैसे ओमेगा–3 (मछली और अलसी के बीज से) और ओमेगा–6 (नट्स, बीज और मकई के तेल से) की आवश्यकता होती है। मशरूम के फलन में लिनोलिक, ओलिक और लिनोलेनिक के रूप में वसा की मात्रा नगण्य होती है। मशरूम में पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी अम्ल (पीयूएफए) के रूप में वसा होती है जो रक्त कोलेस्ट्रॉल को कम करने में मदद करती है। पीयूएफए को हृदय की विभिन्न बीमारियों से बचाने वाला कार्डियोपल्मोनरी माना जाता है। एर्गोस्टेरॉल की उपस्थिति के कारण मशरूम में एंटीऑक्सीडेंट गुण होते हैं और यह हृदय रोगों की रोकथाम के लिए जिम्मेदार है।

विटामिन और खनिज

मशरूम विशेष रूप से विटामिन बी का एक प्रमुख स्रोत है। मशरूम में फोलिक अम्ल और विटामिन बी 12 के अंश के साथ–साथ थायमिन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, बायोटिन, पैंटोथेनिक अम्ल की प्रचुर मात्रा उपलब्ध होती है जो अन्यथा अधिकांश पारंपरिक सब्जियों में अनुपस्थित होते हैं। विटामिन बी, राइबोफ्लेविन (विटामिन बी 2), पैंटोथेनिक अम्ल (विटामिन बी 5) और नियासिन (विटामिन बी 3) से युक्त होता है और विभिन्न मशरूम में अच्छी मात्रा में पाया जाता है तथा इन विटामिन की कमी से क्रमशः त्वचा में दरार, थकान और पेलग्रा होता है। ये विटामिन कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन को तोड़ने के बाद शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के लिए जिम्मेदार होते हैं। मशरूम विटामिन डी का एकमात्र स्रोत है तथा इसके फलन को तुड़ाई उपरांत धूप में रखने से विटामिन डी की मात्रा कई गुणा बढ़ाई जा सकती है। विटामिन के अलावा, मशरूम को खनिजों

का पावरहाउस भी कहा जाता है क्योंकि इनमें प्रमुख खनिज होते हैं जो पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। मशरूम में पोटैशियम की उच्च मात्रा उच्च रक्तचाप को कम करने के लिए फायदेमंद है। इन घटकों के अलावा, मशरूम सेलेनोप्रोटीन के रूप में सेलेनियम का भी समृद्ध स्रोत है जो शरीर को ऑक्सीडेटिव क्षति और संक्रमण से बचाने में सहायक है जिससे प्रतिरक्षा को बढ़ावा मिलता है।

विकास को बढ़ावा देने वाले पदार्थ

विभिन्न मशरूमों में मौजूद एल्कलॉइड अनेक प्रकार के कार्य करते हैं जैसे लैक्टिन (बटन मशरूम) अग्नाशय बीटा कोशिकाओं के विकास को प्रेरित करता है जिससे इंसुलिन के उत्पादन में वृद्धि होती है। इसी तरह, ढींगरी मशरूम में लोवास्टैटिन पाया जाता है जो कोलेस्ट्रॉल संश्लेषण को रोकने के लिए जिम्मेदार होता है। शिटाके पानी में घुलनशील बीटा–ग्लूकेन्स डेंड्राइटिक कोशिकाओं की गतिविधि को बढ़ाते हैं जो कैंसर कोशिकाओं की पहचान में शामिल होते हैं। कॉर्डिसेप्स में उपलब्ध कॉर्डिसेपिन एंटी–बायोटिक, एंटी–फंगल, एंटीऑक्सिडेंट, एंटी–एजिंग, एंटी–कैंसर, एंटी–वायरल आदि के लिए जाना जाता है।

मशरूम के औषधीय घटक

प्राचीन काल से ही मशरूम का उपयोग उनके औषधीय घटकों के लिए भी बड़े पैमाने पर किया जाता रहा है। मशरूम में मौजूद कई जैव–सक्रिय यौगिक मानव स्वास्थ्य में सुधार लाने वाली कई पुरानी बीमारियों, विकारों और बीमारियों को रोकने के लिए जिम्मेदार हैं। औषधीय मशरूम कैंसर के खतरे को कम करके, ट्यूमर के विकास को रोककर, रक्त शर्करा को संतुलित करके, विभिन्न बैक्टीरिया, वायरस, कवक के विकास को रोककर, सूजन को कम करके मानव स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शरीर में, फेफड़ों के संक्रमण को ठीक करना, रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना, कोलेस्ट्रॉल को कम करना भी शामिल है।

मोटापे पर नियंत्रण

मशरूम में कोई स्टार्च, बहुत कम वसा और शर्करा नहीं होती है जिसके कारण इसका कैलोरी मान बहुत कम होता है जो मोटापे के बिना स्वस्थ स्वास्थ्य बनाए रखने में सहायक होता है। इसलिए दुबले–पतले शरीर की चाहत रखने वाले लोगों के लिए मशरूम का नियमित सेवन बहुत जरूरी है। उच्च प्रोटीन के साथ–साथ रेशे से शरीर को मजबूत बनाने में मदद मिलती है और मल त्यागने से कब्ज की समस्या दूर हो जाती है। चूंकि मशरूम प्रोटीन का एक समृद्ध स्रोत है, इसलिए उच्च यूरिक एसिड से पीड़ित लोगों को इसका सेवन चिकित्सक की सलाह के बाद सीमित मात्रा में करना चाहिए।

कैंसर रोधी गतिविधि

मशरूम में कैंसर रोधी यौगिक होते हैं जो मानव शरीर में कैंसर कोशिकाओं के विकास को रोकने में मदद करते हैं यदि शिटाके और टर्की टेल जैसे मशरूम का नियमित रूप से सेवन किया जाए। मशरूम में बीटा–ग्लूकेन्स और लिनोलिक एसिड के साथ संयोजन में सेलेनियम, प्रोस्टेट और स्तन कैंसर दोनों के साथ–साथ मुक्त कणों की उपस्थिति के कारण कोशिका क्षति को रोकने के लिए बताया गया है। मशरूम में पाए जाने वाले सेलेनो प्रोटीन मानव शरीर में प्रोस्टेट और स्तन कैंसर के अलावा अन्य कैंसर को रोकने और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए भी जिम्मेदार होते हैं। कैल्शियम का समृद्ध स्रोत होने के कारण मशरूम के सेवन से ऑस्टियोपोरोसिस की समस्या भी दूर हो सकती है ।

लंबी उम्र

मशरूम में कई पॉलीसेकेराइड होते हैं जो शरीर में पाए जाने वाले सुपर ऑक्साइड मुक्त कणों को खत्म करने के लिए भी जिम्मेदार होते हैं जिससे दीर्घायु होती है। एंटीऑक्सिडेंट भी मुक्त कणों से छुटकारा पाने और उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खनिजों का पावरहाउस, विटामिन और आवश्यक अमीनों अम्ल का पैक स्वस्थ चयापचय को बनाए रखने में मदद करता है जिससे बेहतर और स्वस्थ जीवन मिलता है। मशरूम के सेवन से व्यक्ति स्वस्थ आंखें, गुर्दे, अस्थि मज्जा, यकृत, त्वचा, नाखुन, बाल, मजबूत हड्डियां, बेहतर हीमोग्लोबिन और उत्तम प्रतिरक्षा पा सकता है।

बेहतर पाचन तंत्र

मशरूम रेशे का बहुत समृद्ध स्रोत है जो न केवल भोजन सामग्री को पाचन तंत्र में ले जाने में मदद करता है बल्कि इसे साफ भी करता है और मानव शरीर को पेट और आंत से संबंधित विभिन्न बीमारियों से मुक्त रखता है। मशरूम के नियमित सेवन से कब्ज की समस्या दूर हो जाती है और मल त्यागने में आसानी होती है। इसके अलावा, आहार रेशा मल के वजन और आकार को बढ़ाता है, इसे नरम करता है और पाचन तंत्र से गुजरने में सहायता करता है। खाए गए भोजन का चयापचय बेहतर होने से पेट में गैस बनने की संभावना भी कम हो जाती है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना

मशरूम विभिन्न प्रकार के पोषण और औषधीय घटकों से भरे होते हैं जिसके कारण ये प्रतिरक्षा को बढ़ाने और मजबूत करने में सक्षम हैं। यदि मशरूम का नियमित रूप से सेवन किया जाए तो सेलेनियम, विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सिडेंट सभी मानव प्रतिरक्षा प्रणाली को विनियमित करने में योगदान करते हैं। गैनोडर्मा, टर्की टेल, शिटाके, मैटाके, लायन्स मेन और कॉर्डिसेप्स ने प्रतिरक्षा संतुलन प्रभाव और एंटीऑक्सिडेंट दिखाए हैं जो शरीर में मुक्त कणों से लड़ते हैं।

मशरूम अपने विविध पोषण और औषधीय गुणों के कारण भोजन और पोषण सुरक्षा के लिए भोजन की पूर्ति करने की काफी क्षमता रखता है क्योंकि आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में लोग कुपोषण से पीड़ित हैं। प्रोटीन, विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर, कम वसा, कम कार्बोहाइड्रेटस के साथ ताजा मशरूम और इसके उत्पाद भविष्य के लिए संभावित भोजन हैं और इन्हें सुपर फूड के रूप में वर्णित किया जा सकता है। सामान्य आहार को महत्वपूर्ण यौगिकों से समृद्ध किया जा सकता है जो देश में लोगों के एक बहुत बड़े समूह में कुपोषण से निपटने में मदद कर सकता है।

हालाँकि, मशरूम में पोषण और औषधीय दोनों ही दृष्टि से बहुत बड़ी क्षमता है, तथापि, जागरूकता की कमी और भारत में कम उत्पादन के कारण यह अंतिम और आम उपभोक्ताओं तक नहीं पहुंच पाया है। अन्य क्षेत्रीय फसलों की तुलना में, मशरूम को प्रति इकाई क्षेत्र में बहुत अधिक आमदनी के साथ पूरे वर्ष उगाया जा सकता है। उभरता हुआ मशरूम उद्योग अन्य उद्योगों के सहयोग से अरबों डॉलर के व्यापार के साथ नई ऊंचाइयों और क्षितिज तक पहुंच सकता है। चूँकि दुनिया में अधिकांश लोग शाकाहारी भोजन की ओर बढ़ रहे हैं, यदि शाकाहारी मांस बनाकर उपलब्ध कराया जाए तो इसके लिए मशरूम बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। किसी भी रूप में मशरूम का सेवन अत्यधिक फायदेमंद है और यह अधिकांश मनुष्यों के लिए भविष्य का भोजन है ।

आय का साधन

चूंकि मशरूम की खेती घर के अंदर की जा सकती है इसलिए इसे खेती बिन खेत के भी कहा जाता है। इसकी खेती क्षैतिज न होकर लम्बवत होती है जिसके कारण प्रति इकाई अधिक उत्पादन एवं आय प्राप्त होती है। प्राप्त रिपोर्ट एवं अध्ययनों के अनुसार प्रति एकड़ से लगभग 500 टन मशरूम उत्पादन किया जा सकता है हालांकि शुरू में लागत काफी लगती है लेकिन कुछेक वर्षों में ही लगाया गया धन वापस आ जाता है । इसके अलावा मशरूम की खेती में पानी की मात्रा भी काफी कम लगती है तथा इसकी खेती में साल भर परिवार के सदस्यों एवं आस–पास के लोगों के लिए रोजगार मिल जाता है। जरूरत इस बात की है कि इसकी खेती वैज्ञानिक तरीके से की जाये तथा क्षेत्र की मांग के अनुसार मशरूम का चुनाव हो ताकि फसल का मंडी में बेचने में समस्या न आये ।

मशरूम की खेती में सावधानी

मशरूम में उस सामग्री को अवशोषित करने की अद्वितीय क्षमता होती है जिस पर वे उगते हैं, चाहे वह अच्छी हो या बुरी। यह गुण ही मशरूम को उनकी लाभकारी शक्ति के साथ–साथ उनके खतरनाक पहलू भी प्रदान करता है। कई मशरूम, जब जंगल से इकट्ठे किये जाते हैं, तो उनमें भारी धातुएं होती हैं, जो बहुत जहरीली हो सकती हैं, साथ ही वायु और जल प्रदूषक भी हो सकती हैं। इसके अलावा, मशरूम को प्रतिष्ठित उत्पादकों या विश्वसनीय स्रोत से खरीदा जाना चाहिए। किसी व्यंजन में अन्य के अलावा एक भी जहरीला मशरूम बड़ी संख्या में लोगों के स्वास्थ्य को खतरे में डाल सकता है, जिसके परिणामस्वरूप कोमा, गंभीर जहर के लक्षण, मतली, उल्टी, ऐंठन, पागलपन और यहाँ तक कि मृत्यु भी हो सकती है।

समाप्त

21

प्रीति चौधरी[1] अंजू कपूर[2] एवं अभिषेक ठाकुर[1]
[1]उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय,
डॉ॰ यशवंत सिंह परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय,
नेरी, हमीरपुर–177001 (हिमाचल प्रदेश)
[2]सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय,
चौधरी सरवन कुमार हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर–176062 (हिमाचल प्रदेश)
E-mail: preetichoudhary0070@gmail.com

हरड़ का मानव पोषण में उपयोग

हरड़ (टर्मिनलिया चेबुला), एक प्रमुख औषधीय पौधा है जो भारतीय आयुर्वेद में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह मानव जाति के लिए प्रकृति का एक अनुपम उपहार है। आयुर्वेद में इसको औषधियों के राजा का दर्जा दिया गया है। यह एक उष्णकटिबंधीय, बड़ा, सदाबहार पेड़ है, जिसकी ऊंचाई 60 से 80 फीट होती है। यह समुद्र तल से 1600 मीटर की ऊंचाई पर हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, हरियाणा, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश महाराष्ट्र, उत्तर पूर्वी राज्य, असम, केरल और कर्नाटक में पाया जाता है। हरड़ के फल पीले से नारंगी–भूरे रंग के होते हैं। इसका जो फल ताजा, चिकना, संकुचित, गोल और भारी होता है, सर्वोत्तम माना जाता है। जब इसे पानी में डाला जाता है, तो यह डूबना चाहिए। इस प्रकार के फल अत्यंत उपयोगी होते हैं और औषधीय रूप से बहुत प्रभावी हैं।

हरड़ का पौधा विभिन्न पोषण संबंधी और औषधीय गुणों से भरपूर होता है। इसमें अनेक खनिज, विटामिन, एंटीऑक्सीडेंट्स और अन्य पोषक तत्व उच्च स्तर में होते हैं। इसकी रचना में कई महत्वपूर्ण औषधीय तत्व होते हैं जैसे टैनिक अम्ल (20 से 40 प्रतिशत) गैलिक अम्ल, चेबूलीनिक अम्ल और म्यूसीलेज। एन्थ्राक्वीनिन जाति के ग्लाइकोसाइड्स रेजक पदार्थ हैं। इनमें से एक की रासायनिक संरचना सनाय के ग्लाइकोसाइड्स सिनोसाइड 'ए' से मिलती है। इसके अलावा हरड़ में 10 प्रतिशत जल, 13.9 से 16.4 प्रतिशत नॉन टैनिन और शेष अघुलनशील पदार्थ होते हैं। वेल्थ ऑफ इण्डिया के वैज्ञानिकों के अनुसार ग्लूकोज, सार्बिटाल, फ्रूक्टोस, सुक्रोज, माल्टोज एवं अरेबिनोज हरड़ के प्रमुख कार्बोहाइड्रेट हैं। इसमें 18 प्रकार के अमीनों अम्ल मुक्त अवस्था में पाए जाते हैं। फॉस्फोरिक तथा सक्सीनिक अम्ल भी इसमें होते हैं। फल जैसे–जैसे पकता जाता है, उसका टैनिक अम्ल कम एवं अम्लता बढ़ती है। बीज मज्जा में एक तीव्र तेल होता है।

इन तत्वों के संयोजन में विभिन्न स्वास्थ्य लाभ होते हैं, जैसे कि पाचन को सुधारना, वायरल इंफेक्शन से लड़ना, त्वचा की सुरक्षा, और एंटीऑक्सीडेंट्स के रूप में कार्य करना। इसके अलावा, हरड़ में फाइबर, प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम, मैग्नीशियम, विटामिन सी और अन्य पोषक तत्व होते हैं जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह सभी पोषण संबंधी और औषधीय गुण हरड़ को एक उत्कृष्ट स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं, जिससे यह शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रखने में मदद करते हैं। इसका उपयोग विभिन्न रूपों में किया जा सकता है, जैसे कि पाउडर, चूर्ण और काढ़ा।

हरड़ के फल

हरड़ के नाम : आम भाषा में हरीतकी को हरड़ कहा जाता है। वहीं आयुर्वेद में इसे कई नामों से जाना जाता है जैसे कायस्था, प्राणदा, अमृता, मेध्या, विजया वगैरह। हरीतकी या हरड़ का आयुर्वेद में कई दवाओं में उपयोग किया जाता है। हिंदी–हरड, संस्कृत और बंगाली–हरीतकी, तेलुगु–करकचित्तु, तमिल–कडककया, मराठी और गुजराती–हरड़े, अंग्रेजी–हॉरर, चेबुलिस मीरोबलान।

हरड़ की पोषण मूल्य की जानकारी

हरड़, कई पोषक तत्वों से भरपूर होती है। इसमें विटामिन सी, खनिज, एंटीऑक्सिडेंट्स और आहार रेशे अधिक मात्रा में पाए जाते हैं जो शरीर के लिए बहुत फायदेमंद होते हैं। इसके अन्य भागों में कई औषधीय गुण होते हैं जिनका उपयोग विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं को ठीक करने के लिए किया जाता है। हरड़ के पौष्टिक गुण तालिका 1 में दिए गए हैं।

तालिका 1: हरड़ के पौष्टिक गुण

पोषण मूल्य	प्रति 100 ग्राम	पोषण मूल्य	प्रति 100 ग्राम
कैलोरी	242कैलोरी	मैग्नीशियम	34.57 पी.पी.एम
प्रोटीन	18.45 ग्राम	कॉपर	7.33 पी.पी.एम
कार्बोहाइड्रेट	36.31 ग्राम	जिंक	20.18 पी.पी.एम
वसा	2.97 ग्राम	विटामिन सी	6.24 मि.ग्रा.
फाइबर	16.45 ग्राम	एंटीऑक्सिडेंट्स	77 प्रतिशत
आयरन	30.05 पी.पी.एम	–	

विटामिन: हरड़ में विटामिन ए और विटामिन सी की कुछ मात्रा पाई जाती है, जो शरीर के स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक होती हैं।

खनिज: कैल्शियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम एवं फॉस्फोरस जैसे खनिज हरड़ में मौजूद होते हैं, जो हड्डियों, दाँतों और शरीर के अन्य भागों को स्वस्थ रखने में मदद करते हैं।

रेशा: हरड़ रेशे से भरपूर होता है जो कब्ज को दूर कर पाचन सुधारने में मदद करता है।

एटीऑक्सीडेंट्स: हरड़ में प्रचुर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं जैसे कि फ्लावोनॉयड्स, जो स्वस्थ रक्तचाप और हृदय के लिए लाभकारी हो सकते हैं।

टैनिन: हरड़ में टैनिन होते हैं जो आंतों को स्वस्थ रखने और पाचन सुधारने में मदद कर सकते हैं।

गैलिक अम्ल: हरड़ में गैलिक अम्ल का मौजूद होना स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होता है।

फ्लावोनॉयड्स: यह प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं जो शरीर को विषाक्तता से बचाने में मदद करते हैं।

सुगंध तत्व: हरड़ में विभिन्न सुगंधता और अरोमा तत्व होते हैं जो इसे औषधि और खाद्य में उपयोगी बनाते हैं।

सेनोसाइड्स: ये तत्व लैक्टिक और सिट्रिक अम्ल के साथ होते हैं, जो हरड़ के औषधिक गुणों को बढ़ाते हैं।

हरड़ के स्वास्थ्य लाभ

हरड़ के सेवन के निम्नलिखित स्वास्थ्य लाभ होते हैं:

पाचन तंत्र का सुधार: हरड़ पाचन को सुधारता है और अपच, एसिडिटी, गैस और कब्ज को कम करने में मदद करता है।

वायरल इंफेक्शन का इलाज: हरड़ में एंटीवायरल गुण होते हैं जो वायरल इंफेक्शन के खिलाफ लड़ने में मदद करते हैं।

जीवाणुरोधी गुण: यह बैक्टीरियल इंफेक्शन के इलाज में सहायक हो सकता है और मुख्य रूप से मुंह, गले, और पेट के रोगों को दूर करने में मदद करता है।

विषाक्तता रोधक: हरड़ में प्रचुर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं जो शरीर के रोग प्रतिरोध को बढ़ाने में मदद करते हैं।

दिल के लिए लाभकारी: हरड़ के सेवन से रक्तचाप को नियंत्रित किया जा सकता है और हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा दिया जा सकता है।

मधुमेह नियंत्रण में मदद: हरड़ का सेवन इन्सुलिन संवेदनशीलता को बढ़ा सकता है और मधुमेह के प्रबंधन में मदद कर सकता है।

त्वचा स्वास्थ्य: हरड़ में प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं जो त्वचा को स्वस्थ और चमकदार बनाए रखने में मदद कर सकते हैं।

मसूड़ों के रोगों का इलाजः हरड़ के सेवन से मुँह के मसूड़ों के रोगों में लाभ हो सकता है और मसूड़ों की संबंधित समस्याओं को कम कर सकता है।

हरड़ का खाद्य रूप में उपयोग

हरड़ का उपयोग भोजन में विभिन्न रूपों में किया जा सकता है, जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं:

हरड़ का पाउडरः हरड़ का पाउडर बनाकर इसे दाल और सब्जियों के साथ मिला कर खाया जाता है। इससे भोजन के स्वाद में वृद्धि होती है और पाचन में सुधार होता है।

हरड़ का रसः हरड़ का रस पानी में मिलाकर पीने से भोजन के स्वाद में वृद्धि होती है और पाचन को सुधारा जा सकता है।

हरड़ का शर्बतः हरड़ का शर्बत बनाकर इसे ठंडे पानी के साथ पीने से गर्मियों में शरीर को ठंडा रखने में मदद मिलती है और पाचन सुधरता है।

हरड़ की चटनीः हरड़ को चटनी बनाकर साथ में रोटी, परांठा या चावल के साथ सेवन किया जाता है। यह चटनी अधिक स्वादिष्ट और पोषण से भरपूर होती है।

मुरब्बाः हरड़ के फल को शहद और मिश्री के साथ मिलाकर मुरब्बा बनाया जाता है, जो मधुमेह और अन्य रोगों के लिए उपयोगी होती है।

आचारः हरड़ के फल को खट्टी मिर्च, नमक और राई के साथ मिलाकर आचार बनाया जाता है, जो भोजन के साथ सेवन किया जाता है।

त्रिफलाः हरड़ के साथ बिभीतक (बहेड़ा) और आंवला को मिलाकर त्रिफला बनता है। त्रिफला एक आयुर्वेदिक औषधि है जो पाचन को सुधारता है, विषाक्तता को कम करता है, रक्तशोधक गुण रखता है, एवं विभिन्न रोगों के इलाज में मदद करता है।

च्यवनप्राशः हरड़ च्यवनप्राश एक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक औषधि है जो स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और रोगों से बचाव करने के लिए प्रयोग की जाती है। यह च्यवनप्राश अनेक प्राकृतिक चिकित्सीय जड़ी–बूटियों, हरड़ के साथ आंवला, बहेड़ा और कई अन्य उपयोगी औषधियों का मिश्रण होता है। यह चवनप्राश साल में कई बार लिया जा सकता है, विशेष रूप से सर्दियों में, ताकि शरीर को बीमारियों से लड़ने की शक्ति मिल सके।

निष्कर्ष

हरड़ का मानव पोषण में उपयोग व्यापक और बहुमुखी है। यह न केवल पाचन और प्रतिरक्षा प्रणाली को बेहतर बनाता है बल्कि वजन प्रबंधन, डिटॉक्सिफिकेशन, त्वचा स्वास्थ्य, मधुमेह नियंत्रण और संज्ञानात्मक स्वास्थ्य में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हरड़ का उपयोग भोजन में अनेक रूपों में किया जा सकता है और इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होता है। इसे सेवन करने से पहले डॉक्टर की सलाह लेना हमेशा उत्तम होता है।

समाप्त

22

मृणालिनी प्रेरना
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर–334001 (राजस्थान)
E-mail: mranalini.prerna@icar.gov.in

मनुष्य में परजीवी संक्रमण के इलाज के लिए औषधीय पौधों का उपयोग

संक्रमित लोग अक्सर जब अपने हाथों को पर्याप्त रूप से नहीं धोते, तो अपना संक्रमण फैलाते हैं। क्योंकि उनके हाथ दूषित होते हैं, जो कुछ भी वे बाद में छूते हैं वह परजीवियों, जो पाचन तंत्र विकारों का कारण बनता है, से दूषित होता है। अगर दूषित हाथों वाले लोग रेस्टोरेंट, किराने की दुकानों या घरों में भोजन को छूते हैं तो भोजन दूषित हो सकता है। फिर, जो कोई भी उस भोजन को खाता है, उसे संक्रमण हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि दूषित हाथों वाला व्यक्ति किसी वस्तु को छूता है, जैसे कि टॉयलेट का दरवाजा, जो दूषित हो सकता है। अन्य लोग जो दूषित दरवाजे को छूते हैं और फिर अपनी उंगली को अपने मुंह से छूते हैं, वे मल–मौखिक मार्ग के माध्यम से संक्रमित हो सकते हैं।

संक्रमण फैलने के अन्य तरीकों में शामिल हैं

- सीधा सीवरेज से दूषित पीने का पानी (खराब स्वच्छता वाले क्षेत्रों में)।
- कच्चे शैलफिश (जैसे सिप्पी और क्लैम) को खाने से जो दूषित पानी में पाली गई हो।
- दूषित पानी में धोए गए कच्चे फल या सब्जियां खाना।
- पूल में तैरना जो पर्याप्त रूप से कीटाणुरहित नहीं किया गया हो या झीलों या समुद्र के कुछ हिस्सों में जो सीवरेज से दूषित हो।
- कुछ परजीवी, जैसे हुकवर्म, पैरों के तलवों की त्वचा माध्यम से प्रवेश करते हैं, जब कोई व्यक्ति दूषित मिट्टी पर नंगे पैर चलता है।
- अन्य, जैसे कि शिस्टोसोमस, जो फ्लूक्स हैं, त्वचा के माध्यम से प्रवेश करते हैं, जब कोई व्यक्ति परजीवी युक्त पानी में तैरता है या स्नान करता है।

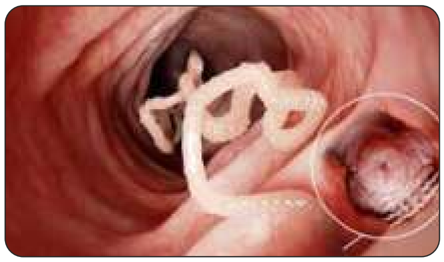

परजीवी संक्रमण के उपचार के लिए औषधीय पौधों का उपयोग प्राचीन काल से एक लंबा इतिहास रहा है। पारंपरिक चिकित्सक लंबे समय से अमिबायसिस, जिआर्डियासिस और फीताकृमि संक्रमण सहित विभिन्न परजीवी संक्रमणों के इलाज के लिए पौधों का उपयोग करते रहे हैं। दुनिया भर में परजीवी संक्रमणों की बढ़ोतरी हो रही है, जो चिंता का विषय है। इस वृद्धि के पीछे, खराब स्वच्छता और जलवायु परिवर्तन शामिल हैं। परजीवी संक्रमणों के इलाज के लिए आमतौर पर सिंथेटिक कृमिनाशक दवाओं का उपयोग किया जाता है। हालांकि, इन दवाओं के कुछ नुकसान भी हैं।

- विषाक्तताः सिंथेटिक कृमिनाशक दवाएं मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकती हैं। इनके लंबे समय तक संपर्क में रहने से गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं।
- प्रतिरोधः परजीवी समय के साथ इन दवाओं के प्रतिरोधी बन सकते हैं, जिससे उनका इलाज करना मुश्किल हो जाता है।

औषधीय पौधों की कृमिनाशक गतिविधि का मूल्यांकन करने के लिए अब कई नियंत्रित प्रायोगिक अध्ययन किए गए हैं। इन अध्ययनों से पता चला है कि विभिन्न प्रकार के पौधों में कई परजीवी के खिलाफ शक्तिशाली कृमिनाशक गतिविधि होती है। मनुष्य में इस्तेमाल किए जा सकने वाले कृमिनाशक क्षमता वाले कुछ सबसे अधिक प्रभावी पौधे इस प्रकार हैं ।

मीठी नीमः मीठा नीम सिर्फ भोजन में स्वाद बढ़ाने वाला पौधा ही नहीं है बल्कि एक आयुर्वेदिक औषधि भी है। इस पौधे की पत्तियां विटमिन—सी के गुणों से भरपूर होती हैं। इस कारण मीठे नीम का सेवन रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का काम करता है। यह भी पाया गया है कि यह पौधा विभिन्न परजीवी प्रोटोजोआ के खिलाफ भी प्रभावी है, जिनमें मलेरिया, अमीबा और जीओर्डियासिस शामिल हैं।

लौंगः एक महान प्राकृतिक परजीवी विरोधी जड़ी बूटी है, क्योंकि इसके तेल में यूजेनॉल नामक एक शक्तिशाली रासायनिक यौगिक होता है। ये कई स्वास्थ्य लाभों के लिए जाना जाता है। इसमें औषधीय गुण भी होते हैं जैसे कि एंटीसेप्टिक, एंटीवायरल और एंटीमाइक्रोबियल आदि। इसके एंटीऑक्सीडेंट गुण शरीर को फ्री रेडिकल्स से होने वाले नुकसान से बचाते हैं। लौंग में मौजूद एल्केलॉइड, ग्लाइकोसाइड और अन्य जैविक रूप से सक्रिय यौगिकों में अद्भुत कृमिनाशक क्षमता होती है। यह विभिन्न प्रकार के हुकवर्म, फ्लैटवर्म, टेपवर्म और अन्य आंतरिक परजीवियों को मारने या कमजोर करने में प्रभावी है। एक कप गरम पानी में पिसी हुई लौंग का सेवन करने से परजीवी नष्ट हो जाते हैं ।

सौंफः इसके बीज सदियों से पारंपरिक चिकित्सा में पाचन, भूख और मूत्रवर्धक गुणों के लिए उपयोग किए जाते रहे हैं। यह विभिन्न प्रकार के पेट दर्द, सूजन, मतली और गैस जैसे लक्षणों से राहत दिलाने में भी प्रभावी माना जाता है, जो कि अक्सर परजीवी संक्रमणों के कारण होते हैं। सौंफ के बीजों को पानी में उबालकर चाय बनाई जा सकती है और सौंफ के बीजों का मिश्रण बनाकर भोजन में या चबाकर सेवन किया जा सकता है।

नीमः इस पेड़ में व्यापक औषधीय गुण होते हैं जैसे कि एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को बैक्टीरिया के विकास को रोकने और आनुवंशिक मार्गों के मॉड्यूलेशन के माध्यम से बीमारियों की रोकथाम और उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नीम में कई जैव सक्रिय यौगिक होते हैं, जैसे एल्केलॉइड और ग्लाइकोसाइड, जो विभिन्न प्राकृतिक परजीवी नियंत्रण के खिलाफ प्रभावी विकल्प है। एक चम्मच सूखे नीम के पत्तों के मिश्रण को पानी में मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है

हल्दीः हल्दी पेट के परजीवी के लिए एक उत्कृष्ट प्राकृतिक उपचार है। यह एक आंतरिक एंटीसेप्टिक के रूप में कार्य करता है और इसमें रोगाणुरोधी गुण होते हैं जो आंतों के परजीवीयों को मारने में मदद करते हैं। साथ ही, हल्दी सूजन, अत्यधिक गैस और पेट दर्द से राहत दिलाने में मदद करती है, जो आंतों में परजीवों के कुछ सामान्य लक्षण हैं। कच्ची हल्दी का रस निकाल कर सुबह खाली पेट पीने से लाभ मिलता है ।

कच्चा पपीताः कच्चे पपीते के फल का लेटेक्स एंजाइम पपेन से भरपूर होता है, जिसमें कृमिनाशक गुण होते हैं जो आंतों के परजीवों को प्रभावी ढंग से नष्ट कर देता है। साथ ही, पपीते के बीज में कैरिसिन नामक पदार्थ होता है, जो आंतों के परजीवों को बाहर निकालने में मदद करता है। कच्चा पपीता, शहद के साथ, आंतों के परजीवों से मुक्ति पाने और समग्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाने का एक प्राकृतिक और प्रभावी तरीका है ।

कद्दू के बीजः इसके बीज आंत्र पथ में परजीवी कृमि संक्रमण में मदद करने के लिए जाने जाते हैं। परजीवी अंडों के खिलाफ कृमिनाशक होने में सक्षम हैं, क्योंकि उनमें प्राकृतिक वसा होता है जो उनके लिए जहरीला होता है। इसके अतिरिक्त, कद्दू के बीज विटामिन बी और जिंक के उत्कृष्ट स्रोत हैं जो प्रतिरक्षा प्रणाली को बेहतर ढंग से काम करने में मदद करते हैं। कद्दू के बीजों का काढ़ा पीने से आंतों के परजीवों को बाहर निकालने में मदद करता है। पाचन क्रिया को दुरुस्त रखता है, पेट की खराबियों को दूर करने में सहायक होता है।

ध्यान दें

- किसी भी नए उपचार को अपनाने से पहले स्वास्थ्य विशेषज्ञ से सलाह लेना जरूरी है ।
- औषधीय पौधों के उपयोग के बारे में अधिक जानकारी के लिए किसी योग्य आयुर्वेदिक चिकित्सक से परामर्श ले सकते हैं।

समाप्त

23

ईशानी शौनक[1], चारु लता[1*], निताक्षी शर्मा[1], अजीत सिंह[1], रजनीश शर्मा[2], प्रमोद प्रसाद[1] एवं ओम प्रकाश गंगवार[1]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, शिमला–171002 (हिमाचल प्रदेश)
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर–342003 (राजस्थान)
*E-mail: charusharmabiotech@gmail.com

आधुनिक कृषि और पर्यावरण पर इसका प्रभाव

भारत में कृषि आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन है, क्योंकि हमारे देश की बहुत बडी जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। बढ़ती हुई जनसंख्या को मध्यनज़र रखते हुए पारंपरिक कृषि की तकनीकी में आधुनिक ज्ञान का समावेश करके आधुनिक कृषि का जन्म हुआ। आधुनिक कृषि एक ऐसी नवप्रवर्तन शैली है जिसमें स्वदेशी ज्ञान के साथ आधुनिक ज्ञान, उपकरण और महत्वपूर्ण पहलू जैसे खेत की तैयारी, खेत का चुनाव, खरपतवार नियंत्रण, पौध सरंक्षण, फसलोत्तर प्रबंधन, फसल की कटाई आदि जैसी महत्वपूर्ण कृषि पद्धतियों का उपयोग किया जाता है। इस तरह की कृषि में संसाधनों का अनुकूलन होता है जिससे किसानों की दक्षता और उत्पादकता बढ़ती है। इस प्रणाली ने समूचे देश में अनाज के उत्पादन करने की प्रक्रिया में भारी योगदान दिया है। इस प्रणाली के माध्यम से हमें खाद्य पदार्थों की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। आधुनिक कृषि में पशु पालन, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन और मशरूम की खेती आदि शामिल है। जिससे हमें विभिन्न उत्पाद जैसे कि दूध, मांस, अंडे, मछली, मशरुम आदि प्राप्त होते हैं। आधुनिक कृषि किसी भी देश की पैदावार, खाद्य सुरक्षा और फसल की गुणवत्ता में योगदान देती है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ अनाज का उत्पादन सुगम नहीं है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले किसानों के जीवन में आर्थिक विकास एवं सुधार होता है। कृषि कार्य में उपयोगी आधुनिक विधियाँ भी हैं जैसे बेहतर बीजों का उपयोग, उचित सिंचाई तथा रासायनिक खादों व कीटनाशकों का उपयोग। आधुनिक कृषि में ट्रैक्टर, कम्बाइन हार्वेस्टर व सिंचाई के लिये ट्यूबवेलों का उपयोग किया जाता है। उच्च उत्पादकता वाले बीजों के माध्यम से खाद्य उत्पादन में भारी वृद्धि को हरित क्रांति कहा गया है। इस लेख के माध्यम से आधुनिक कृषि की विभिन्न विधियों का वर्णन तथा इनसे कृषकों को होने वाले लाभ के बारे में अवगत कराया गया है। आधुनिक कृषि का मुख्य उद्देश्य अच्छी फसल के साथ–साथ वायु, जल, भूमि व मानवीय स्वास्थ्य का संरक्षण करना है। साथ ही साथ यह लेख, आधुनिक कृषि के महत्व तथा दुश्प्रभावों (जो मानव, अन्य जीवों तथा पर्यावरण को नुकसान पहुंचाते हैं) के बारे में किसानों को अवगत कराएगा।

आधुनिक कृषि की विभिन्न पद्धतियां

- हरित क्रांति
- उच्च उत्पादकता वाली फसलों की किस्में
- बेहतर किस्म के बीजों, कृषि यंत्रों और सिंचाई की आवश्यकता
- खादों व कीटनाशकों की आवश्यकता
- मशरूम (खुम्बी) की बुआई
- पशुपालन व मत्स्य पालन की विधियाँ
- हाइड्रोपोनिक्स

हरित क्रांति

हरित क्रांति का अर्थ है कि अधिक उपज देने वाली किस्मों के बीजों का उपयोग करके कृषि उपज में असाधारण वृद्धि करना। आधुनिक तकनीकियों के प्रयोग द्वारा नयी (विशेषकर अनाज) किस्मों के विकास से उत्पादन को कई गुणा बढ़ाना। इसकी शुरुआत 1960 के दशक में हुई थी, जिसके दौरान भारत ने कृषि में प्रौद्योगिकी को अपनाकर एक आधुनिक औद्योगिक प्रणाली में बदलाव किया था। उच्च उत्पादन वाली धान व गेहूँ की किस्में हरित क्रांति के मुख्य तत्व रहे हैं, परन्तु कुछ कृषि

विशेषज्ञों ने मक्का, सोयाबीन व गन्ने जैसे अन्य अनाजों को भी इस श्रेणी में शामिल किया है जिनके उत्पादन में नई तकनीकों द्वारा फसलों में कई गुणा वृद्धि हुई है। नोबल पुरूस्कार विजेता डॉ. नॉर्मन बोरलॉग द्वारा शुरू किए गए बड़े हरित क्रांति प्रयास को भारत में कृषि वैज्ञानिक स्वर्गीय डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने लागू किया था। भारत के कृषि वैज्ञानिक डॉ. स्वामीनाथन के नेतृत्व में यह नॉर्मन बोरलॉग द्वारा शुरू किए गए बड़े हरित क्रांति प्रयास का हिस्सा बनी। उदाहरण के लिये, जब एक मैक्सिकन गेहूँ की किस्म (ऊँची उत्पादकता एवं सिंचाई प्रभावी) का उतने ही अच्छे स्तर की भारत की गेहूँ की किस्म (रोग की प्रतिरोधक क्षमता एवं अच्छी गुणवत्ता) से आधुनिक तकनीक द्वारा संकरण किया गया तब एक उच्च उत्पादकता वाले और बीमारी से लड़ने में सक्षम गेहूँ की किस्म की उत्पत्ति हुई। जिसमें से कुछ मुख्य किस्मों के नाम हैं, 'कल्याण सोना', 'सोनालिका' और 'शर्बती सोनोरा' इत्यादि।

भारत में उपयोग होने वाली उच्च उत्पादकता के पौधों की किस्में

हरित क्रांति से पहले कृषि के क्षेत्र में उन्नत देश के मुकाबले भारत की औसत राष्ट्रीय उत्पादकता की दर केवल 800 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर के स्तर की थी। जो विकसित देशों की तुलना में बहुत कम थी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के भूतपूर्व महानिदेशक डॉ. स्वामीनाथन ने पौधों की उत्पादकता व उत्पादन के विभिन्न पहलुओं का गहरा विश्लेषण किया तथा उन कारणों की तह तक पहुँचने की कोशिश की, जिनके कारण यह स्थिति मौजूद थी। उन्होंने यह निष्कर्श निकाला कि उस समय प्रयोग में आने वाली लम्बी किस्मों का प्रचलन ही अधिक उपज के मार्ग में एक बाधा सिद्ध हो रही थी। सन् 1970–80 के दशक के दौरान, गेहूँ की जननिक प्रक्रियाओं के माध्यम से नए किस्म के बीजों वाले, उच्च उत्पादकता के छोटे आकार के गेहूँ की किस्मों का विकास किया गया। इसी दौरान कुछ महत्त्वपूर्ण किस्में 'कल्याण सोना', 'शर्बती सोनारा', 'सोनालिका' जैसी उच्च उत्पादकता की किस्मों का विकास हुआ जिन्होंने अधिक खाद और उचित सिंचाई करने पर अधिक पैदावार दी।

भारतीय जननिक वैज्ञानिकों के अनुरोध पर, सन् 1963 में भारत सरकार ने मैक्सिको देश से प्रोफेसर नॉर्मन ई बोरलौग को आमंत्रित किया ताकि पौधों की बौनी (कम आकार) किस्मों के उत्पादन की संभावनाओं का वे भारतवर्ष में मूल्यांकन करें। भारत के कई क्षेत्रों का दौरा करने के पश्चात् उन्होंने भारत में मैक्सिकी उद्भव के ही छोटे आकार के गेहूँ की किस्मों को उगाने का प्रस्ताव रखा। वे इस निष्कर्ष पर इसलिए पहुँचे क्योंकि मैक्सिको व भारत का मौसम व भूमि दोनों तुलनात्मक रूप से एक समान थीं। उनके सुझाव पर लरमा राजो व सोनोरा–64 नामक दो किस्मों का चयन किया गया और उन्हें हमारे सिंचित खेतों में बोने के लिये उपयोग किया गया। इन किस्मों के प्रयोग से गेहूँ की उत्पादकता कई गुना बढ़ गयी और हमारे गेहूँ के निर्यात में क्रांति आ गई। डॉ. बोरलॉग, मैक्सिको सरकार तथा रॉकफेलेर फाउंडेशन की सहकारी योजना के अन्तर्गत गेहूँ अनुसंधान व विकास कार्यक्रम के मुखिया के रूप में जुड़े। सन् 1966 में उनकी गेहूँ के विकास की गुपचुप क्रांति ने संसार भर का ध्यान आकर्षित किया तथा मैक्सिको में ही अन्तर्राष्ट्रीय गेहूँ व मक्का के विकास का केन्द्र स्थापित किया गया। सन् 1970 में उन्हें 'हरित क्रांति' लाने के लिये नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

बेहतर किस्म के बीजों साथ अन्य पहलु

आधनिक कृषि के अंर्तगत उत्तम बीजों के साथ–साथ उचित सिंचाई व आधुनिक कृषि यंत्रों की आवश्यकता भी होती है। खेतों को तैयार करना, फसल की बुआई, कटाई व सिंचाई; सभी प्रक्रियाओं का उपयोग उत्पादकता में वृद्धि करता है। सीमित भूमि क्षेत्र में अधिक उत्पादन के लिये उत्तम स्तर के बीजों का प्रयोग अति आवश्यक है। जननिक विज्ञान के माध्यम से बीजों की गुणवत्ता में विकास अब एक आम बात हो गई है। जैविक तकनीक के ज्ञान के उपयोग से, अब बेहतर स्तर के बीजों का

उत्पादन हो रहा है। बीजों की गुणवत्ता का विकास उच्च उत्पादकता वाली किस्मों के निर्माण के लिये हो रहा है, जैसे कि बेहतर स्तर के पोषक तत्वों से युक्त बीजों के निर्माण में जिनमें दालों में प्रोटीन की गुणवत्ता, गेहूँ के बेहतर पकने की गुणवत्ता, फलों और सब्जियों की संरक्षण की गुणवत्ता तथा तेल का निर्माण करने वाले पौधों की अधिक गुणवत्ता व मात्रा सम्मिलित है। रोग प्रतिरोधक एवं पीड़क प्रतिरोधक क्षमता वाले बीजों को अधिक कीटनाशकों की आवश्यकता नहीं होती। इससे न केवल पर्यावरण का प्रदूषण से बचाव होता है अपितु कीटनाशकों की खरीददारी में जो पैसा खर्च होता है वह भी बचता है। पौधों को विभिन्न प्रकार की कठिनाईयुक्त स्थितियों में भी उगाया जा सकता है। इससे बुआई के क्षेत्र का फैलाव होता है। उदाहरणतः सूखे, खारे या जलीय क्षेत्रों की बुआई के लिये इन किस्मों का प्रयोग किया जा सकता है।

खादों व कीटनाशकों की आवश्यकता

आधनिक कृषि के चलते पैदावार बढ़ाने के लिए किसान अधिक उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं। ये उर्वरक मिट्टी के खोए हुए पोषक तत्वों को पुनःस्थापित करते हैं। किसान आमतौर पर प्राकृतिक खाद का प्रयोग करते हैं जो पौधों और पशुओं के अपशिष्ट पदार्थों से बनाई हुई एक किस्म की खाद है जिसे कम्पोस्ट भी कहते हैं। कार्बनिक खाद मवेशियों के गोबर, पशुओं द्वारा छोड़े गए अपशिष्ट पदार्थ, भूमि पर गिरी सूखी टहनियों, पत्तों द्वारा सूक्ष्मजीवों की प्रक्रिया से उत्पन्न होती हैं जिससे पर्यावरण, भूमि और जल किसी भी प्रकार से प्रदूषित नहीं होता। कृषक पौधों के विकास के लिए रासायनिक खादों को भी प्रयोग में लाते हैं जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फेट, पोटैशियम इत्यादि। खादों को भूमि में इसलिए डाला जाता है ताकि पेड़ पौधों की जड़ें उन्हें सोख लें। इन खादों का प्रयोग बड़ी ही सावधानी और बुद्धिमत्ता से होना चाहिए क्योंकि गैर जिम्मेदारी से उर्वरकों का उपयोग पर्यावरण के प्रदूषण का मुख्य कारण बन सकता है जिसके फलस्वरूप बिना प्रयोग में लाए गए उर्वरक नदियों, तालाबों के सतही जल व भूमि के नीचे के जल में प्रवेश करते हैं और पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। अधिक मात्रा में इनका प्रयोग पर्यावरण को प्रदूषित करता है।

मशरूम (खुम्बी) की बुआई

भारत में मशरूम की खेती आधुनिक कृषि प्रणाली के अंतर्गत की जाने लगी है। भारत में मशरूम की खेती का पहला प्रयास 1940 में कोयंबटूर के कृषि महाविद्यालय में शुरू हुआ था। यहाँ धान के भूसे पर मशरूम पर काम शुरू किया गया। बाद में मशरूम पर परीक्षण, भारत में कई अन्य अनुसंधान क्षेत्रों पर शुरू हुआ। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने हिमाचल प्रदेश सरकार के सहयोग से 1961 में एक परियोजना शुरू की जिसका नाम "हिमाचल प्रदेश में मशरूम खेती का विकास" रखा गया था। मशरूम की खेती के लिए जिस बीज का उपयोग किया जाता है उसे स्पॉन कहते हैं। मशरूम का अच्छा उत्पादन करने लिए यह बुनियादी आवश्यकता है कि बीज सही और अच्छी किस्म का उच्च गुणवत्ता वाला होना चाहिए। एक स्पॉन में कोई चिपचिपाहट या कोई गंध या दुर्गंध नहीं होनी चाहिए।

पशुपालन व मत्स्य पालन की आधुनिक विधियाँ

डेयरी, मांस, मुर्गी पालन, जलकृषि, मधुमक्खी पालन आदि पशुपालन की कुछ शाखाएँ हैं। आधुनिक कृषि का प्रयोग करके इन शाखाओं में भी सुधार लाने का प्रयास किया गया। इसलिए इस व्यवसाय का अभ्यास विश्वव्यापी है। पर्यावरणीय प्रभाव और पशु कल्याण पशुपालन के दो प्रभाव हैं। पशुपालन की शुरुआत लगभग 13,000 ईसा पूर्व नवपाषाण काल से हुई। यह एक दैनिक गतिविधि है और इस व्यवसाय में मवेशी, भेड़, बकरी और सूअर पालतू बनाये जाने वाले पहले जानवर थे जिन्हे दूध, अंडे, मांस और फाइबर के लिए पाला जाता था। मत्स्य पालन भारत में लोकप्रिय व्यवसायों में से एक है और इसलिए

भारत में इसका बहुत अभ्यास किया जाता है। मछली पालन के लिए उपयोग की जाने वाली विधियों में एक पारंपरिक जाल विधि है और दूसरी मछली के हुक और गियर जैसे आधुनिक उपकरणों का उपयोग है।

हाइड्रोपोनिक

हाइड्रोपोनिक आधुनिक कृषि के अंर्तगत आने वाली एक नव तकनीकी है। हाइड्रोपोनिक एक प्रकार की बागवानी और जलकृषि का एक उपसमूह है जिसमें मिट्टी के बजाय पानी में आधारित पोषक तत्वों का उपयोग करके पौधों विशेषकर औषधीय पौधों को उगाया जाता है। इसमें एक समग्र सब्सट्रेट या वर्मीक्यूलाईट, नारियल कॉयर या पर्लाइट जैसे मीडिया शामिल होते हैं जिससे स्थलीय या जलीय पौधे अपनी जड़ों को पौष्टिक तरल के संपर्क में रखकर विकसित हो सकते हैं। हाइड्रोपोनिक उत्पादन प्रणालियों का उपयोग छोटे किसानों और वाणिज्यिक उद्यमों द्वारा किया जाता है। इस प्रणाली में उपयोग किए जाने वाले पोषक तत्व विभिन्न कार्बनिक या अकार्बनिक स्रोतों से आ सकते हैं, जिनमें मछली का मल, बत्तख की खाद, खरीदे गए रासायनिक उर्वरक, या कृत्रिम पोषक समाधान शामिल हैं।

पर्यावरण पर आधुनिक कृषि का प्रभाव

अभी तक हमने आधुनिक कृषि से होने वाल फायदों पर प्रकाश डाला है। आधुनिक कृषि से हर क्षेत्र में क्रांति आई है और किसानों की आय में वृद्धि हुई है। इस प्रणाली से न केवल भोजन का उत्पादन बढ़ा है बल्कि जैव ईंधन की सामर्थ्यता भी बढ़ी है लेकिन साथ ही साथ इसने हमारी पर्यावरण की समस्याओं को भी बढ़ाया है जिनकी व्याख्या इस प्रकार हैः

भू–क्षरण

भू–क्षरण अर्थात भूमि के कणों का अपने मौलिक स्थान से हटना एवं दूसरे स्थान पर एकत्रित होना। इस क्रिया को मृदा अपरदन से भी जाना जाता है। आधुनिक कृषि में अत्यधिक जल का प्रयोग करने के कारण खेत के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी का निष्कासन हो जाता है। जिसकी वजह से मिट्टी में पोषक तत्व कम होने लगते हैं और मिट्टी की उर्वरता में कमी के कारण उत्पादकता कम हो जाती है। यह ग्लोबल वार्मिंग को भी बढ़ाता है क्योंकि अत्यधिक जल भराव के कारण जल निकायों की गाद से मृदा में उपस्थित कार्बन वायुमंडल में उत्सर्जित हो जाता है।

भूमि–जल का प्रदूषित होना

सिंचाई का एक महत्वपूर्ण स्रोत है भूमिगत जल। जो आधुनिक कृषि के अंर्तगत अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरक के इस्तेमाल से दूषित हो चूका है। इस उर्वरक का स्तर अगर भूमिगत जल में 25 मिलिग्राम/लीटर से अधिक हो तो स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है जैसे कि ब्लू बेबी सिंड्रोम जो ज्यादातर शिशुओं को प्रभावित करता है।

जलभराव और लवणता

जलभराव तब होता है जब पौधे के जड़ क्षेत्र में बहुत अधिक पानी होता है, जिससे जड़ों को मिलने वाली ऑक्सीजन की आपूर्ती कम हो जाती है। यह पौधों की जड़ों को ऑक्सीजन से वंचित कर देता है, पोषक तत्वों को अवशोषित करने की उनकी क्षमता में बाधा डालता है, यहाँ तक कि यह पौधों की मृत्यु का कारण बनता है। लवणता पानी में घुले हुए लवणों की वजह से होती है, इसमें केवल सोडियम क्लोराइड ही नहीं, बल्कि सभी लवण शामिल होते हैं। जलभराव और लवणता की दोहरी समस्या को हल करने के लिए सबसे आम समाधान है जल निकासी स्थापित करना, अधिक सिंचाई जल उपलब्ध कराना, मौजूदा नालियों की नियमित रूप से सफाई करना और निम्न भूजल स्तर को बनाए रखना है। कृषि के लिए जल

निकासी का उचित प्रबंधन करना बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन किसान उत्पादकता बढ़ाने के चक्कर में अत्यधिक जल आपूर्ति करने लगते हैं जिसकी वजह से जल जमाव हो जाता है। इससे मिट्टी की लवणता बढ़ती है और उपजाऊ क्षमता कम हो जाती है।

सुपोषण

अधिक उर्वरकों के इस्तेमाल के कारण जब किसी भी जलाशय या जल स्रोत में कृत्रिम या गैर–कृत्रिम पदार्थों जैसे नाइट्रेट्स और फॉस्फेट की मात्रा अधिक हो जाती है वह सुपोषण कहलाता है। इसकी अधिकता के कारण जल में बायोमास अत्यधिक हो जाता और जल में ऑक्सीजन की मात्रा ख़त्म हो जाती है। जिससे जलीय जीवों व पौधों को ऑसीजन न मिलने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है।

कीटनाशक के अत्यधिक उपयोग के दुष्परिणाम

आधुनिक कृषि पद्धति में अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। कीटनाशक मिट्टी, पानी और अन्य वनस्पति को दूषित कर सकते हैं। कीड़ों या खरपतवारों के अलावा, कीटनाशक पक्षियों, मछलियों, लाभकारी कीड़ों और गैर–लक्षित पौधों सहित कई अन्य जीवों के लिए विषाक्त हो सकते हैं। कृषि उत्पादन में कीटनाशकों का व्यापक उपयोग मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्मजीवों को नुकसान पहुंचा सकता है, खासकर जब इन रसायनों का अत्यधिक उपयोग किया जाता है तो मिट्टी में रासायनिक यौगिक बनते हैं।

आधुनिक कृषि में कीटों को नष्ट करने और फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए कई कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। जैसे पहले कीटों को मारने के लिए आर्सेनिक, सल्फर, सीसा और पारा का इस्तेमाल किया गया था। लेकिन यह हानिकारक कीट के साथ लाभकारी कीट को भी नष्ट कर देता था। ये कीटनाशक बायोडिग्रेडेबल होते हैं जो मानव के खाद्य श्रृंखला में जुड़े जाते हैं जो मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है। इसीलिए आज के दौर में कृषि के लिए जैविक खाद के इस्तेमाल पर जोर दिया जा रहा है।

समाप्त

24

तनुजा पूनिया, कैलाश प्रजापत, शिवानी खोखर एवं मधु चौधरी
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: tannupoonia@gmail.com

जलवायु परिवर्तनः भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा

सतत् विकास लक्ष्य (एसडीजी) 2 का उद्देश्य 'भूखमरी को समाप्त करना, खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना, पोषण बढ़ाना और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देना है। हालांकि, खाद्य सुरक्षा भारत के लिए लंबे समय से खोया हुआ विकास लक्ष्य बना हुआ है। आर्थिक विकास के बावजूद, कुपोषण का बोझ अस्वीकार्य रूप से अधिक बना हुआ है। जलवायु परिवर्तन खाद्य उत्पादन, लागत और सुरक्षा पर इसके प्रभाव के साथ खाद्य सुरक्षा के लिए एक चुनौती बन गया है। अत्यधिक तापमान या पानी की कमी से फसल की वृद्धि बाधित होती है, पैदावार कम होती है तथा सिंचाई, मिट्टी की गुणवत्ता और पारिस्थितिकी तंत्र जिस पर कृषि निर्भर है, प्रभावित होती है। प्राकृतिक आपदाओं और पानी की कमी सहित विभिन्न कारक खाद्य सुरक्षा जोखिम को प्रभावित करते हैं।

मौसम का मिजाज में बदलाव

अत्यधिक वर्षा के कारण बाढ़ आना या वर्षा न होने के कारण सूखा पड़ना, देश में फसल उत्पादन के लिए बेहद हानिकारक होता है। सतत् कृषि उत्पादन, गंभीर व लगातार सूखे एवं बाढ़ जैसी मौसम स्थितियों में वृद्धि के बीच एक मजबूत संबंध का सुझाव देते हैं। विश्व बैंक के अनुसार, घरेलू खाद्य कीमतों ने वैश्विक खाद्य कीमतों के समान वृद्धि दिखाई है, जो सूखे के कारण और बढ़ गई है। भारत में घरेलू मांग 2008 के मुद्रास्फीति युग के दौरान बढ़ी और 2009 में एल नीनो मौसम के पैटर्न से बढ़ गई, जिसके परिणामस्वरूप सूखे की घटनाए बढ़ गई। चार प्रमुख फसलें– गेहूँ, चावल, मक्का और सोयाबीन – दुनिया की आधी कैलोरी प्रदान करती हैं। अपरिवर्तनीय जलवायु के मुकाबले, जलवायु परिवर्तन के मौजूदा मॉडल के चलते इन फसलों की पैदावार में 20–40 प्रतिशत, गेहूँ में 5–50 प्रतिशत, चावल में 20–30 प्रतिशत तथा, मक्का और सोयाबीन में 30–60 प्रतिशत की गिरावट की चेतावनी दी जा रही है।

शोध से संकेत मिलता है कि कार्बन निषेचन का संतुलित प्रभाव भारत में कृषि उत्पादन पर ग्लोबल वार्मिंग के नकारात्मक प्रभावों को कम करता है और कार्बन डाइऑक्साइड के बढ़ते स्तर से फसल की पैदावार बढ़ती है। ये घटनाएँ अक्सर कीटों और बीमारियों में तेजी से जुड़ी होती हैं। परिणामतः जलवायु परिवर्तन का खाद्य सुरक्षा पर विपरित प्रभाव पड़ता है, भले ही कीट और बीमारियाँ खाद्य फसलों और जानवरों पर हमला करती है, जिसकी परिणति खाद्य उपलब्धता में कमी के रूप में होती है।

भारत में कुल खेती योग्य भूमि का 65 प्रतिशत हिस्सा वर्षा आधारित कृषि का है, जो पानी की कमी के प्रति इस क्षेत्र की नाजुकता को दर्शाता है। देश के व्यापक क्षेत्र पहले से ही पानी की कमी की समस्या का सामना कर रहे हैं और गिरते भूजल स्तर के कारण कृषि के लिए भूजल पर निर्भरता कम हो रही है। इसके अलावा, मौसम संबंधी आपदाएं, खाद्य उत्पादन मूल्य श्रृंखला को प्रभावित करती हैं, जिससे सामाजिक पूंजी को पाटने के लिए एक बहु–विषयक रणनीति की आवश्यकता होती है। वर्तमान और भविष्य की कृषि आपदाओं के लिए कृषि और सामुदायिक लचीलापन बनाने के लिए इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुसंधान की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप पोषण सामग्री में गिरावट के साथ–साथ चावल और गेहूँ जैसी प्रमुख फसलों की उपज में महत्वपूर्ण रूप से गिरावट आई है। दलहन उत्पादन और पशुधन पर भी काफी प्रभाव देखा जा रहा है। कृषि उत्पादन प्रणालियों के अन्य घटक, विशेष रूप से पशु उत्पादन, अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं, फसल उपोत्पाद और अवशेष उनकी ऊर्जा आवश्यकताओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा प्रदान करते हैं।

जलवायु परिवर्तन के अपेक्षित हानिकारक प्रभाव निहितार्थ हैं क्योंकि कृषि गरीबी उन्मूलन का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। एकल फसल के स्थान पर फसल चक्र और मिश्रित फसल द्वारा खेती की गतिविधियों को बढ़ाने से मौसम की चरम सीमा और

अप्रत्याशित मानसून के प्रति संवेदनशीलता को कम करने में मदद मिल सकती है। वर्तमान और भविष्य की कृषि आपदाओं के लिए कृषि और सामुदायिक लचीलापन बनाने के लिए इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुसंधान की आवश्यकता है।

भारत में शहरी खाद्य असुरक्षा के संकेतक एक निराशाजनक तस्वीर पेश करते हैं। यह देखते हुए कि गरीब शहरी परिवारों के लिए भोजन सबसे बड़ा खर्च है, किसी भी चरम मौसम की घटना जो स्थानांतरण, आजीविका की हानि, या उत्पादक संपत्तियों को नुकसान का कारण बनती है, सीधे घरेलू खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करेगी। परिणामस्वरूप, भविष्य में जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पादन में लगने वाले झटकों और कटौती की भविष्यवाणी के कारण शहरी गरीब खाद्य मुद्रास्फीति के प्रति सबसे कमजोर समूह बन जाएंगे। जलवायु परिवर्तन के दौरान कृषि उपज को बनाए रखने के लिए किसानों को कई अनुकूलन विधियों की आवश्यकता होती है।

गरीबी का बढ़ता मकड़जाल

जलवायु परिवर्तन से खाद्य उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता, दोनों प्रभावित होती है, इनसे भुखमरी और कुपोषण के हालात पर असर पड़ता है, अध्ययनों के अनुसार जिन पौधों में कार्बन डाईऑक्साइड का स्तर अधिक होता है, उनमें प्रोटीन, जिंक और आयरन की मात्रा कम हो जाती है। अनुमान के मुताबिक 2050 तक दुनिया की 17.5 करोड़ आबादी को जिंक की कमी का सामना करना पड़ सकता है। इसके अलावा 12.2 करोड़ लोगों में प्रोटीन की भी कमी हो सकती है। जलवायु परिवर्तन का पेड़–पौधों पर आधारित आहार व्यवस्था की गुणवत्ता के साथ–साथ पशुओं पर भी प्रभाव पड़ता है। खाद्य और कृषि संगठन के मुताबिक निम्न और मध्यम आय वाले देशों में किसानों द्वारा पैदा खाद्य पदार्थों का लगभग एक तिहाई हिस्सा खेत और बाजार के बीच ही बर्बाद हो जाता है। इसी तरह उच्च आय वाले देशों में बाजार और खाने की मेज के बीच भी इतनी ही मात्रा में खाद्य वस्तुएं नष्ट हो जाती हैं। ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में खाद्य प्रणाली का हिस्सा फिलहाल 21–37 प्रतिशत है। जाहिर है खाद्य पदार्थों की बर्बादी जलवायु के विनाशकारी संकट और खाद्य असुरक्षा को और विकराल बना देती है।

दुनिया में खाद्य असुरक्षा से सबसे ज्यादा प्रभावित देशों में खासतौर से ऐसे हालात नजर आते हैं। जलवायु परिवर्तन का वैश्विक खाद्य प्रणाली पर घातक असर होता है। हालात बदतर होने पर भूख और कुपोषण की मार झेल रहे लोगों के लिए नुकसान की आशंकाएं और बढ़ जाती हैं। 2030 तक 'भुखमरी खत्म करने' से जुड़े सतत् विकास लक्ष्यों को हासिल करने के लिए जलवायु परिवर्तन की वजहों का निपटारा करना होगा। खासतौर से सियासी और नीतिगत स्तर पर ऐसी कवायद करनी होगी। इस संकट से सबसे ज्यादा प्रभावित इलाकों (ऐसे क्षेत्र जहाँ ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन अपेक्षाकृत कम होता है) की मदद के लिए हमें जलवायु के मोर्चे पर न्यायपूर्ण व्यवस्था को शीर्ष प्राथमिकता देनी होगी।

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से तात्पर्य पृथ्वी की पर्यावरणीय स्थितियों जैसे तापमान, वर्षा पैटर्न, तूफान, लू आदि में परिवर्तन से है। यह कई प्राकृतिक और कृत्रिम कारकों के कारण होता है, जैसे ज्वालामुखीय गतिविधि, सौर गतिविधि में भिन्नता, वनों की कटाई, जीवाश्म ईंधन का जलना, खनन आदि। भारत में बढ़ती औद्योगिक मांग ने फसल उत्पादन पर अधिक जोर दिया है। परिणामस्वरूप, अधिक वन कृषि भूमि में परिवर्तित हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप तापमान और मौसम के पैटर्न में असामान्य परिवर्तन होता है। जैव विविधता पर जलवायु परिवर्तन का एक बड़ा प्रभाव यह है कि इससे पौधों और जानवरों की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती है। जलवायु पैटर्न में बदलाव एक वैश्विक घटना है जिसने भारत में फसल की पैदावार को बुरी तरह प्रभावित किया है। इसने उन क्षेत्रों की मिट्टी, पानी और कीटों की व्यापकता को प्रभावित करके उन फसलों के प्रकारों को भी प्रभावित किया है जिनकी खेती कुछ क्षेत्रों में की जा सकती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि सबसे बड़े और महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है। 2020—21 में भारत की जीडीपी में कृषि का योगदान लगभग 19.9 प्रतिशत है। इसके अलावा, यह क्षेत्र 42.6 प्रतिशत भारतीय आबादी को रोजगार देता है। हालाँकि, यह खतरनाक ग्रीनहाउस गैसों (मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड) का एक प्रमुख स्रोत है, जो ग्रीनहाउस प्रभाव और जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है।

इस जलवायु परिवर्तन के कारण देश भर में उच्च तापमान और अप्रत्याशित वर्षा होती है, जिसके परिणामस्वरूप फसल की पैदावार और समग्र खाद्य उत्पादन कम हो जाता है। तापमान में वृद्धि और पानी की उपलब्धता में बदलाव के कारण, जलवायु परिवर्तन पूरे कृषि—पारिस्थितिकी क्षेत्रों में सिंचित कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है।

जलवायु परिवर्तन की स्थिति में कृषि के क्षेत्रों को निम्न चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा:

- अनियमित मानसून व बेमौसम बारिश के कारण उत्पादन में अस्थिरता होगी।
- कभी—कभी कृषि में प्रचुरता की समस्या आती है तो कभी बहुत कम फसल होती है।
- तापमान बढ़ने से मिट्टी में नमी और कार्बनिक पदार्थ की कमी हो जाती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता प्रभावित होगी और उपज में कमी आएगी।
- उच्च तापमान के कारण कम पैदावार और जलवायु परिवर्तन के कारण कम वर्षा से किसानों की परेशानी बढ़ जाएगी।
- मेजबान और रोगजनक संपर्क के पैटर्न में बदलाव के कारण कीटों और बीमारियों का खतरा बढ़ जाएगा।
- तापमान में हर दो डिग्री की वृद्धि पर भारत की कृषि जीडीपी में पांच प्रतिशत की कमी आएगी।
- कृषि आय में 25 प्रतिशत की गिरावट आ सकती है क्योंकि जलवायु परिवर्तन से फसल की पैदावार प्रभावित होगी।
- खराब कृषि प्रदर्शन से मुद्रास्फीति, किसान संकट व अशांति और बड़े राजनीतिक और सामाजिक असंतोष का कारण बन सकता है, जो सभी अर्थव्यवस्थाओं को धीमा करते हैं।
- यह किसानों को या तो जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए मजबूर करेगा या फिर गरीब होने के जोखिम का सामना करने के लिए मजबूर करेगा।
- यह भारत को तिलहन, दालों और यहां तक कि दूध का एक प्रमुख आयातक बना सकता है।
- यद्यपि जलवायु परिवर्तन के कारण पारंपरिक रूप से बोए जाने वाले क्षेत्रों में कुछ फसलों की पैदावार में कमी आने की संभावना है, लेकिन मौसम के पैटर्न में बदलाव के कारण अन्य जगहों पर पैदावार में वृद्धि हो सकती है।
- जलवायु परिवर्तन से सोयाबीन, चना, मूंगफली, नारियल और आलू की पैदावार में सुधार करने में भी मदद मिल सकती है।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के उपाय

खाद्य और कृषि संगठन के अनुमानुसार, 2050 तक विश्व की जनसंख्या लगभग 9 अरब हो जाएगी। जिससे खाद्यान्न की आपूर्ति और मांग के बीच अंतर को कम करने के लिए मौजूदा खाद्यान्न उत्पादन को दोगुना करने की आवश्यकता पड़ेगी।

इसके लिए भारत जैसे कृषि प्रधान देशों को अभी से नये उपाय करने होंगे। हमारी कृषि व्यवस्था को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचाने के अनेक उपाय हैं। जिन्हें अपनाकर कुछ हद तक कृषि पर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है। साथ ही पर्यावरण मैत्री तरीकों का प्रयोग करके कृषि को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल किया जा सकता है। कुछ प्रमुख उपाय निम्न प्रकार हैः

वर्षा जल के उचित प्रबंधन द्वारा

वातावरण के तापमान में वृद्धि के साथ साथ फसलों में सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति में जमीन का संरक्षण व वर्षा जल को एकत्रित करके सिंचाई हेतु प्रयोग में लाना एक उपयोगी कदम साबित हो सकता है। वाटर शेड प्रबंधन के माध्यम से हम वर्षा जल को संचित करके सिंचाई के रूप में उपयोग कर सकते हैं। इससे एक ओर हमें सिंचाई में मदद मिलेगी, वहीं दूसरी ओर भूजल पुनर्भरण में भी सहायक सिद्ध होगा।

जैविक एवं मिश्रित कृषि

रासायनिक खेती से हरित गैसों में वृद्धि होती है जो वैश्विक तपन में सहायक होती हैं। इसके अलावा रासायनिक खाद व कीटनाशकों के प्रयोग से जहाँ एक ओर मृदा की उत्पादकता घटती है वहीं दूसरी ओर मानव स्वास्थ्य को भी भोजन के माध्यम से नुकसान पहुँचाती है। अतः जैविक कृषि की तकनीकों पर अधिक जोर देना चाहिए। एकल कृषि के स्थान पर मिश्रित (समग्रित) कृषि लाभदायक होती है। मिश्रित कृषि में विविध फसलों का उत्पादन किया जाता है। जिससे उत्पादकता के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होने की संभावना नगण्य हो जाती है।

फसल उत्पादन में नई तकनीकों का विकास

जलवायु परिवर्तन के गंभीर प्रभावों को ध्यान में रखते हुए ऐसे बीज और नई किस्मों का विकास किया जाए जो नये मौसम के अनुकूल हों। हमें फसलों के प्रारूप तथा उनके बीज बोने के समय में भी परिवर्तन करना होगा। ऐसी किस्मों को विकसित करना होगा जो अधिक तापमान, सूखे तथा बाढ़ जैसी संकटमय परिस्थितियों को सहन करने में सक्षम हों। पारम्परिक ज्ञान तथा नई तकनीकों के समन्वयन और समावेशन द्वारा मिश्रित खेती तथा अन्तर खेती करके जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटा जा सकता है।

जलवायु स्मार्ट कृषि

देश में जलवायु स्मार्ट कृषि विकसित करने की ठोस पहल की गयी है जिसके लिए राष्ट्रीय परियोजना भी लागू की गई है। दरअसल जलवायु स्मार्ट कृषि जलवायु परिवर्तन की तीन परस्पर चुनौतियों से निपटने की कोशिश करती है। उत्पादकता और आय बढाना, जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होना तथा उत्सर्जन कम करने में योगदान करना। उदाहरण के लिए, यदि सिंचाई की बात करें तो जल के उचित इस्तेमाल के लिए सूक्ष्म सिंचाई को लोकप्रिय बनाना। जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन होना यह दर्शाता है कृषि को जलवायु परिवर्तन सहन करने हेतु सक्षम बनाना। जलवायु परिवर्तन के अनुमानित प्रभावों से कृषि क्षेत्रों की पहचान करनी होगी। इसके साथ ही इस प्रकार नीतियों का माहौल तैयार करना जिससे स्थानीय व राष्ट्रीय संस्थानों तक सफल क्रियान्वयन हो।

निष्कर्ष

लेख में निकट भविष्य में छोटे क्षेत्रों के लिए जलवायु परिवर्तन परिदृश्यों को कम करने के लिए गर्म जलवायु में पानी बचाने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए गहनता, तापमान सहनशील किस्मों और हरी खाद/जैव–उर्वरक का उपयोग करने जैसी अनुकूलन रणनीतियों का प्रस्ताव दिया गया है। जलवायु परिवर्तन अगले दशकों में जैव विविधता के नुकसान के सबसे महत्वपूर्ण चालकों में से एक होने की संभावना है। जनसंख्या वृद्धि, बढ़ती मजदूरी, उपभोग और भोजन के पैटर्न में बदलाव से भूमि और अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव पड़ेगा। ग्लोबल वार्मिंग प्राकृतिक और मानव प्रणालियों, जैव विविधता और खाद्य सुरक्षा को और अधिक प्रभावित करेगी। इस प्रकार, खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव की व्यापक आंकलन की तत्काल आवश्यकता है। कृषि व्यवस्था को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचाने के जलवायु स्मार्ट कृषि तकनीकियों को अपनाकर कृषि पर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है।

समाप्त

25

अनेजा नायर एम.[1], अरविंद मलिक[2*], अमन शर्मा[2] एवं रवीना[1]
[1]बागवानी विभाग, महाराणा प्रताप बागवानी विश्वविद्यालय, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]बागवानी विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125004 (हरियाणा)
*E-mail: asmalik2033@gmail.com

भौगोलिक संकेतों (जीआई) के माध्यम से किसानों को सशक्त बनानाः एक व्यापक दृष्टिकोण

भौगोलिक संकेत (जीआई) एक शब्द है जो किसी विशिष्ट क्षेत्र की वस्तुओं की विशिष्ट विशेषताओं को निर्दिष्ट करता है। जीआई के तहत लोकप्रिय फलों की किस्मों को संरक्षित करने से स्थानीय उत्पादकों को आर्थिक रूप से लाभ हो सकता है। भारत में फलों की विविध श्रेणी मौजूद है और जीआई ग्रामीण विकास का अभिन्न अंग है, जो व्यवसायिक मांगों को पूरा करते हुए क्षेत्रीय मूल्यों को बढ़ावा देता है। भारतीय फलों में उनकी जलवायु के कारण विशिष्ट गुण होते हैं, जो उन्हें अन्य बाजारों में मूल्यवान बनाते हैं। जीआई खाद्य सुरक्षा, गुणवत्ता और पता लगाने की क्षमता के मानकों को सुनिश्चित करता है। विशिष्ट जलवायु परिस्थितियों में उगाई जाने वाली फसल किस्मों के कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों में कोंकण क्षेत्र में अल्फांसो आम, गुजरात में केसर किस्म, आंध्र प्रदेश में बंगनपल्ली किस्म, बिहार में लीची की शाही किस्म, महाराष्ट्र में खट्टे फलों की नागपुर मैंड्रिन, किन्नू किस्म आदि शामिल हैं। पंजाब में खट्टे फल और खासी पहाड़ियों में खासी मैंड्रिन। इन किस्मों को वस्तुओं के भौगोलिक संकेत (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम 1999 के तहत विशिष्ट भौगोलिक नाम प्राप्त हुए हैं, जो स्थानीय सरकारों को कुछ भौगोलिक क्षेत्रों में बने सामानों के अनाधिकृत उपयोग को रोकने और आर्थिक रूप से लाभ कमाने का अधिकार देता है। जीआई उच्च–स्तरीय ब्रांडों के साथ विशेषताओं को साझा करता है, आपूर्ति श्रृंखलाओं को प्रभावित करता है और ग्रामीण एकीकरण को बढ़ावा देता है। उचित मूल्य निर्धारण सुनिश्चित करना, उपभोक्ताओं को जीआई के बारे में शिक्षित करना और सरकारी और निजी भागीदारी के माध्यम से जीआई–पंजीकृत फसलों के लिए ब्रांड बनाना महत्वपूर्ण है। जीआई द्वारा कवर किए गए उत्पादकों और समुदायों का डेटाबेस बनाए रखना, गुणवत्ता की निगरानी और अच्छी कृषि पद्धतियों का पालन सुनिश्चित करने के साथ–साथ, जीआई–टैग फल वस्तुओं की बाजार क्षमता को साकार करने में चुनौतियां पेश करता है। जीआई–पंजीकृत उत्पादों और प्रमाणित उत्पादकों के लिए विशेष रूप से एक ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म विकसित करना, जिसे नोडल सरकारी एजेंसियों द्वारा सुविधा प्रदान की जाती है, आवश्यक है। हालांकि किसान अंकल कॉम और बिगबास्केट कॉम जैसे ई–प्लेटफॉर्म मौजूद हैं, लेकिन उनके पास जीआई उत्पादों के लिए ग्राहकों तक पहुंचने के लिए स्पष्ट रणनीति का अभाव है। इस प्रकार, उपयुक्त ई–प्लेटफ़ॉर्म के विकास को प्रमाणित/पंजीकृत उत्पादकों और जीआई फलों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

जीआई संवर्धन के लिए विपणन परिदृश्य और प्रयास

केवल जीआई के रूप में पंजीकरण बाजार पहुँच और प्रतिष्ठा दोनों के संदर्भ में टैग से जुड़े सभी लाभों की गारंटी नहीं देता है। पंजीकरण के बाद पर्याप्त विपणन पहल और घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मजबूत सुरक्षा तंत्र आवश्यक हैं। गुणवत्ता नियंत्रण और निरीक्षण तंत्र की कमी है, जिससे घटिया उत्पादों को जीआई के रूप में विपणन किए जाने से ब्रांड कमजोर होने का खतरा पैदा हो गया है। उपभोक्ताओं को प्रमाणिकता और गुणवत्ता का आश्वासन देने के लिए सख्त गुणवत्ता नियंत्रण आवश्यक है। जीआई उत्पादों को बढ़ावा देने के सीमित सरकारी प्रयास उनकी पूरी क्षमता में बाधा डालते हैं। उत्तर प्रदेश, एक प्रमुख आम उत्पादक होने के बावजूद, देश के निर्यात में नगण्य हिस्सेदारी रखता है, जो बेहतर विपणन प्रयासों की आवश्यकता को उजागर करता है। गुणवत्ता मानकों को बनाए रखने के लिए उत्पादन प्रथाओं में सुधार और जमीनी स्तर पर

निगरानी महत्वपूर्ण है। निर्माताओं की परिभाषा के संबंध में अधिनियम में अस्पष्टताएं वास्तविक उत्पादकों को बिचौलियों द्वारा शोषण के प्रति संवेदनशील बनाती हैं। जीआई टैग के महत्व के बारे में उपभोक्ता जागरूकता की कमी है, जिससे प्रभावी संचार के लिए सरकारी या निजी क्षेत्र के प्रयासों की आवश्यकता होती है। पंजीकृत जीआई उत्पादों की क्षमता को अधिकतम करने और भविष्य के पंजीकरणों में रुचि के नुकसान को रोकने के लिए एक सुनियोजित रणनीति की आवश्यकता है।

जीआई उत्पादों की ब्रांडिंग और मार्केटिंग को बढ़ाने के लिए प्रमुख कदमः

- घरेलू और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में भारत के जीआई उत्पादों की एक विशिष्ट पहचान स्थापित करना।
- ग्राहकों को जीआई उत्पादों के अनूठे मूल्य के बारे में शिक्षित करना।
- बेहतर ग्राहक जुड़ाव और अनुभव के माध्यम से जीआई ब्रांडों को बढ़ावा देना।
- नकली प्रतिस्पर्धियों और जीआई के दुरुपयोग के खिलाफ सुरक्षा सुनिश्चित करना।

एक समान ब्रांडिंग रणनीति के लिए मानकीकरण आवश्यक है, लेकिन अत्यधिक नियंत्रण नवाचार को बाधित कर सकता है। एक संतुलित दृष्टिकोण अधिकृत उपयोगकर्ताओं को उस ढांचे के भीतर भेदभाव की अनुमति देते हुए एक सामान्य पहचान साझा करने की अनुमति देता है। जीआई उत्पादों की विशिष्टता और गुणवत्ता से संबंधित प्रमुख पहलुओं को मानकीकृत करना महत्वपूर्ण है। अंतर्राष्ट्रीय उदाहरण बताते हैं कि व्यक्तिगत सदस्यों को जीआई विशिष्टताओं के भीतर नवाचार करने की अनुमति देने से गुणवत्ता में वृद्धि और ब्रांड भेदभाव को बढ़ावा मिलता है। भारत में जीआई फलों के व्यवसायीकरण में अंतराल और कमियों का आंकलन करके घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय विपणन के लिए उपयुक्त रणनीतियों की जानकारी दी जा सकती है।

जीआई के लिए क्या योग्य नहीं है?

वे चीज़ें जो उन वस्तुओं के सामान्य नाम या संकेत के रूप में निर्धारित की जाती हैं जिन्हें संरक्षित नहीं किया गया है या बंद कर दिया गया है या जिन्हें संरक्षित किया गया है, उस देश में अनुपयोगी हो गई। ऐसी चीजें सुरक्षा के लिए पात्र नहीं होंगी जिनमें भारत के नागरिकों के किसी भी वर्ग या वर्ग की धार्मिक संवेदनशीलता को चोट पहुंचाने वाली कोई बात हो, जिनके उपयोग से धोखा देने की संभावना होगी या भ्रम पैदा करता है। ऐसी चीजें जो हालांकि उस क्षेत्र या क्षेत्र के बारे में सचमुच सच हैं जहाँ सामान उत्पन्न होता है, लेकिन व्यक्तियों को गलत तरीके से प्रस्तुत करता है कि माल दूसरे क्षेत्र या क्षेत्र में उत्पन्न होता है।

भौगोलिक संकेतों के माध्यम से आय बढ़ाने में ध्यान रखने योग्य सुझावः

1. **उत्पाद मूल्यांकनः** स्थानीय कृषि वस्तुओं जैसे फसल, पशुधन, या प्रसंस्कृत सामान का आंकलन करें।
2. **जीआई पंजीकरणः** स्थानीय उत्पादों की सुरक्षा के लिए अधिकारियों के साथ भौगोलिक संकेतक (जीआई) पंजीकृत करें।
3. **गुणवत्ता कार्यक्रमः** खेती और प्रसंस्करण मानकों में सुधार के लिए किसानों को प्रशिक्षित करें।
4. **बाज़ार पहुंचः** किसानों को सीधे उपभोक्ताओं से जोड़ें, मुनाफा बढ़ाएं।
5. **ब्रांड प्रमोशनः** स्थानीय उत्पादों के लिए आकर्षक ब्रांड बनाएं और उनका विपणन करें।
6. **विविधीकरणः** किसानों को नए उत्पाद और नवाचार पेश करने के लिए प्रोत्साहित करें।
7. **बुनियादी ढांचाः** दक्षता में सुधार के लिए सुविधाएं बनाएं और प्रौद्योगिकी का उपयोग करें।
8. **वित्तीय सहायताः** जीआई उत्पादन के लिए किसानों को प्रोत्साहन और धन की पेशकश करें।
9. **सामुदायिक भागीदारीः** निर्णय लेने में स्थानीय समुदायों को शामिल करें।
10. **मूल्यांकनः** किसानों पर पहल के प्रभाव की निगरानी करें और आवश्यकतानुसार समायोजन करें।
11. **निर्यात क्षमताः** निर्यात बढ़ाने के लिए आय और गुणवत्ता बढ़ाएँ।
12. **मूल्य संवर्धनः** भारतीय निर्यात को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए प्रसंस्करण में निवेश करें।
13. **कृषि पर्यटनः** अद्वितीय कृषि अनुभवों के आसपास पर्यटन को बढ़ावा देना।

समाप्त

26

अराधना बाली, संदीप रावल, नरेन्द्र कुमार गोयल एवं अजित सिंह
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, दामला, यमुनानगर (हरियाणा)
E-mail: a.bali@hau.ac.in

हरी खाद-भूमि की उपजाऊ शक्ति के लिए वरदान

गहन कृषि प्रबंधन पद्धतियों के तहत गुणवत्तापूर्ण खाद्यान्न उत्पादन ऊर्जा एवं पोषक तत्वों की दोगुना खपत द्वारा संभव है। वर्तमान में विकसित विभिन्न अवधि समूहों वाली संकर और अधिक उपज देने वाली किस्में वास्तविक उपज क्षमता का प्रदर्शन सभी पारिस्थितिकी के तहत भी नहीं कर रही हैं। पर्याप्त पोषण के बिना कोई भी फसल अच्छी तरह से वृद्धि नही कर पाती है और अधिकतम प्रदर्शन के लिए एक संतुलित पोषक तत्व, पर्याप्त नमी स्तर एवं उपयुक्त मृदा पीएच मान आवश्यक है। उर्वरक उपयोग की तुलना में पोषक तत्त्वों का निष्कासन अधिक तेजी से हो रहा है। इस अन्तर की पूर्ति जैविक खादों, फसल अवशेषों, हरी खाद व जैव उर्वरकों आदि से की जा सकती है।

हरी खाद का अर्थ है मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिए हरी वानस्पतिक सामग्री को उसी खेत में उगाकर या कहीं से लाकर खेत में मिला देना। हरी खाद ताजे व अविघटित सूखी पौध सामग्री को मिट्टी में शामिल करने की प्रथा है। हरी खाद की उर्वरता को बढ़ाने वाली फसलों के रूप में पारंपरिक कृषि में हजारों साल से उपयोग किया जाता रहा है। लेकिन पारंपरिक कृषि प्रणालियों ने इनके बड़े पैमाने पर उपयोग को सीमित कर दिया और रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग अधिक आम हो गया। कृषि उत्पादन बढ़ाने एवं मृदा उर्वरता टिकाऊ रखने के लिए उर्वरक के साथ कार्बनिक व जैविक पदार्थों का लगातार संतुलित मात्रा में प्रयोग बहुत जरूरी है। उर्वरकों के अंधाधुँध एवं असन्तुलित प्रयोग के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति काफी प्रभावित हुई है। हरी खाद मिट्टी की उर्वरता और संरचना के निर्माण और रखरखाव के लिए उगाई जाने वाली फसलें हैं।

हरी खाद का प्रयोग क्यों करें?

हरी खाद फसलें फसलचक्र के साथ निम्नलिखित कारणों से उगाई जाती हैं:

- मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ और मिट्टी की संरचना का निर्माण के लिए
- अगली फसल के लिए नाइट्रोजन और अन्य पोषक तत्वों की आपूर्ति करना
- मिट्टी से घुलनशील पोषक तत्वों के अपक्षालन को रोकना
- मिट्टी की संरचना को नुकसान से बचाने के लिए सतह को आच्छादन प्रदान करना
- निचली मृदा प्रोफाइल से पोषक तत्वों को ऊपर लाना
- खरपतवारों खरपतवारों के विकास को रोकना

हरी खाद के लिए उपयुक्त फसलें

हरी खाद के लिए दलहनी फसलों का प्रयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि इनकी जड़ों पर गाँठें पाई जाती हैं, जिनमें जीवाणु पाये जाते हैं। ये जीवाणु फसलों की जड़ग्रन्थि में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने में मदद करते हैं। हरी खाद के लिए प्रमुख फसलों में सनई व ढैंचा है। यह फसल कम वर्षा वाले या अधिक वर्षा वाले स्थानों में, जहाँ कि पानी भरा रहता है और लवणीय या क्षारीय मिट्टी वाले क्षेत्रों में भी उगाई जा सकती है।

हरी खाद के लिए फसल में निम्नलिखित गुणों का होना बहुत जरूरी है:

1. ऐसी दलहनी फसल होनी चाहिए जो कम उपजाऊ भूमि में भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का अधिक से अधिक यौगिकीकरण करने की क्षमता रखती हो। उसकी जड़ों पर काफी संख्या में ग्रन्थियाँ हो, जिनमें अधिक से अधिक जीवाणु रह सके।

2. फसल जल्दी से बढ़ने वाली हो ताकि जल्दी से पलटा जा सके।
3. फसल गहरी जड़ वाली हो ताकि फसलें भूमि की निचली सतह में मौजूद पोषक तत्त्वों का उपयोग कर सकें और फसल सड़ने के बाद ये पोषक तत्त्व मुख्य फसल द्वारा उपयोग किये जा सके।
4. फसल की आरम्भिक अवस्था के दौरान अधिक मात्रा में पत्तियाँ और कोमल टहनियाँ निकलें ताकि अधिक से अधिक कार्बनिक पदार्थ मिल सके।
5. फसल समस्याग्रस्त भूमि और विपरीत जलवायु में भी हरे पदार्थ की अच्छी पैदावार दे सके।

सनईः क्रोटेलेरिया जुन्सिया एक तेजी से बढने वाली हरी खाद की फसल है जिसे बुवाई के 10 सप्ताह बाद मिट्टी में पलटा जा सकता है। ये फसल भारी सिंचाई और जल जमाव का सामना नहीं कर सकती है। हरी खाद के लिए बीज दर 45–50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है जो 15–20 टन प्रति हेक्टेयर हरी खाद बनाती है और जिसके द्वारा 75–80 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। सनई सबसे उत्कृष्ट हरी खाद फसल है जो लगभग सभी भागों में अच्छी तरह से अनुकूल है।

ढैंचाः ढैंचा की सेसबानिया एक्यूलेटा और सेस्बानिया रोस्ट्रेटा नाम की दो प्रजातियां हरी खाद फसलों के रूप में महत्वपूर्ण हैं। सेसबानिया एक्यूलेटा एक जड़ गांठ वाली हरी खाद है जो पोषक तत्वों की आपूर्ति के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। इसमे 3.50 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.60 प्रतिशत फॉस्फोरस व 1.20 प्रतिशत पोटेशियम होता है। यह एक त्वरित एवं रसीली हरी खाद फसल है जो लगभग बुवाई के 8 से 10 सप्ताह बाद सम्मिलित किया जाता है। यह फसल मिट्टी और जलवायु की विभिन्न स्थितियों के अनुकूल है। हरी खाद के लिए बीज दर 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है जो 10–20 टन प्रति हेक्टेयर हरी खाद बनाता है और जिसके द्वारा 75–80 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। सेसबानिया रोस्ट्रेटा में तने और जड़ दोनों पर गांठें होती हैं। यह जलभराव में भी अच्छी तरह से पनपता है किन्तु क्षारीय स्थिति के प्रति संवेदनशील है। सामान्य बीज हरी खाद के रूप में 30 से 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है जो 15–20 टन प्रति हेक्टेयर हरी खाद बनाती है और जिसके द्वारा 150–180 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

तालिका–1ः विभिन्न फसलों द्वारा एकत्रित हरे पदार्थ व नाइट्रोजन की मात्रा

फसल का नाम	हरे पदार्थ की मात्रा (टन प्रति एकड़)	नाइट्रोजन की मात्रा (किग्रा. प्रति एकड़)
सनई	8–12	35
ढ़ैंचा	8–12	35
ग्वार	8–10	22
लोबिया	6–7	22
मेथी	3.5–4	20
बरसीम (2 कटाई के बाद)	8–10	24
उड़द	4–5	18
मूँग	3.5–4	14

धान के लिए ढ़ैंचा की हरी खाद

ढ़ैंचा को हरी खाद के रूप में देने के बाद धान की पैदावार में बढ़ौतरी पाई गई है। यदि ढ़ैंचा की हरी खाद के रूप में प्रयोग करना हो तो मई के पहले सप्ताह तक ढ़ैंचा का 10–12 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ बो दें। इस फसल में बिजाई के समय 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 20 कि.ग्रा. फॉस्फोरस (लगभग 50 कि.ग्रा. डी.ए.पी.) प्रति एकड़ देने से फसल की बढ़वार अच्छी होगी, साथ ही साथ जड़ों पर अधिक ग्रन्थियाँ बनने के कारण वायुमण्डलीय

किसान के खेत में ढ़ैंचा को हरी खाद की फसल

नत्रजन अधिक मात्रा में स्थिर होगी। 45–50 दिन के बाद नरम अवस्था में ढ़ैंचा की फसल को जून के तीसरे सप्ताह में जुताई करके खेत में दबा दें। हरी खाद दबाने के एक सप्ताह के अन्दर धान की रोपाई कर दें। जिन खेतों में हरी खाद दी गई हो उनमें धान की सिफारिश की गई नाइट्रोजन की मात्रा की 2/3 मात्रा का ही प्रयोग करें। यदि ढ़ैंचा को उगाते समय फॉस्फोरस दी गई हो तो धान में फास्फोरस का प्रयोग न करें।

समाप्त

27

कैलाश प्रजापत, राम किशोर फगोड़िया, अवनी एवं रामेश्वर लाल मीणा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: Kailash.prajapat@icar.gov.in

संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी

राजभाषा हिन्दी को बढावा देने एवं कृषि अनुसंधान में वैज्ञानिकों, कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्येक वर्ष हिन्दी में अनेक गतिविधियाँ, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में आयोजित की जाती हैं। वर्ष 2023–24 के दौरान आयोजित कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों का कृषि किरण के अंक 16 वर्ष 2023–24 में प्रकाशन किया जा रहा है।

हिन्दी पखवाड़े का आयोजन

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल में 14 से 28 सितम्बर 2023 के मध्य हिन्दी पखवाडे का आयोजन किया गया। हिन्दी पखवाडे का शुभारम्भ मुख्य अतिथि डा॰ श्रवण कुमार दुबे, एमेरिटस वैज्ञानिक, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल ने दीप प्रज्जवलित करके किया। हिन्दी पखवाड़ा समिति के अध्यक्ष डा. कैलाश प्रजापत ने हिन्दी के महत्व को बताते हुए राजभाषा के नियमों व अधिनियमों की विस्तृत जानकारी दी तथा हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों व प्रतियोगिताओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया।

हिन्दी पखवाड़ा उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि डा॰ श्रवण कुमार दुबे ने कहा कि आजादी के बाद से अब तक सिनेमा, प्रिंट मीडिया, सोशल मीडिया में हिन्दी का प्रभाव बढ़ा है। हमें अपनी भावनाएं हिन्दी को माध्यम बनाकर व्यक्त करनी चाहिए। इस संस्थान में हिन्दी में काफी कार्य हो रहा है। उन्होंने कहा की हमें अपने दैनिक कार्यकलाप में हिन्दी को महत्व देना चाहिए और सहज और सरल हिन्दी भाषा में संवाद करना चाहिए। इससे पूर्व संस्थान के कार्यकारी निदेशक डा॰ सतीश कुमार सनवाल ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया और बताया कि स्वतंत्रता के प्राप्ति के पश्चात 14 सितम्बर 1949 को यह निर्णय लिया गया था कि राज–काज में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग 15 वर्ष तक होगा। भारतीय नेता विदेशों में जाकर विश्व मंच पर हिन्दी में भाषण देते हैं। हमें अपने दैनिक कार्य हिंदी में अधिक से अधिक करने चाहिए। हिन्दी पखवाड़े के अंतर्गत 12 प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। इन सभी प्रतियोगिताओं में संस्थान के अधिकारियों व कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

कविता पाठ प्रतियोगिता का आनंद लेते हुए संस्थान के सदस्य

नगर स्तरीय टिप्पणी एवं मसौदा लेखन प्रतियोगिता में प्रतिभागी भाग लेते हुए

हिन्दी पखवाडे का का समापन समारोह दिनांक 27 सितम्बर 2023 को आयोजित किया गया जिसके मुख्य अतिथि डा॰ सुरेन्द्र कुमार नागीया, उप–प्रधानाचार्य राजकीय महाविद्यालय, करनाल थे। उन्होंने अपने संबोधन में कहा कि देश की प्रगति एवं एकता के लिये मातृ भाषा में कार्य करना अति आवश्यक है। समस्त देशवासियों को एकता के सूत्र में पिरोने के लिये राजभाषा हिन्दी ही एक सर्वोच्च माध्यम है। इस अवसर पर एक वाद–विवाद प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न प्रतिभागियों ने 'एक राष्ट्र एक चुनाव' विषय पर प्रस्तुतियाँ दी। इस प्रतियोगिता में संस्थान के कर्मचारियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। संस्थान के निदेशक डा॰ राजेन्द्र कुमार यादव ने संस्थान के सभी कर्मचारियों को अधिक से अधिक हिन्दी भाषा में कार्य करने के लिये आह्वान किया। इस अवसर पर सभी प्रभागाध्यक्ष, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी, संस्थान के समस्त वैज्ञानिक, प्रशासनिक एवं तकनीकी अधिकारी व कर्मचारी उपस्थित रहे।

हिन्दी पखवाड़े के समापन समारोह के अवसर पर सभा को संबोधित करते मुख्य अतिथि डा. सुरेन्द्र कुमार नागीया

सभा को संबोधित करते हुये संस्थान के निदेशक डा. राजेन्द्र कुमार यादव

वाद–विवाद प्रतियोगिता में उपस्थित संस्थान के सदस्य

प्रमाण–पत्र वितरण

हिन्दी पखवाडा 2023 के अंतर्गत आयोजित प्रतियोगिताओं व उनके विजेताओं का विवरण

क्र.सं.	दिनांक	प्रतियोगितां का नाम	विजेताओं के नाम			
			प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रोत्साहन
1	14 सितम्बर	कविता पाठ	श्रीमती जसबीर कौर	श्रीमती प्रीति शर्मा	सुश्री अनु दहिया	डॉ. मधु चौधरी
2	15 सितम्बर	निबंध लेखन	श्री रेशु	श्री अंकुर शर्मा	–	–
3	18 सितम्बर	प्रश्नोत्तरी	श्री अंकुर शर्मा, अनुज चौधरी, विकास	श्री जीतेन्द्र सिंह, युद्धवीर सिंह, दिलबाग सिंह, बृजमोहन सिंह	श्री इन्द्रपाल तोमर, गुरिन्द्र सिंह एवं अवनि दहिया	श्रीमती अनिता मेहता, बृजमोहन मीणा एवं देवेन्द्र कुमार यादव
4	19 सितम्बर	आवेदन–पत्र लेखन	श्री कंवलजीत सिंह	–	–	–
5	22 सितम्बर	हिन्दी टंकण	श्रीमती रीटा आहुजा	श्रीमती नीरू	–	–
6	21 सितम्बर	तत्काल भाषण	श्रीमती प्रीति शर्मा	श्रीमती अनिता मेहता	श्री रेशु	श्रीमती जसबीर कौर
7	22 सितम्बर	नगर स्तरीय टिप्पणी एवं मसौदा लेखन	सुश्री सोनिका यादव	श्री प्रदीप मुंडेजा	श्रीमती नीरू	श्री समर्थ वर्मा
8	25 सितम्बर	हिन्दी पोस्टर	वरुण सैनी	आरजू	रोदास कुमार	–
9	26 सितम्बर	हिन्दी गीत अन्ताक्षरी	डा. राजकुमार (बागवानी), धीरज कुमार, बृजमोहन सिंह बघेल	श्रीमती अनिता मेहता, श्री दिलबाग सिंह, गिरिराज मीणा	श्री दलीप सिंह, देव राज शर्मा, रेशु	श्रीमती मीना लूथरा, रीटा आहुजा, श्री भागेश
10	27 सितम्बर	वाद–विवाद	सुश्री अनु दहिया	सुश्री आरजू	श्रीमती अनिता मेहता	श्री देवेन्द्र कुमार यादव
11	–	चल वैजयन्ती	पुस्तकालय	–	–	–
12	–	सरकारी कामकाज में मूल हिन्दी आलेखन	श्रीमती रीना देवी	श्रीमती जसबीर कौर		––

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें

संस्थान राजभाशा कार्यान्वयन समिति की प्रत्येक तिमाही में बैठकें आयोजित की जाती है जिसमें संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में हुई प्रगति का अवलोकन किया जाता है और राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के वार्षिक कार्यक्रमानुसार व समीक्षा के रूप में प्राप्त सुझावों पर संस्थान में राजभाषा हिन्दी की प्रगति के लिये आवश्यक कदम उठाये जाते हैं। इसके साथ ही प्रत्येक तिमाही में हिन्दी में व्याख्यान का आयोजन किया गया।

राजभाषा हिन्दी में किये गए अन्य कार्य

- संस्थान में सभी प्रशासनिक बैठकें हिन्दी में आयोजित की जाती हैं तथा संस्थान की तिमाही रिपोर्ट हिन्दी में भेजी जा रही है।
- इस अवधि में संस्थान की पत्रिका 'कृषि किरण 2022–23' एवं लवणता समाचार प्रकाशित किए गए।
- हिन्दी समाचार पत्रों में संस्थान में सम्पन्न गतिविधियों संबंधी प्रेस विज्ञप्तियाँ हिन्दी में प्रकाशित हुई।
- अधिकारियों/कर्मचारियों की सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्टियाँ हिन्दी में की गई।
- कार्यालय के सभी अनुभागों में फाइलों में अधिकतर टिप्पणियाँ हिन्दी में लिखी गई।
- सभी निविदाएं तथा नीलामी सूचनाएं, विज्ञापन, प्रेस नोट आदि हिन्दी में प्रकाशित किये गये।
- सभी बिलों पर भुगतान आदेश हिन्दी में लगाये गये व रोकड़ बही भी हिन्दी में लिखी गई।

समाप्त

टिप्पणी

ICAR-CSSRI
I ❤ CSSRI

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

बेटी बचाओ
बेटी पढ़ाओ

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल–132 001 (हरियाणा)